नवीनतम पाठ्यक्रम

बी.ए. तृतीय वर्ष

भारत की जीवन्त परम्पराएं

-एक **धर्म, राजनीति, शिक्षा और ज्ञान में जीवंत परंपराएं**

1. **जीवंत परंपरा-** *परिभाषा, भारत में जीवंत परंपराओं के प्रकार।*
2. **धर्म-** *परंपरा और इसकी निरंतरता, भारतीय परंपरा के संवाहक-भारतीय मंदिर, मठ और घटिकायें, भारत के तीर्थ, भगवद गीता और रामचरित मानस में सांस्कृतिक मूल्य।*
3. *राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा में प्राचीन भारतीय नैतिकता और परम्पराओं का प्रतिबिंब-गुरु-शिष्य परंपरा, संस्कृत, हमारी विरासत और पहचान।*
4. **पर्यावरण जागरुकता और जल संरक्षण प्रथाएं-** *आधुनिक युग में इसकी प्रासंगिकता, प्राचीन चिकित्सा पद्धतियाँ, परंपराएं, संरक्षण और संवर्धन।*

ई-दो **कला, शिल्प और वस्त्रों में जीवन्त परम्पराएं**

1. *भारत के भित्ति चित्र, भारत की लघु चित्रकला, इतिहास और परंपरा*
2. **भारत के शिल्प-** *प्रस्तर मूर्ति कला, धातु और टेराकोटा, शिल्प की परम्पराएं और तकनीक, शिल्पकार और शिल्प परंपराओं के माध्यम से महिला सशक्तिकरण।*
3. *भारतीय वस्त्र उद्योग, युगों से प्रचलित पारम्परिक प्रथायें, मुख्य केन्द्र- वाराणसी, काँचीपुरम।*

ाई-तीन **प्रदर्शन कलाओं में जीवन्त परम्पराएं: संगीत, नृत्य और रंगशाला**

1. *भारतीय नाटकों एवं नाट्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और मुख्य पहलू, महत्वपूर्ण नाट्य परम्पराएं, यक्षगान, कुडियट्टू, मुडियट्टू*
2. *कठपुतली और मुखौटा प्रदर्शन परम्पराएं और उनके रूप।*
3. *भारत के विभिन्न संगीत और नृत्य रूप- शास्त्रीय और लोक*
4. *मेले और त्यौहार।*

ाई-चार **विदेशों में भारतीय संस्कृति और परंपरा का प्रसार और इसकी निरंतरता**

1. *विदेशों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान के तरीके, प्राचीन काल में भारत के बाहरी संपर्क का संक्षिप्त इतिहास, विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार में प्राचीन विश्वविद्यालयों और विद्वानों की भूमिका।*
2. *भारतीय धर्म और संस्कृति का प्रभाव, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, भारतीय महाकाव्यों का वैश्विक प्रभाव-रामायण और महाभारत, अंगकोरवाट मंदिर-भारत का बहुरूपदर्शक*

इकाई-पाँच जीवंत परंपराओं की सुरक्षा और परिरक्षण, संस्थाएं, तकनीक और कानून

1. **भारत का संविधान-** *अनुच्छेद 49, अनुच्छेद 51(ए); सरकारी योजनाएं: "अपनी धरोहर अपनी पहचान", प्रसाद*
2. *(तीर्थयात्रा कायाकल्प और आध्यात्मिक संवर्धन अभियान), पर्यटन पर्व-देखो अपना देश, स्वदेश दर्शन आदि।*
3. *यूनेस्को, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, भारत का राष्ट्रीय अभिलेखागार, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, कला और सांस्कृतिक विरासत के लिये भारतीय राष्ट्रीय न्याय (आईएनटीएसीएच)*
4. *विश्व धरोहरों में सूचीबद्ध भारत की मानवीय परम्पराओं की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत।*

प्रश्न-सूची

इकाई-एक

प्रश्न 1 जीवन्त परम्पराओं की परिभाषाएं दीजिए तथा भारत की प्रमुख जीवन्त परम्पराओं को बताइए।

प्रश्न 2 धर्म, राजनीति, शिक्षा और ज्ञान की जीवन्त परम्पराओं के प्रकार बताइए।

प्रश्न 3 भारत में धर्म परम्परा और उनकी निरन्तरता की विवेचना कीजिए।

प्रश्न 4 भारतीय परम्परा के संवाहक के रूप में भारतीय मन्दिर तथा मठों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 5 भारत के तीर्थों में प्रमुख तीर्थस्थानों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 6 भगवदगीता में सांस्कृतिक मूल्यों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 7 रामचरितमानस में निहित सांस्कृतिक मूल्यों को बताइए।

प्रश्न 8 राजनीति, अर्थव्यवस्था और शिक्षा में प्राचीन भारतीय नैतिकता और परम्पराओं के प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होते हैं-इस कथन की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 9 निम्नलिखित विषयों पर विस्तृत टीप दीजिए- (अ) गुरु-शिष्य परम्परा, (ब) संस्कृतः हमारी विरासत और पहचान।

प्रश्न 10 पर्यावरण जागरुकता और जल संरक्षण प्रथाओं का अर्थ बताते हुए इनकी आधुनिक युग में प्रासंगिकता बताइए।

प्रश्न 11 प्रमुख प्राचीन चिकित्सा पद्धतियाँ, परम्पराएं, संरक्षण और संवर्द्धन विषयों पर विवरण दीजिए।

इकाई-दो

प्रश्न 1 भारत के भित्ति-चित्र, भारत की लघु चित्रकला के इतिहास और परम्परा का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2 भारत की प्रस्तर मूर्तिकला का इतिहास और विकास बताइए।

प्रश्न 3 भारत में धातुकला एवं टेराकोटा का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 4 भारत में शिल्प की परम्पराएं और तकनीक पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 5 शिल्पकारों और शिल्प परम्पराओं के माध्यम से महिला सशक्तिकरण कैसे होगा? वर्णन कीजिए।

प्रश्न 6 भारतीय वस्त्र उद्योग का परिचय दीजिए।

प्रश्न 7 वाराणसी और कांचीपुरम केन्द्रों में युगों से प्रचलित पारम्परिक प्रथाओं के इतिहास व वर्तमान का विवरण दीजिए।

इकाई-तीन

प्रश्न 1 प्रदर्शन कलाएं क्या हैं? इनके प्रकार, मुख्य रूप पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 2 भारतीय नाटक एवं नाट्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बताइए और मुख्य पहलुओं पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 3 इन महत्त्वपूर्ण नाट्य परम्पराओं का वर्णन कीजिए-यक्षगान, मिड्डियट्टू।

प्रश्न 4 कठपुतली और मुखौटा प्रदर्शन परम्पराएं और उनके रूपों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 5 भारत के विभिन्न संगीत और नृत्य रूप-शास्त्रीय और लोक का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 6 प्रमुख भारतीय मेलों और त्यौहारों का वर्णन कीजिए।

इकाई-चार

प्रश्न 1 विदेशों में भारतीय संस्कृति और परम्परा का प्रसार और इसकी निरन्तरता का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2 भारत के दक्षिण पूर्वी एशिया के श्रीलंका तथा दक्षिणी पूर्वी प्रमुख देशों तथा पूर्वी द्वीप समूह से ऐतिहासिक सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 3 विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार में भारत के प्राचीन विश्वविद्यालयों/उच्च शिक्षा केन्द्रों तथा विद्वानों की भूमिका बताइए।

प्रश्न 4 भारतीय धर्म और संस्कृति के विदेशों में प्रभाव पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 5 भारत के विज्ञान और प्रौद्योगिकी के वैश्विक प्रभाव का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 6 इन भारतीय महाकाव्यों के वैश्विक प्रभाव का वर्णन कीजिए- (अ) रामायण, (ब) महाभारत।

प्रश्न 7 अंकोरवाट मन्दिर कहाँ स्थित है? इसका परिचय संक्षेप में देते हुए इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। क्या यह मन्दिर भारत का बहुरूपप्रदर्शक है?

इकाई-पाँच

प्रश्न 1 जीवन्त परम्पराओं की सुरक्षा और परिरक्षण सम्बन्धी भारत के संविधान के अनुच्छेद 49 तथा अनुच्छेद 51 (ए) की विवेचना कीजिए।

प्रश्न 2 इन सरकारी योजनाओं पर संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित टीप दीजिए- (अ) अपनी धरोहर अपनी पहचान, (ब) प्रसाद (PRASAD) योजना

प्रश्न 3 पर्यटन पर्व-देखो अपना देश, स्वदेश दर्शन-इन योजनाओं पर संक्षिप्त सारगर्भित टीप दीजिए।

प्रश्न 4 यूनेस्को संस्था (UNESCO) का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

प्रश्न 5 भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, भारत का राष्ट्रीय अभिलेखागार, भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद और कला और सांस्कृतिक विरासत के लिए भारतीय राष्ट्रीय न्यास संस्थाओं का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित वर्णन कीजिए।

प्रश्न 6 विश्व धरोहरों में सूचीबद्ध भारत की मानवीय परम्पराओं की अमूर्त सांस्कृतिक विरासतों को बताइए।

इकाई-एक

प्रश्न 1 जीवन्त परम्पराओं की परिभाषाएं दीजिए तथा भारत की प्रमुख जीवन्त परम्पराओं को बताइए।

अथवा जीवन्त परम्पराओं से क्या आशय है? प्रमुख भारतीय जीवन्त परम्पराओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर- प्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्री डी.पी. मुखर्जी ने जीवन्त परम्परा को परिभाषित करते हुए लिखा है कि जीवन्त परम्परा वह है जो भूतकाल से कुछ प्राप्त कर उससे अपने सम्बन्ध बनाए रखती है तथा इसके अतिरिक्त वह नई चीजों को भी ग्रहण करती है। इस प्रकार जीवन्त परम्परा में पुराने और नए तत्त्वों का मिश्रण है। डी.पी. मुखर्जी ने इस तथ्य पर बल दिया है कि भारतीय समाजशास्त्रियों को जीवन्त परम्परा में रुचि रखनी चाहिए ताकि इसका उचित और सारभाव प्राप्त हो सके। डी.पी. मुखर्जी के लिए परम्परा का अध्ययन केवल भूतकाल तक ही सीमित न होकर परिवर्तन की संवेदनशीलता से भी जुड़ा होना चाहिए।

परम्परा का अर्थ है बिना व्यवधान के श्रृंखला के रूप में जारी रहना। वे परम्पराएं जीवन्त कहलाती हैं जो प्राचीन काल में थीं और आज भी किसी रूप में चली आ रही हैं। परम्परा का अर्थ है 'ऐतीह' अर्थात् विरासत में प्राप्त होना। उदाहरण के लिए गुरु-शिष्य परम्परा भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से चली आ रही है जो हिन्दू, सिख, जैन और बौद्ध धर्मों में समान रूप से पाई जाती है और आज भी विद्यमान है।

राबर्ट रेडफील्ड ने अपने अध्ययन के आधार पर पहली बार यह सिद्ध किया कि प्रत्येक सभ्यता परम्पराओं से बनी होती है। उसके अनुसार प्रत्येक परम्परा का सामाजिक संगठन होता है अर्थात् संस्थागत भूमिकाएं, प्रास्थितियाँ और कार्यकर्त्ता होते हैं।

इस प्रकार परम्परा सामाजिक विरासत (प्रथाओं, रूढ़ियों, विश्वासों, रीतिरिवाजों, धर्मों, कानून आदि) का वह पक्ष है जो हमारे व्यवहार के स्वीकृत तरीकों को दर्शाता है और जिसकी निरन्तरता पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरण की प्रक्रिया द्वारा बनाए रखी जाती है।

जेम्स ड्रीवर के अनुसार- "परम्परा कानून, प्रथा, कथा और किंवदन्ती का वह संग्रह है, जो मौलिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जाता है।"

मौरिस जिंसबर्ग के अनुसार- "परम्परा का अर्थ उन सभी विचारों, आदतों और प्रथाओं का योग है जो व्यक्तियों में एक समुदाय से सम्बन्धित होता है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित होता रहता है।"

प्रो. योगेन्द्र सिंह के शब्दों में- "परम्परा किसी समाज की संचित विरासत है, जो सामाजिक संगठन के सभी स्तरों पर छायी रहती है, जैसे मूल्य व्यवस्था, सामाजिक संरचना और वैयक्तिक संरचना।"

प्रो. रॉस के शब्दों में- "परम्परा का अर्थ है चिन्तन और विश्वास करने की पद्धति का हस्तान्तरण।"

परम्परा की विशेषताएं या लक्षण

1. *परम्पराओं में परिवर्तन धीमी गति से होता है।*

2. *परम्पराएं पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती हैं।*
3. *परम्पराएं दीर्घकालीन उपहार होती हैं तथा उनमें निरन्तरता होती है।*
4. *परम्पराओं का पालन अचेतन रूप से और बिना सोचे-समझे होता है।*
5. *परम्पराओं में हस्तान्तरण लिखित या मौखिक किसी भी तरह किया जा सकता है।*

परम्परा का महत्त्व

1. *परम्पराएं सामाजिक जीवन में एकरूपता लाती हैं।*
2. *परम्पराएं व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करती हैं।*
3. *परम्पराएं सामाजिक जीवन को सुगम बनाती हैं।*
4. *परम्पराएं व्यक्ति के समाजीकरण में योगदान देती हैं।*
5. *परम्पराएं व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती हैं।*
6. *सामाजिक और धार्मिक संस्थाएं परम्पराओं से अस्तित्व में हैं।*
7. *परम्पराएं सामाजिक तनाव को कम करके सामाजिक विकास की दिशा निर्धारित करती हैं।*

प्रमुख जीवन्त परम्पराएं

जीवन्त परम्पराएं धार्मिक, सामाजिक, कला, जीवन शैली, भाषा लिपि व साहित्य, मनोरंजन, इत्यादि कई प्रकार की होती हैं। प्रमुख जीवन्त परम्पराएं निम्नवत हैं-

(1) **अभिवादन-** भारतीय संस्कृति में सबसे लोकप्रिय परम्पराओं में से सबसे लोकप्रिय 'नमस्ते करना' है। यह लोगों से अभिवादन का तरीका है जिसे नमस्कार या नमस्कारम भी कहा जाता है जिसका अर्थ है-मैं आपके भीतर विराजमान परमात्मा को नमन करता हूँ। अभिवादन करने वाला सम्मुख आए व्यक्ति को नमस्ते कहता है जिसके प्रत्युत्तर में दूसरा भी नमस्ते करता है। आज भी यही परम्परा जीवन्त है। यद्यपि हाथ मिलाने या गले लगने (आलिंगन करने) का दुनिया भर में बड़े पैमाने पर अभिवादन का तरीका प्रचलन में है जिसको भारत में भी परम्परा के रूप में अपनाया गया किन्तु कोरोना वायरस प्रकोप के दौरान हाथ मिलाने और गले लगने को नकार कर उंगलियाँ जोड़कर दोनों हाथों से अंजलि जोड़कर थोड़ा झुककर नमस्ते कहना ही प्रचलन में सर्वोत्तम व निरापद माना गया।

(2) **परिवार-** भारत में संयुक्त परिवार वह है जहाँ पूरा परिवार एक साथ रहता है, जिसमें माता-पिता, संतान और कभी-कभी रिश्तेदार भी सम्मिलित हो सकते हैं। परिवार का मुखिया एक 'कर्त्ता' होता है, एक वरिष्ठ पुरुष या महिला जो पूरे परिवार की ओर से आर्थिक और सामाजिक निर्णय लेता है और अन्य रिश्ते परस्पर सम्मान से उस निर्णय को शिरोधार्य करते हैं। आजकल आर्थिक कारणों तथा शहरीकरण और रोजगार आदि के कारण संयुक्त परिवारों की अपेक्षा एकल परिवारों का प्रचलन बढ़ गया है, परन्तु पारिवारिक लोग खुशी, त्यौहार, गमी आदि कारणों से अन्य सदस्यों से मेलजोल करने की प्रथा अभी भी प्रचलन में है।

भारत में अरेंज मैरिज आज भी एक जीवन्त मजबूत परम्परा है। यह 1500-1100 ईसा पूर्व से वैदिक काल की परम्परा है जहाँ राज्य भर से उपयुक्त जोड़े एक शाही दुल्हन का हाथ जीतने के लिए प्रतियोगिताओं में प्रतिस्पर्धा करते थे।

(3) **खाना-** खाना या भोजन की प्रथा भारतीय संस्कृति में अपना विशेष महत्त्व रखती है। भारत में प्रत्येक क्षेत्र या प्रान्त का अपना विशिष्ट व्यंजन होता है। यह शाकाहारी व्यंजनों युक्त होता है। वह मुख्य रूप से गुजरात और राजस्थान में मिलता है। बंगाली मछली प्रधान तथा मुगलई, उत्तर भारतीय व पंजाबी व्यंजनों में माँसाहारी विकल्प मौजूद है। इसी तरह दक्षिण भारत में केरल अपने स्वादिष्ट मछली व्यंजनों के लिए प्रसिद्ध है।

भारत में हमेशा प्रचुर मात्रा में ताजा सामग्रियों युक्त, स्वाद, सुगन्ध, रंग बढ़ाने और उपचार गुणों के लिए उपयोग की जाने वाली जड़ी-बूटियों और मसाले खाने में शामिल रहते हैं।

खाने के पहले और बाद में अपने हाथ अच्छी तरह धोने की स्वास्थ्यप्रद परम्परा है और खाने के लिए दाहिने हाथ का इस्तेमाल होता है।

(4) **धर्म-** भारत एक ऐसी भूमि है जहाँ विभिन्न धर्मों के लोग सौहार्दपूर्वक रहते हैं। आबादी में हिन्दू धर्मावलम्बियों की संख्या सर्वाधिक है। इसके उपरान्त इस्लाम, ईसाई, सिख, बौद्ध और जैन धर्मावलम्बी यहाँ निवासरत हैं। प्रत्येक धर्म की अपनी पूजन पद्धति है।

हिन्दू संस्कृति में गाय एक पवित्र जानवर है और पौराणिक कथाओं में कई देवताओं जैसे नंदी बैल पर सवार शिव या चरवाहे, भगवान श्रीकृष्ण के साथ चित्रित गाय पूज्य है। इनके सींग देवताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

उपवास या व्रत रखना हिन्दू देवी-देवताओं को धन्यवाद देने और संकल्प व ईमानदारी दिखाने के साधन के रूप में भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। ऐसा माना जाता है कि भोजन की आवश्यकता के बिना रहने से आप स्वयं को पाप से शुद्ध कर लेंगे। भारत में विभिन्न दिवसों तथा अवसरों पर भी व्रत रखने की परम्परा है।

(5) **मन्दिर-** भारत के हिन्दू अधिकांशतः साकार ईश्वर के उपासक हैं तथा मन्त्रों से शुद्ध की गई ईश्वर की मूर्ति मन्दिरों में स्थापित करते हैं तथा प्रतिदिन तथा विशेष रूप से त्यौहारों आदि में इन मन्दिरों में स्थापित मूर्तियों की पूजा किया करते हैं। मन्दिरों में कई पवित्र इमारतें पृथ्वी की चुम्बकीय तरंग रेखाओं से सकारात्मक ऊर्जा से समृद्ध स्थानों बनाई गई हैं। अधिकांश मन्दिरों में एक मुख्य मूर्ति होती है जिसके नीचे ताँबे की प्लेट होती है जिसे गर्भगृह या मूलस्थान कहा जाता है जो इस भूमिगत ऊर्जा को अवशोषित और प्रतिध्वनित करती है। भारतीय संस्कृति में रीति-रिवाजों और परम्परा के अनुसार पवित्र मन्दिरों में प्रवेश करने में पहले स्नान करना या कम से कम अपने हाथों और पैरों को धोना आवश्यक होता है ताकि आप नकारात्मक विचारों और बुरे प्रभावों से मुक्त हो सकें। इसी प्रकार उचित पोशाक भी पहनना जरूरी है जो कि सम्मान दर्शाने के लिए आवश्यक है। किसी भी गन्दगी को साफ और पवित्र वातावरण में रोकने के लिए जानवरों के चमड़े को पहनने से बचना चाहिए। जूते भी उतारने होते हैं।

(6) **समारोह-** भारतीय संस्कृति में रीति-रिवाजों और परम्पराओं में त्यौहार मनाना भी एक भारतीय जीवन्त परम्परा है। भारत में सैकड़ों उत्सव या त्यौहार आयोजित होते हैं। हिन्दू दीवाली, मकर संक्रान्ति, नवदुर्गा, बैसाखी आदि मनाते हैं। बैसाखी पर्व फसल की कटाई का एक पवित्र त्यौहार है। जैन महावीर जयन्ती और बौद्ध गौतम बुद्ध की जयन्ती मनाते हैं। ईसाई गुड फ्राइडे और क्रिसमस मनाते हैं। सन्तों, देवताओं, गुरुओं, सार्वजनिक हस्तियों के दिवस भी

भारत में समारोहपूर्वक मनाए जाने की परम्परा है। भारतीय त्यौहारों में शोभा यात्रा, भोजन व्यंजन, नृत्य व संगीत आदि भी समारोह का अंग हैं।

(7) **वस्त्र-** भारत में कपड़े प्रत्येक क्षेत्र की जलवायु, सांस्कृतिक परम्परा आदि के आधार पर पुरुष व महिलाएं दोनों ही परिधान (साड़ी, धोती, गमछा, लुंगी, लंगोटी आदि) पहनने की परम्परा है जो अवसरों, अनुष्ठानों के अनुसार धारण की जाती है। आजकल दैनिक रूप से पश्चिमी कपड़ों का प्रचलन विशेषतः नगरों में है।

पारम्परिक भारतीय कपड़े प्रायः पीढ़ियों से चले आ रहे शानदार कौशल का प्रदर्शन करते हैं जिसमें कढ़ाई, अलंकरण व रंग व छपाई आदि होती है।

(8) **नृत्य परम्परा-** भारत में विभिन्न राज्यों/प्रान्तों में विशेष अवसरों पर नृत्य आयोजित होते हैं। मणीपुरी, ओडिसी, कुचिपुडी, भरतनाट्यम, कथकली, मोहिनी अट्टम, भांगड़ा आदि। इन नृत्य रूपों में नाटकीय कथाएं भी होती हैं। नृत्यों में कलाकार संकेत व गति के माध्यम से ज्यादातर पौराणिक कथाएं सुनाते हैं।

(9) **साहित्य परम्परा-** भारत में कहानियों, कविताओं, नाटकों और महाकाव्यों में विशेषतः पौराणिक, ऐतिहासिक कथाएं हजारों वर्षों से कही, सुनाई व दोहराई जाती हैं। रामायण राजकुमार राम की कहानी बताती है तथा राजा दशरथ के वचन पर उनके चौदह वर्षों के वनवास की कहानी बताती है। यह महाकाव्य बुराई पर अच्छाई की विजय प्रदर्शन करता है तथा मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र के भक्ति, आदर, निष्ठा, त्याग, सच्चाई के मूल्यों को दर्शाती है।

(10) **भाषाएं-** भारत में कई आकर्षक भाषाएं व बोलियों के प्रचलन की परम्परा है। भारत में 19,500 से अधिक मातृभाषाएं, 415 जीवित भाषाएं और 23 संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त आधिकारिक भाषाएं हैं। हिन्दी 41% आबादी द्वारा बोली जाती है। बंगाल में बंगला, केरल में मलयालम, तेलंगाना में तेलगू, तमिलनाडु में तमिल, उड़ीसा में उड़िया, पंजाब में पंजाबी, कश्मीर में डोगरी, राजस्थान में राजस्थानी, गुजरात में गुजराती भाषाएं प्रचलन में हैं। भाषाओं के अतिरिक्त क्षेत्रीय व स्थानीय बोलियाँ भी परम्परागत रूप से छोटे-बड़े समूहों द्वारा प्रतिदिन बोली जाती हैं।

प्रश्न 2 धर्म, राजनीति, शिक्षा और ज्ञान की जीवन्त परम्पराओं के प्रकार बताइए।

उत्तर- जेम्स ड्रीवर के मतानुसार परम्परा-प्रथा कथा और किंवदंती का वह संग्रह है जो मूलतः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती हैं। ये परम्पराएं अनेक रूपों या प्रकारों में पीढ़ी दर पीढ़ी मौलिक रूप में, निस्संदेह कुछ बदलाव या परिवर्तन के साथ, हस्तान्तरित होती रहती है तथापि इनका इनका मूल रूप पूर्ववत रहता है। इन्हें जीवन्त परम्परा इसलिए कहा जाता है क्योंकि अतीत से वर्तमान तक ये जीवित रहती हैं। ये जीवन्त परम्पराएं विविध रूपों या प्रकारों में होती हैं। धर्म, राजनीति, शिक्षा और ज्ञान में इन जीवन्त परम्पराओं का वर्णन नीचे दिया जा रहा है-

(अ) **भारतीय धर्म में जीवित परम्पराएं-** भारतीय धर्म में गणना होती है-

1. *वैदिक धर्म या सनातन धर्म या हिन्दू धर्म,*
2. *जैन धर्म,*
3. *बौद्ध धर्म और सिख धर्म।*

इन धर्मों की उत्पत्ति भारत में हुई है। इनकी जीवन्त परम्पराएं हैं-

(1) **साकार तथा निराकार ईश्वर में आस्था-** भारतीय धर्मों में वैदिक काल में बहुदेवतावाद की पूजा होती थी जिनमें इन्द्र, वरुण, अग्नि, यम, मित्र आदि अनेक देवता थे परन्तु संसार का सृष्टा, पालक व संहर्ता एक ईश्वर को माना गया है। देवतागण ईश्वर के रूप थे। सिन्धु घाटी काल में भी शिव, पार्वती तथा मातृदेवी के पूजन के प्रमाण मिले हैं। साकार रूप में पौराणिक काल में मूर्तिपूजन प्रचलित हुए। किन्तु निराकार ईश्वर की उपासना भी साथ-साथ गतिशील थी। ईश्वर के अवतार के रूप में राम, कृष्ण आदि का पूजन बढ़ता गया। परन्तु बिना मूर्ति पूजन तथा बिना साकार रूप के पूजन भी साथ-साथ विकसित हुआ। आर्य समाज जैसी हिन्दू-सनातन धर्म की संस्थाओं ने ईश्वर के निराकार रूप को पुनर्स्थापित किया तथा मूर्ति पूजन को उपयुक्त नहीं माना।

(2) **आस्तिक तथा नास्तिक धर्म परम्परा-** भारत में हिन्दू सनातन धर्म आस्तिक (ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखने वाला) की प्रथा पर अवलम्बित है जबकि जैन व बौद्ध धर्म तथा सिख धर्म नास्तिकता प्रधान हैं।

(3) **बहुईश्वर रूप या अवतारवाद-** सनातन हिन्दू धर्म में राम, कृष्ण, गणेश, शंकर-शिव आदि अनेक ईश्वर रूपों का प्रचलन है। राम व कृष्ण विष्णु के ही अवतार माने गए हैं।

(4) **अन्तिम संस्कार के दोनों रूप-** सनातन हिन्दू धर्म में शवदाह या मृत व्यक्ति को जलाना तथा छोटे बच्चों को गाड़ना दोनों ही परम्पराएं देखने को मिलती हैं।

(5) **यज्ञ व मूर्ति पूजा-** वेदों में यज्ञों का विधान व बखान है तथा यह परम्परा आर्य समाज तथा उनके हिन्दू संप्रदायों में अभी भी प्रचलन में है जबकि अधिकांश हिन्दू मूर्तिपूजक हैं तथा ईश्वर की मूर्ति बनाकर पूजा करने की परम्परा का पालन करते हैं।

(ब) **राजनीति में जीवित परम्पराएं-** वर्तमान लोकतान्त्रिक भारत में राजनीति राजाओं-महाराजाओं के समय की राजनीति से भिन्न स्वरूप की है। पहले राजाओं-महाराजाओं के युग में राजा तथा उनके सलाहकारों की सलाह के अनुसार नीति निर्धारण होता था परन्तु लोकतन्त्र में राजनीति जनता के प्रतिनिधियों द्वारा निश्चित होती है। फिर भी राजनीति में परिवारवाद की परम्परा जैसी राजाओं के समय में प्रचलन में थी (जिसमें राजा का ज्येष्ठ पुत्र सिंहासन ग्रहण करता था) लगभग उसी जैसे रूप में जीवन्त परम्परा बनकर सम्मुख आई है। प्रायः जनप्रतिनिधि निर्वाचन में अपने ही परिवार के किसी व्यक्ति को अगले निर्वाचन में जीतने का जोर पार्टी तथा जनता में प्रचार द्वारा करने का प्रयास करते हैं। इस परिवारवाद की परम्परा के अनेक उदाहरण सर्वत्र देखे जा सकते हैं।

इसी प्रकार प्राचीन समय में जहाँ राजा जनकल्याण तथा जनहित के कार्य करवाते थे, उसी प्रकार लोकतन्त्र में भी यही परम्परा विकसित हुई है। अंतर है तो यह कि अब नीति नियम संसद व विधानसभा में होते हैं तथा कार्यपालिका को व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका को पृथक-पृथक अधिकार हैं। अब भारत विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्रात्मक देशों में शुमार होता है।

(स) **शिक्षा में जीवन्त परम्पराएं-** गुरु-शिष्य परम्परा अति प्राचीन वैदिक काल से निरन्तर चली आ रही परम्परा है। समय के प्रभाव से स्वरूप में किंचित अंतर अवश्य हुआ है। यह बदलाव समय के अनुसार विकास का प्रतीक है। इस शिक्षा परम्परा का विकास विभिन्न क्षेत्रों में हुआ है तथा नए-नए विषयों संकायों में अंक शिक्षा की व्यवस्था है। 3 वर्ष की आयु के पूर्व

पूर्वप्राथमिक शिक्षा के साथ कक्षा एक तथा दो को आधारभूत (फाउण्डेशन) कोर्स के साथ नई शिक्षा नीति 2020 के प्रावधान को उच्च शिक्षा तथा शोध कार्यों तक शिक्षा को जोड़ा गया है। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में जीवन्त परम्परा को आधुनिक रूप प्रदान किया गया है।

(द) **ज्ञान में जीवन्त परम्पराएं-** भारतीय ज्ञान परम्परा प्राचीन काल से ही अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा योग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। ऋग्वेद के समय से ही शिक्षा प्रणाली जीवन में नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों पर केन्द्रित होकर विनम्रता, सत्यता, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सभी के लिए सम्मान जैसे मूल्यों पर जोर देती थी। वेदों में विद्या को मनुष्यता की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया था। छात्रों को मानव, प्राणियों और प्रकृति के मध्य सन्तुलन को बनाए रखना सिखाया जाता था। सीखने हेतु ज्ञानार्जन में शारीरिक विकास और बौद्धिक विकास दोनों पर ध्यान केन्द्रित किया गया। भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुरूप प्राचीन विश्वविद्यालयों और गुरुकुलों में ज्ञान की शिक्षा दी जाती थी। तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला, उज्जयिनी, काशी आदि विश्वविद्यालय ज्ञान तथा शोध कार्य के केन्द्र थे। इनके पूर्व गुरुकुलों में ज्ञान व शिक्षा अठारह विधाओं, चारों वेदों व उपवेदों के ज्ञान तथा गुरु के निर्देशन में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अनुष्ठानपूर्वक अभ्यास कराया जाता था। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा समृद्ध थी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचारों की समृद्ध परम्परा के आलोक में तैयार की गई नई शिक्षा नीति में भारतीय मूल्यों तथा भारतीय ज्ञान के आधार पर नीति में ज्ञानार्जन के प्रावधान विविधमुखी हैं। इसमें भारतीय भाषाओं के ज्ञान, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन को शामिल कर समृद्ध तथा जीवन्त रूप दिया गया है।

सूचना संचार तथा आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस, अन्तरिक्ष टेक्नोलॉजी, आण्विक शक्ति जैसे नए क्षेत्रों में ज्ञान को भी नई शिक्षा नीति में सम्मिलित किया गया है जिससे आने वाले समय में भारत को विश्व के समृद्ध क्षेत्रों/देशों के समान श्रेणी प्राप्त हो सके।

प्रश्न 3 भारत में धर्म परम्परा और उनकी निरन्तरता की विवेचना कीजिए।

उत्तर- धर्म किसी एक या अधिक पारलौकिक शक्ति में विश्वास और इसके साथ-साथ इसके साथ जुड़ी रीतिरिवाज, परम्परा, पूजन पद्धति और दर्शन का समूह है। प्रोफे. महावीर सरन जैन का धर्म के सम्बन्ध में अभिमत है कि आज धर्म के जिस रूप को प्रचारित एवं व्याख्यायित किया जा रहा है उससे बचने की जरूरत है। वास्तव में धर्म सम्प्रदाय नहीं है। जीवन में हमें जो धारण करना चाहिए वही धर्म है। नैतिक मूल्यों का आचरण ही धर्म है। धर्म वह पवित्र अनुष्ठान है जिससे चेतना का शुद्धिकरण होता है। धर्म वह तत्त्व है जिसके आचरण से व्यक्ति अपने जीवन को चरितार्थ कर पाता है। यह मनुष्य में मानवीय गुणों के विकास की प्रभावना है, सार्वभौम चेतना का सत्संकल्प है।

(1) **सनातन धर्म-** भारत में धर्म की अवधारणा में हिन्दू सनातन धर्म की जीवन्त परम्परा आती है, जिसकी मान्यता है कि सारे संसार में धर्म केवल एक ही है-शाश्वत सनातन धर्म। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से यह चला आ रहा है-उसी का नाम सनातन धर्म है। इसके अतिरिक्त, सब पंथ, मजहब, रिलीजन मात्र हैं। हिन्दुओं की धार्मिक पुस्तक वेद, अरण्यक, उपनिषद,

श्रीमद्भगवतगीता, रामायण, पुराण महाभारत आदि हैं। वेद विशुद्ध आध्यात्मिक और वैज्ञानिक ग्रंथ हैं। वेद पश्चिमी धर्म की परिभाषा तथा पंथ, सम्प्रदाय के विश्वास तथा दर्शन के परे शाश्वत सत्य ज्ञान सागर हैं। वेदों की रचना मानव को सत्य ज्ञान से परिचित कराने के लिए की गई है। वेद पंथ, सम्प्रदाय, मजहब, रिलीजन आदि का प्रतिनिधित्व न करके मानव के लिए हैं।

(2) **जैन धर्म-** जैन धर्म भारत की धर्म परम्परा का ही एक धर्म है। जैन धर्म का मानना है कि यह संसार अनादिकाल से चला आ रहा है। वह अनन्त काल तक चलता रहेगा एवं सभ्यता का विकास निरन्तर होता रहेगा जो एक बिन्दु है। जिन्होंने स्वयं को जीत लिया हो अर्थात् मोह-राग-द्वेष को जीत लिया हो वह जैन अर्थात् उनका अनुसरण करने वाले हैं। जैन धर्म कहता है कि भगवान कोई अलग से नहीं होते वरन् व्यक्ति निज शुद्धात्माक की साधना से भगवान बन सकता है। भगवान कुछ नहीं करता मात्र जानता है, सब अपने कर्मों के उदय से होता है। जैन धर्म कहता है कि कोई बन्धन नहीं है तुम सोचो, समझो, विचारो, फिर तुम्हें जैसा लगे वैसा शीघ्रातिशीघ्र करो। जैन धर्म संसार का एकमात्र धर्म है जो व्यक्ति को स्वतन्त्रता प्रदान करता है। जैन धर्म में भगवान को नमस्कार नहीं है अपितु उनके गुणों को नमस्कार है।

(3) **बौद्ध धर्म-** बौद्ध धर्म एक सत्य अनादि धर्म है। यह श्रमण परम्परा से निकला हुआ धर्म है, बाकी के सब पंथमात्र हैं। धम्मपद में भी भगवान बुद्ध का उपदेश मिलता है कि यही सनातन धर्म है, इसे ही शुद्ध प्रत्यक्ष धम्म मार्ग कहा गया है। भगवान गौतम बुद्ध से पहले भी बुद्ध हुए हैं। बौद्ध धर्म के संस्थापक स्वयं बुद्धत्व है न कि भगवान गौतम बुद्ध इन्होंने तो धर्मचक्र परिवर्तित करके महान उपदेश दिए और बुद्धों की अनादि परम्परा आगे बढ़ाई। बौद्ध धर्म ईश्वर के अस्तित्व को नकारता है और इस धर्म का केन्द्र बिन्दु मानव है। बौद्ध धर्म और कर्म के सिद्धान्तों को मानते हैं जिनको तथागत भगवान गौतम बुद्ध ने प्रचारित किया था। बौद्ध भगवान गौतम बुद्ध को नमन करते हैं। त्रिपीटक बौद्ध धर्म ग्रंथ है।

(4) **सिख धर्म-** सिख धर्मावलंबी एक ही निराकार ईश्वर को मानते हैं। बराबरी, सहनशीलता, बलिदान, निडरता के नियमों पर चलते हुए एक निराले व्यक्तित्व के साथ जीते हुए उस ईश्वर में लीन हो जाना सिख का जीवन उद्देश्य है। इनका ग्रन्थ "गुरु ग्रन्थ साहब" है।

अस्तु, भारत की जीवन्त धर्म परम्परा में उक्तानुसार सनातन धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म और सिख धर्म आते हैं जो निरन्तर भारत भूमि में विकसित तथा प्रचलित हुए।

प्रश्न 4 भारतीय परम्परा के संवाहक के रूप में भारतीय मन्दिर तथा मठों का वर्णन कीजिए।

उत्तर- भारतीय धर्म परम्परा के संवाहक के रूप में भारतीय मन्दिरों तथा मठों का विशेष महत्त्व है।

(1) **भारतीय मन्दिर-** भारतीय धर्मों के उपासना स्थल को मन्दिर कहते हैं। यह आराधना और पूजा-अर्चना के लिए निश्चित की हुई जगह या देवस्थान है अर्थात् जिस स्थान पर किसी आराध्य देव के प्रति ध्यान, चिंतन किया जाए या वहाँ मूर्ति आदि रखकर पूजा-अर्चना की जाए उसे मंदिर कहते हैं। मन्दिर का शाब्दिक अर्थ 'घर' है। वस्तुतः सही शब्द 'देवमन्दिर', 'शिव मंदिर', 'काली मन्दिर', 'गणेश मन्दिर' आदि हैं।

मन्दिर व मठ में अन्तर- मठ वह स्थान है जहाँ किसी सम्प्रदाय, धर्म या परम्परा विशेष में आस्था रखने वाले शिष्य, आचार्य या धर्म गुरु अपने सम्प्रदाय के संरक्षण और संवर्द्धन के उद्देश्य से धर्मग्रन्थों पर विचार विमर्श करते हैं या उनकी व्याख्या करते हैं, जिससे उस सम्प्रदाय

के मानने वालों का हित हो और उन्हें पता चल सके कि उनके धर्म में क्या है। उदाहरण के लिए बौद्ध विहारों की तुलना हिन्दू मठों या ईसाई मोनेस्ट्रीज से की जा सकती है। मठ शब्द का प्रयोग शंकराचार्य के काल यानी 7वीं-8वीं शताब्दी से शुरू हुआ माना जाता है।

मन्दिर निर्माण का इतिहास- गुप्तकाल (चौथी से छठी शताब्दी) में मन्दिरों के निर्माण का उत्तरोत्तर विकास दृष्टिगोचर होता है। पहले लकड़ी के मन्दिर बनते थे या बनते होंगे लेकिन जल्दी ही भारत में अनेक स्थानों पर पत्थर और ईंट के मन्दिर बनने लगे। सातवीं शताब्दी तक देश के आर्य संस्कृति वाले भागों में पत्थरों से बने मन्दिरों का निर्माण होना पाया गया है।

बौद्ध और जैन धर्मों द्वारा धार्मिक उद्देश्यों के निमित्त कृत्रिम गुफाओं का प्रयोग किया जाता था और हिन्दू धर्मावलम्बियों द्वारा भी इसे आत्मसात कर लिया गया था। फिर भी हिन्दुओं द्वारा गुफाओं में निर्मित मन्दिर तुलनात्मक रूप से बहुत कम हैं और गुप्तकाल के पूर्व तो कोई भी साक्ष्य इस सम्बन्ध में नहीं पाया जाता।

मन्दिरों का अस्तित्व और उनकी भव्यता गुप्त राजवंश के समय से देखने को मिलती है। उत्तरी भारत में हिन्दू मन्दिरों की उत्कृष्टता उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश के खजुराहो में देखने को मिलती है। उड़ीसा के भुवनेश्वर में स्थित 1000 वर्ष पुराना लिंगराजा का मन्दिर वास्तुकला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। 13वीं शताब्दी में निर्मित कोणार्क का सूर्य मन्दिर इस क्षेत्र का सबसे बड़ा और विश्वविख्यात मन्दिर है।

प्रसिद्ध मन्दिर- भारत में हिन्दू मन्दिर, जैन मन्दिर, बृहदेश्वर मन्दिर, मीनाक्षी मन्दिर, कामाख्या मन्दिर, अक्षरधाम मन्दिर, सोमनाथ मन्दिर, शाकम्भरी देवी मन्दिर आदि प्रसिद्ध मन्दिर हैं।

मन्दिरों का महत्त्व- मन्दिरों में सकारात्मक वातावरण होता है जो कि घर पर करना सम्भव नहीं हो पाता। मन्दिरों में प्रार्थना, ध्यान, कीर्तन, यज्ञ, पूजा, आरती, शंख, घंटियाँ आदि वस्तुएं होती हैं। इन सबसे मन्दिर का वातावरण धार्मिक हो जाता है। इसी कारण से मन्दिर जाने पर मन को शान्ति मिलती है और व्यक्ति में परेशानियाँ कम हों जाती हैं।

हिन्दू मन्दिर वास्तुकला- भारतीय स्थापत्य में हिन्दू मन्दिरों का विशेष स्थान है। हिन्दू मन्दिर में अन्दर एक गर्भगृह होता है जिसमें मुख्य देव/आराध्य भगवान/देवी की मूर्ति स्थापित होती है। गर्भगृह के ऊपर टावरनुमा रचना होती है जिसे शिखर कहते हैं। मन्दिर में गर्भगृह के चारों ओर परिक्रमा हेतु स्थान होता है। इसके अलावा मन्दिर में सभा के लिए कक्ष हो सकता है।

धर्म परम्परा के संवाहक- मन्दिरों में प्रतिदिन पूजन होता है तथा प्रतिदिन श्रद्धालु आते हैं। इससे स्वयं धर्म परम्परा का संवाहन होता है। विशेष मन्दिरों में यात्रियों का जत्था समय-समय पर जाता है। प्रसिद्ध मन्दिर में श्रद्धालु का दर्शन हेतु जाना शुभदायक माना गया है।

(2) **मठ-** मठ का अर्थ ऐसे संस्थानों से है जहाँ मठ के गुरु अपने शिष्यों को शिक्षा, उपदेश आदि प्रदान करते हैं। ये गुरु प्रायः धर्मगुरु होते हैं तथा उनके द्वारा दी गई शिक्षा मुख्यतः आध्यात्मिक होती है। मठों में इन कार्यों के अतिरिक्त सामाजिक सेवा, साहित्य इत्यादि से सम्बन्धित कार्य भी होते हैं। मठ सनातन हिन्दू धर्म के अवलम्बियों के होते हैं। ईसाई धर्म में मौनेट्री, प्रायरी तथा बौद्ध मठों को विहार करते हैं।

शंकराचार्य के चार मठ- हिन्दू धर्म का संत समाज शंकराचार्य द्वारा नियुक्त चार मठों के अधीन है। हिन्दू धर्म की एकजुटता और व्यवस्था के लिए इन चार मठों की परम्परा को जानना आवश्यक है। इन चार मठों से ही गुरू-शिष्य परम्परा का निर्वाह होता है। चार मठों के संतों को छोड़कर अन्य किसी को गुरू बनाना हिन्दू सन्त धारा के अन्तर्गत नहीं आता।

आदिशंकराचार्य ने जो चार पीठ स्थापित किये, उनके काल-निर्धारण में उत्थदित की गई भ्रांतियाँ-

1. *उत्तर दिशा में बदरीकाश्रम में ज्योतिर्पीठ स्थापना-युधिष्ठिर संवत*
2. *पश्चिम दिशा में द्वारिका शारदापीठ*
3. *दक्षिण श्रृंगेरी पीठ*
4. *पूर्व दिशा जगन्नाथपुरी गोवर्द्धन पीठ*

शंकराचार्य जी ने इन मठों की स्थापना के साथ-साथ उनके मठाधीशों की भी नियुक्ति की जो बाद में स्वयं शंकराचार्य कहे जाते हैं। जो व्यक्ति किसी भी मठ के अन्तर्गत संन्यास लेता है, वह दसनामी सम्प्रदाय में से किसी एक सम्प्रदाय की साधना करता है। ये चार मठ हैं-

(1) **श्रृंगेरी मठ-** श्रृंगेरी शारदा पीठ भारत के दक्षिण में चिकमंगलूर में स्थित है। श्रृंगेरी मठ के अन्तर्गत दीक्षा प्राप्त करने वाले संन्यासी के नाम के बाद सरस्वती, भारती तथा पुरी सम्प्रदाय नाम विशेषण लगाया जाता है जिससे उन्हें उन सम्प्रदाय का संन्यासी माना जाता है। इस मठ का महाकाव्य 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा मठ के अन्तर्गत यजुर्वेद को रखा गया है। इस मठ के प्रथम मठाधीश आचार्य सुरेश्वर जी थे जिनका पूर्व नाम मंडन मिश्र था। वर्तमान में स्वामी भारती कृष्णतीर्थ इसके 36वें मठाधीश हैं।

(2) **गोवर्धन मठ-** गोवर्धन मठ भारत के पूर्वी भाग में ओडिसा राज्य के जगन्नाथपुरी में स्थित है। गोवर्धन मठ के अन्तर्गत दीक्षा प्राप्त करने वाले संन्यासियों के नाम के बाद 'वन' या 'आरण्य' संप्रदाय का विशेषण लगाया जाता है जिससे उन्हें उक्त संप्रदाय का संन्यासी माना जाता है।

इस मठ का महावाक्य है 'प्रज्ञान ब्रह्म' तथा इस मठ के अन्तर्गत ऋग्वेद को रखा गया है। इस मठ के प्रथम मठाधीश आदि शंकराचार्य के प्रथम शिष्य पद्मपादचार्य हुए। वर्तमान में निश्चानन्द सरस्वती इस मठ के 145वें मठाधीश हैं।

(3) **शारदा मठ-** शारदा (कालिका) मठ गुजरात में द्वारकाधाम में स्थित है। शारदा मठ के अन्तर्गत दीक्षा प्राप्त करने वाले संन्यासियों के नाम के बाद 'तीर्थ' और 'आश्रम' सम्प्रदाय नाम विशेषण लगाया जाता है जिससे उन्हें उक्त सम्प्रदाय का संन्यासी माना जाता है। इस मठ का महावाक्य है 'तत्त्वमसि' तथा इसके अन्तर्गत 'सामवेद' को रखा गया है। शारदा मठ के प्रथम मठाधीश हस्तामलक (पृथ्वीधर) थे। हस्तामलिक शंकराचार्यजी के प्रमुख चार शिष्यों में से एक थे। वर्तमान में पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदापीठाधीश जगत्गुरू शंकराचार्य स्वामी सदानन्द सरस्वती जी इसके 80वें मठाधीश हैं।

(4) **ज्योतिर्मठ-** उत्तरांचल के बद्रीनाथ में ज्योतिर्मठ स्थित है। ज्योतिर्मठ के अन्तर्गत दीक्षा प्राप्त करने वाले संन्यासियों के नाम के बाद 'गिरि', 'पर्वत' एवं 'सागर' सम्प्रदाय नाम विशेषण लगाया जाता है जिससे उन्हें उक्त सम्प्रदाय का संन्यासी माना जाता है। इस मठ का महावाक्य 'अयमात्मा ब्रह्म' है। इस मठ के अन्तर्गत अथर्ववेद को रखा गया है। ज्योतिर्मठ के

प्रथम मठाधीश त्रोटकाचार्य बनाए गए थे। वर्तमान में परमाराध्य परमधर्माधीश अनन्तश्रीविभूषित जगदगुरू शंकराचार्य स्वामी श्री : अविमुक्तेश्वरानन्द सरस्वती महाराज 1008 जी इसके 53वें मठाधीश हैं।

उक्त मठों तथा इनके अधीन उपमठों के अन्तर्गत संन्यस्त सन्तों को गुरु बनाना या उनसे दीक्षा लेना ही हिन्दू धर्म के अन्तर्गत माना जाता है। यही हिन्दुओं की सन्तधारा मानी गई है।

भारतीय धर्म परम्परा के संवाहक के रूप में इन मठों का अत्यधिक महत्त्व है।

प्रश्न 5 भारत के तीर्थों में प्रमुख तीर्थस्थानों का वर्णन कीजिए।

उत्तर- हिन्दू संस्कृति में कई प्रकार के तीर्थ बताए गए हैं पर इनमें से मुख्य 12 तीर्थ हैं जो विशेष महत्त्व रखते हैं-

(1) **चार धाम-** बद्रीनाथ (उत्तराखण्ड), द्वारका (गुजरात), जगन्नाथपुरी (उड़ीसा), रामेश्वरम (तमिलनाडु) चार धाम के नाम से प्रसिद्ध तीर्थ हैं। ये चार धाम चार दिशाओं में स्थित हैं अर्थात् उत्तर दिशा में बद्रीनाथ, दक्षिण में रामेश्वर, पूर्व में जगन्नाथपुरी और पश्चिम में द्वारकापुरी। प्राचीन समय से ही ये चार धाम तीर्थ के रूप में मान्य थे, लेकिन इनके महत्त्व का प्रचार जगत्गुरु शंकराचार्य जी ने किया। भगवान शिव और विष्णु के मन्दिरों को चार धाम कहा जाता है। स्कन्द पुराण के तीर्थ प्रकरण के अनुसार चार धाम यात्रा को महत्त्वपूर्ण माना गया है। चार धामों के दर्शन करने से हर तरह के पाप नष्ट हो जाते हैं और सकारात्मक ऊर्जा भी बढ़ती है। धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार प्राचीन तीर्थ स्थानों पर दर्शन करने से पौराणिक ज्ञान बढ़ता है। देवी-देवताओं से जुड़ी कथाएं व परम्पराएं मालूम होती हैं। प्राचीन संस्कृति को जानने का अवसर मिलता है। मन्दिर के पण्डित और आसपास रहने वाले लोगों से सम्पर्क होता है जिससे अलग-अलग रीति-रिवाजों को जानने का अवसर मिलता है।

(1) **बद्रीनाथ धाम -** यह तीर्थ बद्रीनाथ के रूप में भगवान विष्णु को समर्पित है। ये अलकनन्दा नदी के किनारे बसा है। माना जाता है कि इसकी स्थापना मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने की थी। इस मन्दिर में नरनारायण की पूजा होती है और अखण्ड दीप जलता है जो कि अचल ज्ञान ज्योति का प्रतीक है। यहाँ पर श्रद्धालु तप्तकुण्ड में स्नान करते हैं। बद्रीनाथ मन्दिर के कपाट अप्रैल के आखिरी या मई के शुरुआती दिनों में दर्शन के लिए खोले जाते हैं। लगभग 6 महीने तक पूजा के बाद नवम्बर के दूसरे सप्ताह में मन्दिर के पट बन्द कर दिये जाते हैं।

(2) **रामेश्वर धाम-** रामेश्वर तीर्थ तमिलनाडु के रामनाथपुरम जिले में समुद्र के किनारे स्थित है जो कि भगवान शिव को समर्पित है। यहाँ शिवजी की पूजा लिंग रूप में की जाती है जो कि बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक माना जाता है। यह हिन्द महासागर और बंगाल की खाड़ी से चारों ओर से घिरा हुआ एक सुन्दर शंख आकार का द्वीप है। माना जाता है कि भगवान राम ने ही इस रामेश्वर लिंग की स्थापना की थी।

(3) **जगन्नाथपुरी धाम-** पुरी धाम वैष्णव सम्प्रदाय का मन्दिर है जो भगवान विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण को समर्पित है। इस मन्दिर में तीन मुख्य देवता, भगवान जगन्नाथ, उनके बड़े भाई बलभद्र और बहन सुभद्रा हैं। यह तीर्थ पुराणों में बताई गई 7 पवित्र पुरियों में एक है। यहाँ हर वर्ष रथ यात्रा का आयोजन किया जाता है। इस आयोजन में दुनिया भर से भगवान श्रीकृष्ण के भक्त आते हैं। यहाँ मुख्य रूप से भात का प्रसाद चढ़ाया जाता है।

(4) **द्वारिका धाम-** गुजरात के पश्चिमी सिरे पर समुद्र के किनारे बसी द्वारिकापुरी को चार धामों में एक माना गया है। ये भगवान श्रीकृष्ण को समर्पित तीर्थ है। यह तीर्थ पुराणों में बताई गई मोक्ष देने वाली सात पुरियों में एक है। माना जाता है कि इसे श्रीकृष्ण ने बसाया था। स्थानीय लोगों और कुछ मन्थों के अनुसार असली द्वारिका तो पानी में समा गई, लेकिन कृष्ण की इस भूमि को आज भी पूज्य माना जाता है। इसलिए द्वारिका धाम में श्रीकृष्ण स्वरूप का पूजन किया जाता है।

उक्त चार धाम के अतिरिक्त उत्तराखण्ड के चार धाम जिन्हें छोटा चार धाम के नाम से भी जाना जाता है, वे हैं-यमनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ और बद्रीनाथ।

(5) **पुष्कर-** राजस्थान के अजमेर जिले में स्थित ब्रह्माजी का एकमात्र मन्दिर।

(6) **हरिद्वार-** उत्तराखण्ड के हरिद्वारा जिले में प्रमुख हिन्दू तीर्थ।

(7) **प्रयागराज-** उत्तरप्रदेश के (पूर्व नाम इलाहाबाद) प्रयागराज जिले में स्थित।

(8) **उज्जैन-** मध्यप्रदेश में शिप्रा नदी के किनारे बसा नगर। यहाँ महाकालेश्वर स्थित है।

(9) **नासिक-** महाराष्ट्र में गोदावरी के तट पर बसा।

(10) **गया-** बिहार राज्य में स्थित नगर। पिंडदान के लिए प्रसिद्ध।

(11) **मथुरा-** उत्तर प्रदेश का प्रमुख नगर। भगवान कृष्ण की जन्मस्थली।

(12) **वृन्दावन-** उत्तरप्रदेश का नगर तथा मथुरा जिले में स्थित। श्रीकृष्ण की लीलाओं से जुड़ा।

प्रश्न 6 भगवदगीता में सांस्कृतिक मूल्यों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- सांस्कृतिक मूल्य में किसी समाज के विश्वास, दृष्टिकोण और प्रथाएं सम्मिलित होती हैं। सांस्कृतिक मूल्यों को धर्म, इतिहास, परम्पराओं और सामाजिक मापदण्डों जैसे विभिन्न कारकों द्वारा आकार मिलता है। इससे सार्वजनिक सेवा सहित विभिन्न सन्दर्भों में व्यवहार का मार्गदर्शन होने के साथ निर्णय प्रभावित होता है।

नैतिक व्यवहार सार्वजनिक सेवा का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। जीवन में नैतिक व्यवहार विभिन्न सांस्कृतिक मूल्यों से प्रभावित होता है।

हिन्दू सनातन धर्म में भगवदगीता और रामचरितमानस धार्मिक ग्रंथ सांस्कृतिक मूल्यों से ओतप्रोत हैं।

(1) **भगवद्गीता में सांस्कृतिक मूल्य-** क्लाइड क्लुरवोहन ने मूल्य की परिभाषा इस रूप में दी है-"मूल्य एक अवधारणा है, स्पष्ट या अन्तर्निहित, किसी व्यक्ति की विशिष्ट या किसी समूह की विशेषता, वांछनीय, जो उपलब्ध तरीकों, साधनों और कार्रवाई के अन्त से चयन को प्रभावित करती है।"

सांस्कृतिक मूल्यों से आशय संस्कृति के उन मूल्यों से है जो उपयोगी, महत्त्वपूर्ण हैं तथा व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने की शक्ति रखते हैं। नैतिकता, बड़ों के प्रति सम्मान, धर्म, विनम्रता, सहिष्णुता, समानता, बन्धुत्व, उदारता, परम्परा आदि ऐसे ही सांस्कृतिक मूल्य हैं।

भगवद्गीता वह ग्रन्थ है जिसमें महाभारत युद्ध प्रारम्भ होने से ठीक पहले भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिये उन्हें प्रदर्शित किया गया है। भगवद्गीता महाभारत के भीष्मपर्व का अंग है। गीता में 18 अध्याय और 700 श्लोक हैं। आज से लगभग 4500 वर्ष

पूर्व (2175 ई.पू.) गीता का ज्ञान बोला गया था। गीता की गणना **प्रस्थानत्रयी** में की जाती है जिसमें उपनिषद और ब्रह्मसूत्र भी सम्मिलित हैं। अतएव भारतीय परम्परा के अनुसार गीता का वही स्थान है जो उपनिषद और ब्रह्मसूत्रों का है। महाभारत के युद्ध के समय जब अर्जुन अपने लोगों से युद्ध करने से मना करते हैं तब श्रीकृष्ण उन्हें उपदेश देते हैं और कर्म व धर्म के सच्चे ज्ञान से अवगत कराते हैं। श्रीकृष्ण के इन्हीं उपदेशों को भगवत्गीता ग्रंथ में संकलित किया गया है। गीता के 18 अध्यायों में वर्णित मूल्यों को दर्शाया/रेखांकित किया गया है-

प्रथम अध्याय- प्रथम अध्याय का नाम 'अर्जुनविषाद योग' है जिसमें श्रोता और वक्ता दोनों ही शान्ति के लिए नहीं वरन **जीवन** की प्रगाढ़ समस्या के समाधान के लिए प्रवृत्त होते हैं। शौर्य और **धैर्य**, साहस और बल इन चारों गुणों की प्रभूत मात्रा से अर्जुन का व्यक्तित्व बना था और इन चारों के ऊपर दो गुण और थे एक **क्षमा**, दूसरी प्रज्ञा। अर्जुन निर्णय नहीं ले पा रहा था कि युद्ध करे या वैराग्य ले ले। इस मनोभाव की चरम स्थिति में उसने धनुषबाण एक ओर डाल दिये। कृष्ण ने अर्जुन की यह स्थिति देखकर जान लिया कि इस अद्भुत **क्षत्रिय** का मनोबल टूट चुका है। अतएव कृष्ण के सामने एक गुरु कर्त्तव्य आ गया। अर्जुन के **मन** का परिवर्तन श्रीकृष्ण का लक्ष्य हुआ। इसी तत्त्व चर्चा का विषय गीता है। अर्जुन युद्ध का शंखनाद होने पर कायरत व शोक युक्त वचन कहता है।

दूसरा अध्याय- दूसरे अध्याय में सांख्य योग है। इसमें जीवन की दो प्राचीन सम्मानित **परम्पराओं** का तर्कों द्वारा वर्णन आया है। अर्जुन को कृपण अवस्था में रोता देखकर श्रीकृष्ण ने उनका **ध्यान** दिलाया कि हृदय की क्षुद्र दुर्बलता वीर के लिए उचित नहीं। जन्म और मृत्यु बारी-बारी से होते ही हैं, ऐसा समझकर शोक करना उचित नहीं है। फिर एक दूसरा दृष्टिकोण स्वधर्म का है। कर्मयोगी के लिए **कर्म** का उपदेश श्रीकृष्ण ने दिया।

तीसरा अध्याय- कर्मयोग नाम तीसरे अध्याय में अर्जुन के प्रश्न तथा श्रीकृष्ण के समाधानकारक उपदेश/उत्तर हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं कि सांख्यवादियों के लिए ज्ञान योग है और कर्मयोगियों के लिए कर्मयोग है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्म किये बिना तो खाने के लिए अन्न भी नहीं मिल सकता। कृष्ण स्वयं अपना दृष्टान्त देते हुए कहते हैं कि मैं नारायण का रूप हूँ, मेरे लिए कोई कर्म शेष नहीं है, फिर भी तन्द्रारहित होकर कर्म करता हूँ।

चौथा अध्याय- इस अध्याय में जिसका नाम 'ज्ञान-कर्म-संन्यास-योग' है बताया गया है कि कर्म करते हुए भी कर्म संन्यास का फल किस उपाय से प्राप्त किया जा सकता है। इसमें बताया गया है कि जब जब धर्म की ग्लानि होती है तब तब मनुष्यों के बीच भगवान अवतार लेते हैं।

पाँचवाँ अध्याय- इस अध्याय में **कर्म** के साथ जो मन का सम्बन्ध है उसके **संस्कार** पर विशेष ध्यान दिलाया गया है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं सृष्टि के हर जीव में समान रूप से रहता हूँ अतः प्राणी को **समदर्शी** होना चाहिए।

छठा अध्याय- छठा अध्याय **आत्म संयम** योग है जिसका विषय नाम से ही स्पष्ट है। जितने विषय हैं उन सबसे इन्द्रियों का संयम, यही कर्म और ज्ञान का निचोड़ है। सुख में और दुख में मन की समान स्थिति, इसे ही योग कहते हैं।

सातवाँ अध्याय- इसका **ज्ञान विज्ञान योग नाम** है। श्रीकृष्ण उपदेश देते हैं कि मेरे भक्त चाहे जिस रूप में भजें परन्तु अन्ततः मुझे ही प्राप्त होते हैं। मैं माया योग से अप्रकट रहता हूँ और मूर्ख लोग मुझे केवल साधारण मनुष्य समझते हैं।

आठवाँ अध्याय- अक्षर धर्मयोग नामक उक्त अध्याय में उपनिषदों में अक्षर-विद्या का विस्तार बताया गया है। गीता के शब्दों में ॐ एकाकार ब्रह्म बताया गया है।

नवाँ अध्याय- इसे राजगुह्य योग नाम दिया गया है अर्थात् यह **अध्यात्म** विद्या विद्याराज्ञी है, यह ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है।

दसवाँ अध्याय- इस अध्याय का नाम **विभूतियोग** है जिसका सार यह है कि लोक में जितने भी देवता हैं, सब एक ही भगवान की विभूतियाँ हैं। जो सत्व जीव बलयुक्त अथवा चमत्कारयुक्त है वह सब भगवान का रूप है। यह मान लेने से चित्त निर्विरोध स्थिति में पहुँच जाता है।

ग्यारहवाँ अध्याय- विश्वरूप दर्शन नामक 11वें अध्याय में उपदेश है कि अर्जुन ने भगवान का विश्वरूप देखा। विराट रूप का अर्थ है मानवीय धरातल और परिधि के ऊपर जो अनन्त विश्व का प्राणवन्त रचना विधान है उसका साक्षात् दर्शन।

(12) **बारहवाँ अध्याय- भक्तियोग** नामक बारहवाँ अध्याय में उपदेश है कि जो जानने योग्य है, जिसको जानकर परमानन्द प्राप्त हो अर्थात् वो परमात्मा ही **सत्य** है।

(13) **तेरहवाँ अध्याय-** इसमें सीधा विषय क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का विचार है। यह शरीर क्षेत्र है, उसका जानने वाला क्षेत्रज्ञ है।

(14) **चौदहवाँ अध्याय-** इसका नाम गुणत्रय विभाग योग है। यह विषय समस्त वैदिक, दार्शनिक और पौराणिक तत्त्व चिंतन का निचोड़ है-**सत्व, रज, तम, नाम तीन गुण** की अनेक व्याख्याएं हैं। अकेला सत्व शान्त स्वभाव से प्रकाश की तरह स्थिर रहता है और अकेला तम भी जड़वत् निष्चेष्ट रहता है किन्तु दोनों के बीच में छाया हुआ रजोगुण उन्हें चेष्टा के धरातल पर खींच लाता है।

(15) **पन्द्रहवाँ अध्याय-** इसका नाम **पुरुषोत्तम योग** है। इसमें विश्व का अश्वत्थ रूप में वर्णन किया गया है। यह अश्वत्थ रूपी संसार महान विस्तारवाला है। देश और काल में इसका कोई अन्त नहीं है।

(16) **सोलहवाँ अध्याय-** देवासुर सम्पद्विभाग योग नाम के इस अध्याय में फल सहित दैवी और आसुरी व्यक्ति और सम्पदा का कथन किया गया है। आसुरी सम्पदा वालों के लक्षण और उनकी अधोगति का वर्णन भी है। इसके अलावा शास्त्र विपरीत आचरणों को त्यागने और शास्त्रानुकूल **आचरणों** के लिए प्रेरणा दी गई है।

(17) **सत्रहवाँ अध्याय-** श्रद्धात्रय विभाग योग नाम से इस अध्याय में श्रद्धा का और शास्त्र विपरीत घोर तप करने वालों के विषय का वर्णन है। इससे **आहार, यज्ञ, तप** और **दान** के पृथक भेद बताए गए हैं। इसके अलावा ॐ तत्सत के प्रयोग की व्याख्या की गई है।

(18) **अठारहवाँ अध्याय-** मोक्ष संन्यास योग नाम के इस अध्याय में **त्याग** का विशद वर्णन, कर्मों के होने में सांख्य सिद्धान्त का कथन, तीनों गुणों के अनुसार ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, बुद्धि, धृति और सुख के पृथक-पृथक भेद का वर्णन, फल सहित वर्ण धर्म के विषय का वर्णन, ज्ञाननिष्ठा का वर्णन, **भक्ति सहित कर्मयोग** का विवेचन और अन्त में श्रीगीताजी के महात्म का वर्णन है।

प्रश्न 7 रामचरितमानस में निहित सांस्कृतिक मूल्यों को बताइए।

उत्तर- रामचरित मानस अवधी भाषा में गोस्वामी तुलसीदासजी के द्वारा 16वीं शताब्दी में रचित एक महाकाव्य है। इसमें निहित भारतीय संस्कृति के मूल्य अनूठा स्थान रखते हैं। यह रचना मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र में अन्तर्निहित अनेक सांस्कृतिक मूल्यों को अभिव्यक्त करती है। इस रचना को सनातन धर्म का द्योतक भी कहा जा सकता है। सनातनधर्मी हिन्दुओं के घरों में रामचरित मानस प्रायः सर्वगृहों में उपलब्ध है। वे इसका नियमित पठन भी करते हैं या सुनते हैं। रामचरित मानस ऐसा महाकाव्य है जो जीवन और संघर्ष की परिचायक है।

रामचरित मानस में निहित सांस्कृतिक मूल्य- सांस्कृतिक मूल्यों का जितना चित्रण मानस में किया गया है उतना शायद ही किसी और ग्रन्थ में हो, क्योंकि इसमें श्रीरामजी के माध्यम से, लक्ष्मणजी के मध्यम से और अन्य चरित्रों के माध्यम से शुद्ध आचरण की चरम सीमा बताई गई है। जैसे मर्यादा की चरम सीमा, भ्रातृ प्रेम की चरमसीमा, भक्ति की चरम सीमा इत्यादि। इसमें अन्तर्निहित सांस्कृतिक मूल्य इस प्रकार है-

(1) **माता-पिता की आज्ञापालन एवं उनको सर्वोच्च सम्मान-** सनातन हिन्दू धर्म में माता को देवताओं से भी सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। माता और पिता पृथ्वी और आकाश के समतुल्य माने गए हैं। मानस में श्रीराम के माध्यम से माता और पिता की आज्ञा को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। श्रीराम ने वनगमन को जिस प्रकार शिरोधार्य किया वह उस युग में भी परम आदरणीय है और आगे भी अनुकरणीय है। कितने भी दुख, कितनी भी तकलीफ क्यों न हो राम ने माता-पिता की आज्ञा का पालन किया। यह आज्ञापालन तथा सम्मान देना सांस्कृतिक मूल्य है जिसे रचयिता तुलसीदासजी ने चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया। इसी प्रकार गुरुजनों का सम्मान राम तथा अन्य पात्रों ने शालीनता के साथ निभाया है।

(2) **गुरुजनों की आज्ञा शिरोधार्य-** गुरु वशिष्ठ की आज्ञा को भी सभी पात्रों ने समुचित सम्मान देकर इन सांस्कृतिक मूल्यों को गौरवान्वित किया।

(3) **भ्रातृप्रेम-** लक्ष्मण ने भ्रातृप्रेम के मूल्य को चरम सीमा तक निभाया है। यहाँ तक कि उन्होंने वनों में निद्रा का भी त्याग वनवास के दौरान किया। अपने गृहस्थ जीवन को भी भ्राता राम पर निछावर कर दिया। भ्राता भरत द्वारा राजसिंहासन पर श्रीराम की चरण पादुकाएं रखकर राज्य किया गया। भरत और शत्रुधन ने तथा लव-कुश ने भी भ्रातृप्रेम का आचरण किया।

(4) **राजा का प्रजासेवक होना-** राजा का कर्त्तव्य है कि जनता/प्रजा की सेवा करना परन्तु रामचरित मानस के राम ने एक धोबी के कहने पर अपनी गर्भवती पत्नी सीता का त्याग कर दिया जो मर्यादा की चरम सीमा है।

(5) **मानवीय गुणों का संगम-** भारतीय संस्कृति में मानवीय गुणों के अन्तर्गत प्रेम, त्याग, करुणा, समर्पण आदि मूल्यों का बहुत अधिक महत्त्व है। परिवार, समाज, देश या सम्पूर्ण विश्व इन सबमें मानवीय रिश्तों का निर्वाह कर सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात करने वाले श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, हनुमान आदि के कृतित्व में यह झलकता है।

(6) **पर्यावरण सुरक्षा एवं प्रकृति प्रेम-** रामचरित मानस में प्रकृति के साथ, प्रकृति प्रेम, जीवप्रेम यानी सभी जीवों को समान मान्यता दी गई है। पंचवटी, अशोक वाटिका इत्यादि का सौन्दर्य वर्णन मानस में अनूठा है। यहाँ पर प्रकृति संरक्षण एवं पशुपक्षी प्रेम भी दर्शनीय है।

(7) **वचन पालन-** कहे हुए वचनों के पालन के सम्बन्ध में मानस की चौपाई है-**"रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाए पर वचन ना जाई।"** राजा दशरथ हो या श्रीराम, वचन का पालन तन, मन, धन से सभी ने किया। वचन पालन में तो राजा दशरथ अपने प्राणों से ही हाथ धो बैठे, परन्तु फिर भी वचन का पालन किया। इसी प्रकार श्रीराम ने अपने वचन का पालन प्रसन्नता से किया और 14 वर्ष तक वनवास किया।

(8) **आस्था, विश्वास के मूल्य-** रामायण में आस्था और विश्वास की पराकाष्ठा है जिसमें पत्थर भी पानी में तैर जाते हैं। रामसेतु इसका प्रमाण है। पत्थर का पानी में तैरना आस्था की पराकाष्ठा है।

(9) **सर्वत्र मर्यादित आचरण-** श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है। पूरे जीवनकाल में सभी से उनका व्यवहार और आचरण मर्यादित रहा है। अन्य सभी पात्रों के भी मर्यादित आचरण के उदाहरण मानस में मिलते हैं।

(10) **आत्म संयम-** मानस में नायक तथा अन्य चरित्रों का वाणी व आचरण में संयम दिखाई देता है।

प्रश्न 8 राजनीति, अर्थव्यवस्था और शिक्षा में प्राचीन भारतीय नैतिकता और परम्पराओं के प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होते हैं-इस कथन की व्याख्या कीजिए।

उत्तर- प्राचीन भारत (मध्यकालीन से पूर्व का) में ज्यादातर लोग धार्मिक प्रवृत्ति के थे, उनके आचरण में नैतिकता थी तथा पीढ़ी दर पीढ़ी स्थापित परम्पराओं का अनुसरण करते थे। इसके प्रतिबिम्ब आधुनिक काल की राजनीति, अर्थव्यवस्था तथा शिक्षा में दृष्टिगत होते हैं। यद्यपि आजकल भौतिकतावाद से इनमें भ्रष्टाचार, रिश्वत, गबन, भाई-भतीजावाद का अधिक बोलबाला है तथापि प्राचीन भारत की नैतिकता और परम्पराओं की झलक राजनीति, अर्थव्यवस्था एवं शिक्षा में प्रतिबिम्बित है।

(1) **राजनीति में नैतिकता और प्राचीन परम्पराएं-** प्राचीन भारत में मुख्यतः राजशाही की परम्परा थी तथा विजयी राजा दूसरे प्रतिद्वंद्वी का राज अपने राज्य में लड़ाई द्वारा जीत कर मिला लेते थे, फिर भी विजयी प्रजा पर अत्याचार न कर उन्हें राजाश्रय देते और उनके पालन तथा कल्याण के कार्य करने की नैतिकता को अपनाते थे। आज के भारत में लोकतन्त्र है तथा राजशाही समाप्त हो गई है परन्तु लोक कल्याण के कार्यों तथा प्रजा के पालन की परम्परा समाप्त नहीं हुई है तथा जीवन्त रूप में है। अब राजनीति भारत में भारतीय संविधान के अनुसार चलती है जिसमें स्वतन्त्र कार्यपालिका, न्यायपालिका व व्यवस्थापिका की व्यवस्था है। राज्य ने प्रजा को मौलिक अधिकार दिये हैं और राज्य के प्रति कर्त्तव्यों को भी संविधान में स्थान दिया है। प्राचीन राजशाही में नियम व संविधान नहीं थे परन्तु परम्परा से राज्य का संचालन होता था। स्वतन्त्रता के बाद बचे-खुचे राजाओं का भी विलय भारत में कराया गया, फिर भी प्राचीन भारत की नैतिकता और जनकल्याणकारी सरकार की परम्परा अभी भी विद्यमान है।

(2) **अर्थव्यवस्था में नैतिकता और प्राचीन परम्पराओं के प्रतिबिम्ब-** प्राचीन भारत में अर्थव्यवस्था कृषि और पशुपालन पर बहुत कुछ आधारित थी। व्यापार व वाणिज्य उन्नति पर थे। व्यवसाय प्रायः वंशानुगत होते थे। राजशाही में राजा लगान वसूलते थे तथा उस राशि का कार्य जनता के हित के लिए करते थे। अर्थव्यवस्था में नैतिकता का ध्यान रखा जाता था और मिलावट, नकली सामान आदि का प्रचलन नहीं था। आधुनिक युग में अर्थव्यवस्था में ईमानदारी

तथा नैतिकता कुछ ही परिमाण में देखने को मिलती है हालांकि राज्य द्वारा मिलावट और नकली सामान की बिक्री पर कई कानून बनाए हुए हैं। प्राचीन नैतिकता और आर्थिक परम्पराएं आजकल कम ही दिखाई देती हैं। आर्थिक भ्रष्टाचार करने वालों पर कड़ी कार्यवाही होती है तथा उन्हें जेल खाने में भी कैद किया जाता है तथापि यह प्रतिशत अपराधों की संख्या के अनुपात में बहुत कम है।

(3) **शिक्षा में नैतिकता और परम्पराओं का प्रतिबिम्ब-** प्राचीन काल में शिक्षा प्रायः गुरुकुल या आश्रम में गुरु के निवासस्थान पर होती थी तथा छात्रगण गुरु के पास रहकर ही शिक्षा ग्रहण करते थे। गुरुकुल में प्रवेश के समय 'उपनयन' संस्कार होता था। उपनयन के पश्चात् बालक की रुचियों तथा क्षमताओं का अध्ययन किया जाता था तथा उसके आचार-विचारों का निरीक्षण किया जाता था। गुरु यदि बालक के आचार-विचार तथा रुचियों को गुरुकुल के प्रतिकूल पाता था जो उसे गुरुकुल से निष्कासित करने की परम्परा भी थी और यदि आचार-विचार गुरुकुल की परम्पराओं के अनुकूल होते थे तो बालक ब्रह्मचारी या कुलवासी कहलाने लगता था। ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने के उपरान्त बालक का जीवन अत्यन्त साधारण होता था। वह मृगछाला, दण्ड, कमण्डल तथा मेखला आदि का प्रयोग करता था तथा भिक्षा माँगना उसका अनिवार्य कार्य था। आज के समय में इन परम्पराओं का प्रतिबिम्ब किंचित परिवर्तित रूप में दिखाई देता है। प्रवेश, अनुशासन तथा छात्रावासी जीवन में नियमित दिनचर्या का पालन होता है।

पूर्व में पाठ्यविषयों में धार्मिक ग्रन्थों, दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि की प्रधानता था तथा युद्ध कला या किसी एक कला में दक्षता हासिल करनी पड़ती थी। यही व्यवस्था आधुनिक काल में समयानुसार हुए बदलावों के साथ अपनायी गई है।

पूर्व में आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी द्वारा गुरु के मार्गदर्शन में अध्ययन तथा दिनचर्या का पालन होता था। इस प्रथा का प्रभाव आज की शिक्षा में प्रतिबिम्बित है। प्राचीन समय में शिष्य गुरु का बहुत सम्मान व आदर करते थे। इस परम्परा की छाप आज की शिक्षा प्रणाली में भी जीवन्त है।

अध्ययन के विषय पूर्व में जहाँ धार्मिक व नैतिकता पूर्ण थे वहीं आजकल समय चक्र अनुसार उद्योग, टेक्नोलॉजी, चिकित्सा, इन्जीनियरिंग आदि का विकास होने के कारण अध्ययन विषयों में बदलाव है। फिर भी गुरु-शिष्य परम्परा प्राचीन समय के अनुसार आज भी प्रचलित है।

प्रश्न 9 निम्नलिखित विषयों पर विस्तृत टीप दीजिए- (अ) **गुरु-शिष्य परम्परा,** (ब) **संस्कृतः हमारी विरासत और पहचान।**

उत्तर-

(अ) गुरु-शिष्य परम्परा

भारत की गुरु-शिष्य परम्परा आध्यात्मिक ज्ञान को नई पीढ़ी तक पहुँचाने का सोपान है। भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत गुरु (शिक्षक) अपने शिष्य को शिक्षा देता है या कोई विद्या सिखाता है। बाद में वही शिष्य गुरु के रूप में दूसरों को शिक्षा देता है। यही क्रम चलता जाता है। यह परम्परा सनातन धर्म की सभी धाराओं में मिलती है। गुरु-शिष्य की यह परम्परा ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में हो सकती है जैसे अध्यात्म, संगीत, कला, वेदाध्ययन, वास्तु,

इत्यादि। भारतीय संस्कृति में गुरु का बहुत महत्त्व है। कहीं गुरु को ब्रह्मा-विष्णु-महेश कहा गया है तो कहीं गोविन्द। 'सिख' शब्द संस्कृत के शिष्य से व्युत्पन्न है।

गुरु में 'गु' का अर्थ है अन्धकार (अज्ञान) और 'रु' का अर्थ है प्रकाश (ज्ञान) अज्ञान को नष्ट करने वाला अर्थात् जो ब्रह्म रूप प्रकाश है वह गुरु है। आश्रमों में गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह होता रहा है। भारतीय संस्कृति में गुरु को अत्यधिक सम्मानित स्थान प्राप्त है। भारतीय इतिहास में गुरु की भूमिका समाज को सुधार की ओर ले जाने वाले मार्गदर्शक के रूप में होने के साथ क्रान्ति को दिशा दिखाने वाली रही है। भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊपर माना गया है।

"गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रम्ह तस्मै श्री गुरुवे नमः"
"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।"

प्राचीन काल में गुरु और शिष्य के सम्बन्धों का आधार था गुरु का ज्ञान, मौलिकता और नैतिक बल, उनका शिष्यों के प्रति स्नेहभाव तथा ज्ञान बाँटने का निस्वार्थ भाव।

शिक्षा में होती थी गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा, गुरु की क्षमता में पूर्ण विश्वास तथा गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण एवं आज्ञाकारिता, अनुशासन शिष्य का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण माना गया है।

आचार्य चाणक्य ने एक आदर्श विद्यार्थी के गुण इस प्रकार बताए हैं-

"काक चेष्टा, बको ध्यानं, श्वान निद्रा तथैव च।
अल्पहारी, गृहत्यागी, विद्यार्थी पंचलक्षणम॥"

गुरु और शिष्य के बीच केवल शाब्दिक ज्ञान का ही आदान-प्रदान नहीं होता था बल्कि गुरु अपने शिष्य के संरक्षक के रूप में भी कार्य करता था। उसका उद्देश्य रहता था कि गुरु उसका कभी अहित सोच भी नहीं सकते। यही विश्वास गुरु के प्रति उसकी अगाध श्रद्धा और समर्पण का कारण रहा है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण जी ने गुरु-शिष्य परम्परा को 'परम्पराप्राप्तम योग' बताया है। गुरु-शिष्य परम्परा का आधार सांसारिक ज्ञान से शुरू होता है परन्तु इसका चरमोत्कर्ष आध्यात्मिक शाश्वत आनन्द की प्राप्ति है जिसे ईश्वर प्राप्ति व मोक्ष प्राप्ति भी कहा जाता है। बड़े भाग्य से प्राप्त मानव जीवन का यही अन्तिम व सर्वोच्च लक्ष्य होना चाहिए। "गुरु एक मशाल है, दिव्य प्रकाश।"

वैदिक काल से वर्तमान तक भारत में यही गुरु-शिष्य परम्परा अविरत प्रवाहित हो रही है। यह धारा हिन्दू, सिख, जैन और बौद्ध धर्मों में समान रूप से पाई जाती है। न केवल छात्र या विद्यार्थी वरन् गृहस्थ व आम भारतीय भी अपने इहलोक तथा परलोक के लिए गुरु बनाता है।

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से चली आ रही 'गुरु-शिष्य परम्परा' का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। परम्परा का शाब्दिक अर्थ है-"बिना व्यवधान के श्रृंखला के रूप में जारी रहना।" परम्परा प्रणाली में किसी विषय या उपविषय का ज्ञान बिना किसी परिवर्तन के अथवा अल्प परिवर्तन के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संचारित होता रहता है। उदाहरणार्थ, भागवत

पुराण में वेदों का वर्गीकरण और परम्परा द्वारा इसके हस्तान्तरण का वर्णन है। यहाँ ज्ञान के विषय आध्यात्मिक, कलात्मक या शैक्षणिक हो सकते हैं।

परम्परा शब्द अंग्रेजी के 'ट्रेडीशन' शब्द से बना है जिसकी उत्पत्ति ट्रेडरा शब्द से हुई है जिसका अर्थ है सौंपना या हस्तान्तरित करना। संस्कृत शब्द परम्परा का अर्थ है ऐतीह अर्थात् विरासत में प्राप्त करना।

यास्क ने स्वयं परम्परा की प्रशंसा की है-**"अयं मंत्रार्थश्चिताभ्यूहोऽपि श्रुतितोऽपि तर्कतः॥"** अर्थात् मंत्रार्थ का विचार परम्परागत अर्थ के श्रवण अथवा तर्क से निरूपित होता है क्योंकि मन्त्रों की व्याख्या पृथक हो ही नहीं सकती।

(ब) संस्कृत : हमारी विरासत और पहचान

संस्कृत (संस्कृतम) भारतीय उपमहाद्वीप की एक भाषा है। संस्कृत एक हिन्द-आर्य भाषा है जो हिन्द-यूरोपीय भाषा परिवार की एक शाखा है। अनेक आधुनिक भारतीय भाषाएं जैसे हिन्दी, बांग्ला, मराठी, सिन्धी, पंजाबी, नेपाली आदि इसी से उत्पन्न हुई हैं। इन सभी भाषाओं में यूरोपीय बनजारों की रोमानी भाषा भी शामिल है। संस्कृत में वैदिक धर्म से सम्बन्धित लगभग सभी धर्मग्रन्थ लिखे गए हैं। बौद्ध धर्म (विशेषकर महायान) तथा जैन मत के भी कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए हैं। आज भी हिन्दू धर्म के अधिकतर यज्ञ और पूजा संस्कृत में ही होती है।

संस्कृत का अर्थ है, 'संस्कार की गई' अर्थात् 'बदलाव की गई'। संस्कृत भाषा देवनागरी लिपि में लिखी गई है। संस्कृत आमतौर पर कई पुरानी इण्डो-आर्यन किस्मों को जोड़ती है। इनमें से सबसे पुरातन ऋग्वेद में पाई जाने वाली वैदिक संस्कृत है।

भारत में संविधान की आठवीं अनुसूची में संस्कृत भाषा को भी शामिल किया गया है। यह उत्तराखण्ड और हिमाचल प्रदेश की आधिकारिक राजभाषा है। आकाशवाणी और दूरदर्शन पर संस्कृत में समाचार प्रसारित किये जाते हैं। डी.डी. न्यूज द्वारा वार्तावली नामक अर्धहोरावधि का संस्कृत कार्यक्रम भी प्रसारित किया जा रहा है जो हिन्दी चलचित्र गीतों के संस्कृतानुवाद, सरल संस्कृत शिक्षण, संस्कृत वार्ता और महापुरुषों की संस्कृत जीवृत्तवृत्तियों, सुभाषित रत्नों आदि के कारण अनुदिन लोकप्रिय हो रहा है।

संस्कृत भाषा का इतिहास बहुत पुराना है। वर्तमान समय में प्राप्त सबसे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ 'ऋग्वेद' है जो कम से कम ढाई हजार ई.पूर्व की रचना है।

संस्कृत भाषा का व्याकरण अत्यन्त परिमार्जित एवं वैज्ञानिक है। बहुत प्राचीन काल से ही अनेक व्याकरणाचार्यों ने संस्कृत व्याकरण पर बहुत कुछ लिखा है। किन्तु पाणिनी का संस्कृत व्याकरण पर किया गया कार्य सबसे प्रसिद्ध है। उनका अष्टाध्यायी किसी भी भाषा के व्याकरण पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ है।

संस्कृत में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया के कई तरह से शब्दरूप बनाए जाते हैं जो व्याकरणिक अर्थ प्रदान करते हैं। अधिकांश शब्द रूप मूल शब्द के अन्त में प्रत्यय लगाकर बनाये जाते हैं।

संस्कृत भारत की कई लिपियों में लिखी जाती रही है लेकिन आधुनिक युग में देवनागरी लिपि के साथ इसका विशेष सम्बन्ध है।

संस्कृत भाषा की विशेषताएं

1. *संस्कृत विश्व की सबसे पुरानी पुस्तक (वेद) की भाषा है। इसलिए इसे विश्व की प्रथम भाषा मानने में कहीं किसी संशय की सम्भावना नहीं है।*
2. *इसकी सुस्पष्ट व्याकरण और वर्णमाला की वैज्ञानिकता के कारण सर्वश्रेष्ठता भी स्वयंसिद्ध है।*
3. *सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साहित्य की धनी होने से इसकी महत्ता भी निर्विवाद है।*
4. *इसे देवभाषा माना जाता है।*
5. *संस्कृत को संस्कारित करने वाले महर्षि पाणिनी, महर्षि कात्यायन और योगशास्त्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि हैं। इन तीनों महर्षियों ने बड़ी ही कुशलता से योग की क्रियाओं को भाषा में समाविष्ट किया।*
6. *संस्कृत भाषा की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है सन्धि। संस्कृत में जब दो या अधिक अक्षर निकट आते हैं तो वहाँ सन्धि होने से स्वरूप और उच्चारण बदल जाता है।*
7. *संस्कृत को कम्प्यूटर और कृत्रिम बुद्धि के लिए सबसे उपयुक्त भाषा माना गया है।*
8. *शोध में पाया गया है कि संस्कृत पढ़ने से स्मरण शक्ति बढ़ती है।*
9. *संस्कृत विश्व की सर्वाधिक पूर्ण (परफेक्ट) एवं तर्कसंगत भाषा है।*
10. *संस्कृत में साहित्य की रचना कम से कम 7 हजार वर्षों से निरन्तर होती आ रही है।*
11. *हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि धर्मों के प्राचीन ग्रन्थ संस्कृत में हैं।*
12. *हिन्दुओं की सभी पूजापाठ और धार्मिक संस्कार की भाषा संस्कृत है।*

उपरोक्त कारणों से संस्कृत भाषा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गई है। संस्कृत भाषा भारत की विरासत और पहचान का प्रतीक है।

प्रश्न 10 पर्यावरण जागरुकता और जल संरक्षण प्रथाओं का अर्थ बताते हुए इनकी आधुनिक युग में प्रासंगिकता बताइए।

उत्तर-

पर्यावरण जागरुकता का अर्थ

पर्यावरण जागरुकता का अर्थ है पर्यावरण सम्बन्धी तथ्यों, प्रत्ययों, प्रक्रियाओं का ज्ञान तथा बोध कराया जाना। इसमें पर्यावरण के कारकों तथा घटकों की पारस्परिक निर्भरता, समस्याओं के समाधान की जानकारी प्रदान की जाती है।

पर्यावरण जागरुकता की विशेषताएं

(i) *पर्यावरण के प्रति सजगता रखना तथा पर्यावरण जागरुकता की विभिन्न क्रियाओं पर बल देना।*

(ii) *ग्राम, नगर, जिला, प्रदेश, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सभी स्तरों पर लोगों में पर्यावरण जागरुकता उत्पन्न करना।*

(iii) *पर्यावरण जागरुकता का वैश्विक स्तर पर सभी देशों में आयोजनों, गोष्ठियों द्वारा प्रचार-प्रसार करना।*

(iv) *पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं के निराकरण के उपायों को प्रचारित करना।*

(v) *पर्यावरण शिक्षा द्वारा जनचेतना विकसित करना।*

(vi) *पर्यावरण सुधार हेतु सक्रिय प्रयासों को करने की शिक्षा का प्रचार-प्रसार करना।*

पर्यावरण जागरुकता के उपाय- वर्तमान दौर में पर्यावरण असन्तुलन की सबसे बड़ी समस्या ग्लोबल वार्मिंग है जिसके कारण पृथ्वी का तापमान निरन्तर बढ़ रहा है और मानव जीवन के कदम विनाश की ओर बढ़ रहे हैं। ऐसे समय में यदि पर्यावरण को बचाने के लिए कोई बड़े कदम नहीं उठाए गए तो हमारा अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है। अतः शीघ्रातिशीघ्र पर्यावरण का संरक्षण एवं सुधार आवश्यक है। भूमि, वायु, पानी जैसे प्राकृतिक संसाधनों का बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग आवश्यक है ताकि वर्तमान और भावी पीढ़ी के लिए स्वस्थ पर्यावरण को सुनिश्चित किया जा सके।

पर्यावरण के लिए प्लास्टिक का उपयोग न कर, कम से कम पेट्रोल और डीजल का उपयोग करना, अधिकतम वृक्षारोपण करना, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना, वर्षा जल को संग्रहित करने के प्रयास करना, नलकूपों को रिचार्ज करना इत्यादि उपायों का अवलम्बन लेना तथा स्कूल, कॉलेजों तथा पब्लिक में उनकी जागरुकता फैलाना आवश्यक है।

पर्यावरण जागरुकता की आधुनिक युग में प्रासंगिकता- आधुनिक युग में पर्यावरण प्रदूषण के अनेक घातक प्रभाव दृष्टिगत हो रहे हैं। पृथ्वी का भविष्य भी इन पर्यावरण प्रदूषणों के कारण अंधकारमय हो रहा है। अतः पर्यावरण के प्रति जागरुकता आधुनिक युग में अत्यधिक प्रासंगिक हो गई है। वायु प्रदूषण के साथ जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, भूमि प्रदूषण तथा आण्विक प्रदूषण आदि ने विश्व को खतरे में डाल रखा है। पर्यावरण प्रदूषण की वजह से कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर में बदलाव से पर्यावरण में भारी बदलाव देखने को मिल रहे हैं। कार्बन डाइऑक्साइड गर्मी को रोकती है जिससे वायुमण्डलीय तापमान में वृद्धि होने से समुद्र में पानी का स्तर बढ़ रहा है। ग्रीन हाउस गैसों में वृद्धि से पृथ्वी के वायुमण्डलीय तापमान में भी वृद्धि हो रही है।

पर्यावरण जागरुकता इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह हमें मानवीय गतिविधियों के कारण पृथ्वी पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के बारे में जागरूक व सतर्क होने में मदद कर सकती है। यह सौर, पवन और पानी जैसे संसाधनों को बढ़ावा देकर टिकाऊ दुनिया बनाने में भी हमारी मदद कर सकती है।

पर्यावरण के तत्त्वों की विद्यमानता से पृथ्वी पर जीवन सम्भव हुआ है। मानव के चारों ओर का वह क्षेत्र, जो उसे घेरे रहता है, अपने जीवन तथा क्रियाओं को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है पर्यावरण ही है। आधुनिक युग में पृथ्वी पर सन्तुलित जीवन के लिए पर्यावरण के प्रति लोगों को जागरूक करना आवश्यक है। शैक्षिक पाठ्यक्रम में पर्यावरण शिक्षा को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, साथ ही फिल्में, नाटक, पोस्टर, विज्ञान आदि के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण के प्रति लोगों को प्रेरित करना चाहिए और पर्यावरण संरक्षण की तकनीकों का प्रशिक्षण देने का प्रयास करना चाहिए। यह प्रयास किसी एक देश में न होकर सभी देशों में एक साथ होना चाहिए इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार व संगोष्ठियों का आयोजन वांछनीय है। लोगों को वृक्षारोपण करने, पेड़ न काटने, प्रदूषण से बचने आदि के प्रयास भी अपेक्षित हैं।

जल संरक्षण प्रथाओं का अर्थ

जल संरक्षण का अर्थ है जल के प्रयोग को घटाना और सफाई, कृषि व निर्माण आदि के लिए अवशिष्ट जल का पुनःचक्रण। वर्षा के जल को व्यर्थ बहने से रोककर उसे इकट्ठा करने की तकनीकों का प्रयोग भी जल संरक्षण है। पानी की बचत के लिए धीमी गति के शावर का उपयोग, धीमा फ्लश शौचालय एवं खाद शौचालय का उपयोग करना चूँकि पारम्परिक पश्चिमी शौचालयों में जल की बड़ी मात्रा खर्च होती है। शौचालयों में पानी डालने के लिए खारे पानी (समुद्री पानी) या बरसाती पानी का इस्तेमाल करना चाहिए। इसी प्रकार घरों, होटलों आदि में इस्तेमाल किये पानी एवं उनकी रीसाइकिलिंग का उपयोग शौचालय व बगीचे आदि में करना चाहिए। जल को देशीय वृक्ष रोपण कर तथा आदतों में बदलाव लाकर भी संचित किया जा सकता है। मसलन झरनों को छोटा करना तथा ब्रश करते वक्त पानी का नल खुला न छोड़ने का प्रयत्न करना।

व्यावसायिक क्षेत्र में जल बचाने की अन्य तकनीकों में निम्नलिखित तरीके सम्मिलित हैं-

(i) *जल रहित शौचालय*
(ii) *कारों को बिना जल के साफ करना*
(iii) *इंफ्रारेड अथवा पैर से चलने वाले नल जो रसोई या स्नानघर में धोने के काम के लिए जल के छोटे बर्स्ट का उपयोग कर जल बचा सकते हैं।*
(iv) *दबावयुक्त वाटरब्रूम्स जो पानी की जगह बंगलों को साफ करने के काम आ सकें।*
(v) *एक्सरे फिल्म प्रोसेसर रीसाइक्लिंग सिस्टम*
(vi) *कूलिंग टावर कंडक्टिविटी कंट्रोलर्स*
(vii) *अस्पताल आदि में उपयोग के लिए जल संचयक वाष्प स्टोरिलाइजर्स।*

कृषि में फसलों की सिंचाई के लिए कम पानी के उपयोग द्वारा पौधों की सिंचाई करना। इसके लिए वाष्पीकरण पैन प्रयोग में लाया जा सकता है। प्राचीन एवं सबसे आम तरीका सिंचाई में पानी का वितरण असमान होता है जिसमें भूमि का कोई अंश अतिरिक्त मात्रा में पानी ले सकता है ताकि वह दूसरे हिस्सों में सिंचाई कर सके। ड्रिप सिंचाई सबसे महँगा एवं सबसे कम पानी प्रयोग करने वाला प्रकार है। जो पानी बर्बाद किए बिना पौधों की जड़ तक पानी पहुँचाता है।

जल संरक्षण की आधुनिक युग में प्रासंगिकता- वर्तमान युग में जलाभाव का सामना गाँवों, नगरों में करना पड़ता है। भूमिगत जल का स्तर नीचा होते जाने, झीलों, तालाबों के सूखने, अधिक गर्मी पड़ने, कुएं पानीविहीन हो जाने, उद्योगों में पानी का बहुतायत से उपयोग होने, भूमिगत जल का अधिकतम अवशोषण होने आदि अन्यान्य कारणों से लोगों को जलाभाव का सामना करना पड़ता है।

इसका एकमात्र उपाय जल संरक्षण रह गया है। आज विश्व के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती जलस्रोतों को बचाने की है। भारत में 1960 में जितने कुएं और तालाब थे, आज उसमें से एक तिहाई से भी कम बचे हैं और जो बचे भी हैं उनका जल प्रदूषित हो चुका है। आज भारत में गंगा सफाई का प्रश्न सबसे बड़ी समस्या और चर्चा का विषय बना हुआ है जिस पर

बहस होती है। औद्योगिकीकरण, जनसंख्या वृद्धि, निर्माण कार्य तथा व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण जल को प्रदूषित कर रहे हैं और उसके स्रोतों का विनाश कर रहे हैं। इस प्रकार आधुनिक युग में जल संरक्षण अत्यावश्यक हो गया है।

प्रश्न 11 प्रमुख प्राचीन चिकित्सा पद्धतियाँ, परम्पराएं, संरक्षण और संवर्द्धन विषयों पर विवरण दीजिए।

उत्तर- प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों में प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति (नेचुरोपैथी), जल चिकित्सा, होम्योपैथी, एक्यूप्रेशर चिकित्सा, एक्यूपंचर, आध्यात्मिक चिकित्सा आदि की गणना होती है। प्रमुख प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों का विवरण निम्नानुसार है-

(1) आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति

यह भारतीय मूल की पारम्परिक चिकित्सा पद्धति है। आयुर्वेद का अर्थ है आयु का वेद या दीर्घायु का विज्ञान। आयुर्वेद विश्व की प्राचीनतम चिकित्सा प्रणालियों में से एक है। भारत के अलावा नेपाल, श्रीलंका में आयुर्वेद का अत्यधिक प्रचलन है, जहाँ लगभग 80% जनसंख्या इसका उपयोग करती है। आयुर्वेद, आयुर्विज्ञान से इस प्रकार अलग है कि आयुर्विज्ञान वैज्ञानिक विधि का सख्तता से पालन करता है। आयुर्विज्ञान विज्ञान की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध मानव शरीर को नीरोग रखने, रोग हो जाने पर रोग से मुक्त करने अथवा उसका शमन करते तथा आयु बढ़ाने से है।

आयुर्वेद के तीन शारीरिक दोषों (त्रिदोष-वात, पित्त, कफ) के असन्तुलन को रोग का कारण मानते हैं और समदोष की स्थिति को आरोग्य। आयुर्वेद को त्रिस्कंध (तीन कंधों वाला) अथवा त्रिसूत्र भी कहा जाता है, ये हैं-हेतु, लिंग, औषध। इसी प्रकार सम्पूर्ण आयुर्वेदीय चिकित्सा के आठ अंग माने गए हैं। (अष्टांग वैधक) ये आठ अंग हैं-काय चिकित्सा, शल्य तन्त्र, शालक्य तन्त्र, कौमार भृत्य, अगद तन्त्र, भूत विद्या, रसायन तन्त्र और वागीकरण।

कुछ लोग आयुर्वेद के सिद्धान्त और व्यवहार को बहुत अधिक महत्त्व देते हैं और इसे स्वयं ब्रह्मा ने प्रजाहित के लिए दिया गया विज्ञान है, ऐसा मानते हैं, अन्य इसे एक प्रोटोसाइंस या ट्रांस साइंस सिस्टम मानते हैं।

आयुर्वेदीय चिकित्सा की विशेषताएं

1. *आयुर्वेदीय चिकित्सा विधि सर्वांगीण है। आयुर्वेदिक चिकित्सा के उपरान्त व्यक्ति की शारीरिक तथा मानसिक दोनों दशाओं में सुधार होता है।*
2. *आयुर्वेदिक औषधियों के अधिकांश घटक जड़ी-बूटियों, पौधों, फूलों एवं फलों आदि से प्राप्त की जाती है। अतः यह चिकित्सा प्रकृति के निकट है।*
3. *व्यावहारिक रूप से आयुर्वेदिक औषधियों के कोई दुष्प्रभाव (साइड इफेक्ट) देखने को नहीं मिलते।*
4. *अनेक जीर्ण रोगों के लिए आयुर्वेद विशेष रूप से प्रभावी है।*
5. *आयुर्वेद न केवल रोगों की चिकित्सा करता है बल्कि रोगों को रोकता भी है।*
6. *आयुर्वेद भोजन तथा जीवनशैली में सरल परिवर्तनों के द्वारा रोगों को दूर रखने के उपाय सुझाता है।*
7. *आयुर्वेदिक औषधियाँ स्वस्थ लोगों के लिए भी उपयोगी हैं।*

8. *आयुर्वेदिक चिकित्सा अपेक्षाकृत सस्ती है क्योंकि आयुर्वेद चिकित्सा में सरलता से उपलब्ध जड़ी-बूटियाँ एवं मसाले काम में लाए जाते हैं।*

इतिहास- पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसार संसार की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद है। विभिन्न विद्वानों ने इसका रचनाकाल ईसा के 3000 से 50,000 वर्ष पूर्व तक का माना है। ऋग्वेद संहिता में भी आयुर्वेद के अतिमहत्त्व के सिद्धान्त यत्र-तत्र विकीर्ण हैं। चरक, सुश्रुत, काश्यप आदि मान्य ग्रन्थ आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद मानते हैं। इससे आयुर्वेद की प्राचीनता सिद्ध होती है।

उपचार- रोगी व्यक्तियों के विकारों को दूर कर उन्हें स्वस्थ बनाने हेतु (कारण), लिंग (रोग परिचायक विषय) तथा औषध का ज्ञान परमावश्यक है। इन्हें त्रिस्कंधन कहते हैं। ये आयुर्वेद शास्त्र की तीन प्रमुख शाखाएं हैं-

1. *हेतु ज्ञान*
2. *लिंग ज्ञान*
3. *औषधि ज्ञान।*

हेतु ज्ञान का अर्थ है रोग किस कारण से उत्पन्न हुआ यह जानकारी रखना। लिंग ज्ञान का अर्थ है रोग का विशेष लक्षण का ज्ञान प्राप्त करना। औषधि ज्ञान का तात्पर्य है अमुक रोग में अमुक औषधि का प्रयोग करना। ठीक तरह से रोग का ज्ञान होने पर ही उस रोग का उपचार किया जाता है। पहले रोग की परीक्षा करने, उसे पहचानने के पश्चात् औषध दी जाती है।

पंचकर्म- पंचकर्म आयुर्वेद की उत्कृष्ट चिकित्सा विधि है। पंचकर्म को आयुर्वेद की विशिष्ट चिकित्सा पद्धति कहते हैं। इस विधि से शरीर में होने वाले रोगों और रोग के कारणों को दूर करने के लिए तीनों दोषों (त्रिदोष) वात, पित्त, कफ के असम रूप को समरूप में पुनः स्थापित करने के लिए विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाएं उपयोग में लाई जाती हैं लेकिन इन कई प्रणालियों में ये पाँच कर्म मुख्य हैं-

1. *वमन,*
2. *विरेचन,*
3. *बस्ति (अनुवासन),*
4. *बस्ती (आस्थापन)*
5. *नस्य*

इस पद्धति में शरीर के विषों को बाहर निकालकर शुद्ध किया जाता है। इससे रोगों को जड़ से समाप्त किया जाता है।

(2) प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति

अनेक चिकित्सा पद्धतियाँ हैं जैसे जल चिकित्सा, होमियोपैथी, सूर्य चिकित्सा, एक्यूपंक्चर, एक्यूप्रेशर, मृदा चिकित्सा आदि। प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचलन में विश्व की कई चिकित्सा पद्धतियों का योग है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत रोगों का उपचार व स्वास्थ्य लाभ का आधार है-"रोगाणुओं से लड़ने की शरीर की स्वाभाविक शक्ति",

इतिहास- 'नेचुरोपैथी' शब्द का प्रयोग 1895 में जॉन स्कील ने किया था। उसी शब्द को बेनेडिक्ट लस्त ने आगे बढ़ा दिया था जिस कारण अमेरिका के प्राकृतिक चिकित्सक बेनेडिक्ट को US में नेचुरोपैथी का जनक कहते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा के मूलभूत सिद्धान्त

1. *सभी रोग, उनके कारण एवं उनकी चिकित्सा एक है। चोट-लपेट और वातावरणजन्य परिस्थितियों को छोड़कर सभी रोगों का मूल कारण एक ही है और सभी का इलाज भी एक है। शरीर में विजातीय पदार्थों के संग्रह से रोग उत्पन्न होते हैं और शरीर से उनका निष्कासन ही चिकित्सा है।*
2. *रोग का मुख्य कारण जीवाणु नहीं है। जीवाणु शरीर में जीवनी शक्ति के ह्रास आदि के कारण विजातीय पदार्थों के जमाव के पश्चात् जब आक्रमण कर पाते हैं तब शरीर में उनके रहने और पनपने लायक अनुकूल वातावरण तैयार हो जाता है। अतः मूल कारण विजातीय पदार्थ है, जीवाणु नहीं। जीवाणु द्वितीय कारण है।*
3. *तीव्र रोग चूँकि शरीर के स्वउपचारात्मक प्रयास हैं अतः ये हमारे शत्रु नहीं मित्र हैं। जीर्ण रोग तीव्र रोगों के गलत उपचार और दमन के फलस्वरूप पैदा होते हैं।*
4. *प्रकृति स्वयं सबसे बड़ी चिकित्सक है। शरीर में स्वयं को रोगों से बचाने व अस्वस्थ हो जाने पर पुनः स्वास्थ्य प्राप्त करने की क्षमता विद्यमान है।*
5. *प्राकृतिक चिकित्सा में चिकित्सा रोग की नहीं बल्कि रोगी की होती है।*
6. *प्राकृतिक चिकित्सा में रोग निदान सरलता से सम्भव है। किसी आडम्बर की आवश्यकता नहीं पड़ती। उपचार के पूर्व रोगों के निदान के लिए लम्बा इन्तजार भी नहीं करना पड़ता।*
7. *जीर्ण रोग से ग्रस्त रोगियों का भी प्राकृतिक चिकित्सा में सफलतापूर्वक तथा अपेक्षाकृत कम अवधि में इलाज होता है।*
8. *प्राकृतिक चिकित्सा से दबे रोग भी उभर कर ठीक हो जाते हैं।*
9. *प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा शारीरिक, मानसिक, सामाजिक (नैतिक) एवं आध्यात्मिक चारों पक्षों की चिकित्सा एक साथ की जाती है।*
10. *विशिष्ट अवस्थाओं का इलाज करने के स्थान पर प्राकृतिक चिकित्सा पूरे शरीर की चिकित्सा एक साथ करती है।*
11. *प्राकृतिक चिकित्सा में औषधियों का प्रयोग नहीं होता। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार आहार ही औषधि है।*
12. *गाँधीजी के अनुसार 'राम नाम' सबसे बड़ी चिकित्सा है अर्थात् अपनी आस्था के अनुसार प्रार्थना करना चिकित्सा का एक आवश्यक अंग है।*

व्यवहार में प्राकृतिक चिकित्सा- प्राकृतिक चिकित्सा के समर्थक खान-पान एवं रहन-सहन की आदतों, शुद्धि कर्म, जल चिकित्सा, ठण्डी पट्टी, मिट्टी की पट्टी, विविध प्रकार के स्नान, मालिश तथा अनेक नई प्रकार की चिकित्सा विधाओं पर विशेष बल देते हैं। मिट्टी की पट्टियों से चर्म रोग, घावों आदि का इलाज, मिट्टी से स्नान, रक्तचाप का इलाज किया जाता है।

कब्ज आदि के इलाज हेतु एनिमा (वस्ति) का उपयोग, जल चिकित्सा रबर की थैली या बोतल में गर्म पानी से पेटदर्द का इलाज, शारीरिक पीड़ा में ठण्डे पानी से इलाज, नाक से खून बहने पर सिर धोना, स्नान आदि उपाय प्राकृतिक चिकित्सा में अपनाए जाते हैं। शर्करा रोग में ठण्डे पानी व गर्म पानी के टब में बदल-बदल कर बैठना आदि द्वारा उपचार किया जाता है। फुहारा स्नान (शावर) से स्नान, गर्म भाप का इलाज आदि उपचार भी प्राकृतिक चिकित्सक द्वारा किये जाते हैं। कटि स्नान, मेरूदण्ड स्नान, खून का बहाव रोकने हेतु ठण्डे पानी का इलाज, ज्वर में गीली चादर लपेटकर ज्वर कम किया जाता है। गीले पानी की पट्टी, ठण्डे पानी की पट्टियों, भाप आदि द्वारा उपाय भी प्राकृतिक चिकित्सा में अपनाए जाते हैं।

सूर्य रश्मियों से चर्म रोगों आदि की चिकित्सा, उपवास रखकर इलाज आदि उपाय प्राकृतिक चिकित्सक द्वारा अपनाए जाते हैं।

परम्पराएं, संरक्षण और संवर्द्धन- आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति तथा प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति द्वारा इलाज से हजारों रोगी ठीक हो जाते हैं। अतः इन प्राचीन परम्पराओं के संरक्षण और संवर्द्धन के उपाय हेतु सरकारी-गैर सरकारी चिकित्सालय खोलकर इन चिकित्सा पद्धतियों का अधिक प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए। इसी प्रकार आयुर्वेद के चिकित्सालयों में प्राकृतिक चिकित्सा के कक्ष खोले जाकर भी लोगों के स्वास्थ्य में सुधार लाना चाहिए। प्राचीन चिकित्सा पद्धति सस्ती चिकित्सा पद्धतियाँ हैं तथा कम से कम खर्च में अधिकाधिक इलाज का प्रचार-प्रसार किया जाना आवश्यक है। बिना चिकित्सालय में भरती हुए मार्गदर्शन देकर मरीज के घर में इलाज को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

इकाई-दो

प्रश्न 1 भारत के भित्ति-चित्र, भारत की लघु चित्रकला के इतिहास और परम्परा का वर्णन कीजिए।

उत्तर-

(अ) भारत के भित्ति चित्र

भारत में ऐतिहासिक काल के उपलब्ध सबसे प्राचीन चित्र भित्ति चित्र के रूप में प्राप्त होते हैं। शिलाखण्डों को काटकर चैत्य, विहार तथा मन्दिर आदि बनाने की परम्परा अति प्राचीन है और उन मन्दिरों (गुफा मन्दिरों) पर पलस्तर लगाकर तथा चूना आदि से चिकनाकर उन पर चित्र बनाए जाते थे। भारतवर्ष में शास्त्रीय युग की चित्रकला की विरासत भित्ति चित्रों के रूप में सुरक्षित है। इस प्रकार के भित्ति चित्र जोगामारा, अजन्ता, बाघ, बदामी, सित्तनावासल, एलोरा, एलीफेंटा, उदयगिरि, पीपलखोरा आदि गुफाओं में उपलब्ध है।

गुफाओं और महलों की दीवारों पर बने चित्र भित्तिचित्र कहलाते हैं। पाँचवीं-छठी शताब्दी के एक संस्कृत पाठ 'विष्णुधर्मोत्तरम' में इस चित्रकारी के विषय में चर्चा है। भित्ति चित्रों का भारत में इतिहास दूसरी शताब्दी ई.पू. से 10वीं शताब्दी ईस्वी पूर्व और प्रारम्भिक मध्ययुगीन काल में शुरू होता है। प्राचीन भारत में भित्ति चित्रों पर रंग सामग्री, प्राकृतिक वसा जैसे टेरोकोटा, चाक, लाल गेरु और पीली गेरु से ली गई थी। भारतीय भित्ति चित्रों की महत्त्वपूर्ण विशेषता उनकी वास्तुकला और व्यापक सार्वजनिक महत्त्व के लिए जैविक सम्बन्ध है। भारतीय भित्ति चित्रण व्यावहारिकता में समृद्ध है। भित्ति चित्रों का सर्वप्रथम साक्ष्य अजन्ता और एलोरा की

गुफाओं पर चित्रित सुन्दर भित्तिचित्र हैं। दक्षिण भारत में भी भित्ति चित्रों की समृद्ध परम्परा रही है। तमिलनाडु के तंजौर में राजराजेश्वर मन्दिर की दीवारों पर नृत्य करती आकृतियाँ तथा तंजावर के ही वृहदेश्वर मन्दिर की दीवारों पर नृत्य करती युवती का है। चोल और विजयनगर के शासनकाल में यह कला चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। आन्ध्रप्रदेश के औरंगाबाद जिले में सह्याद्रि की पहाड़ियों में स्थित अजन्ता में स्थित 30 गुफाएं भित्ति चित्रों की उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इसी प्रकार आन्ध्र प्रदेश के ही अनन्तपुर में लेपाक्षी मन्दिर के भित्ति चित्र महत्त्वपूर्ण हैं। अजन्ता की गुफा संख्या-1 में बोधिसत्व पद्मपाणि अवलोकितेश्वर भार विजय तथा चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय और ईरान के ससानी साम्राज्य के बादशाह खुसरो द्वितीय के साथ दूतों के आदान-प्रदान का चित्र भी है।

बाघ गुफाएं मध्यप्रदेश के धार जिले में स्थित है जहाँ कुल 9 गुफाएं हैं जो अजन्ता के समकालीन हैं। बदामी की गुफाओं में शिवपार्वती, नटराज तथा इन्द्रसभा के महत्त्वपूर्ण चित्र हैं। तमिलनाडु के पुदुकोट्टई जिले में सित्तनवासल की गुफाओं में स्थित मन्दिरों की दीवारों पर 8वीं तथा 9वीं सदी के दौरान भित्ति चित्र बनाए गए हैं जो सिद्धों, शैव और जैन धर्म से सम्बन्धित है। अजन्ता की एलोरा के समीप ही हिन्दू, जैन व बौद्ध धर्म से जुड़े भित्ति चित्र हैं।

अरुणाचल प्रदेश और त्रिपुरा में उदात्त भित्ति रचनाएं मिली हैं। लद्दाख को अलची और हेमिस मठों में दीवार चित्रों के लिए जाना जाता है। जो 11वीं 12वीं शताब्दी में बने हैं। 12वीं शताब्दी ईस्वी के उत्तरप्रदेश के ललितपुर जिले में मदनपुर में स्थित विष्णुमन्दिर में भित्ति चित्रकारों के कुशल हाथों का पता चलता है।

(ब) भारत की लघु चित्रकला

ऐसा चित्र जिसकी संरचना और अनुपात 25 वर्ग इंच (100 वर्ग सेंटीमीटर) से कम तथा अनुपात $\frac{1}{6}$ से अधिक न हो उसे लघुचित्र कहा जाता है। उदाहरण के लिए तूतिनामा और हमजानामा है।

लघु चित्र की विशेषताएं- इस तरह की चित्रकारी में हस्तनिर्मित रंगों का इस्तेमाल किया जाता है और ये हस्तनिर्मित रंग सब्जियों, खनिजों, नील, शंख के गोले, कीमती पत्थरों, शुद्ध सोने और चाँदी से बनाए जाते हैं। इस तरह की चित्रकला में मानव आकृति एक पृष्ठीय रूपरेखा के साथ दिखाई देती है जिसमें उभरी आंखें, नुकीली नाक और पतली कमर को विस्तार से दिखाया जाता है।

भीमबैठका शैलाश्रम में जिस प्रकार की चित्रकारी देखने को मिलती है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि लघु चित्रकारी का विकास तीस हजार वर्ष पहले ही हो गया था। इसलिए हम कह सकते हैं कि यह प्रागैतिहासिक कला है। भारत में और भी ऐसे शैलाश्रय हैं जहाँ पर जानवरों, नृत्य और शिकार के शुरुआती साक्ष्य जैसे विषयों को चित्र के माध्यम से दर्शाया गया है। उदाहरण के लिए अजन्ता गुफा चित्रकारी (दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से 5वीं शताब्दी ईस्वी)

लघु चित्रकला का विकास वास्तविक रूप से 9वीं शताब्दी और 11वीं शताब्दी के बीच हुआ। शुरुआत में यह ताड़ पत्र या चर्मपत्र पर की जाती थी तथा बाद में कागज पर होने लगी।

इन चित्रों की विशेषताएं लहरदार रेखाएं और शान्त पृष्ठभूमि होती है। चित्रों में ज्यादातर अकेली आकृतियाँ होती हैं और कदाचित ही समूह में पाए जाते हैं।

पाल साम्राज्य के दौरान लघु चित्रकला को बौद्ध धर्म को बढ़ावा देने के लिए प्रयोग किया जाता था। इसलिए बौद्ध धर्म के वज्रखान शाखा के समर्थकों ने इस चित्रकला को समर्थन दिया और संरक्षण भी। कृष्णलीला, रागरागिनी, भेदा, रितुचित्र, पंचतन्त्र जैसे विषयों पर भी लघुचित्रकला की जाती रही है।

भारतीय उपमहाद्वीप में मुसलमानों के आगमन से लघुचित्रकारी में थोड़ी फेरबदल हुई परन्तु इस्लामी शैलियाँ छा गई हों ऐसा नहीं है। विजय नगर के दक्षिणी राज्य में एक अलग शैली उभर रही थी जो दक्खनशैली से मिलती जुलती थी। इस काल का सबसे अच्छा उदाहरण वीरभद्र मन्दिर के चित्र हैं जिसकी दीवारों पर अमूर्त रूपांकनों से चित्रित है जिसको लेपक्षी चित्रकला भी बोला जाता है।

सल्तनतकाल में लघुचित्रकारी में फारसी तत्त्वों का सम्मिश्रण मिलता है। मुगलकाल में लघु चित्रकारी को एक नया आयाम मिला क्योंकि इसके पहले ईश्वर को चित्रित किया जाता था लेकिन मुगलकाल में शासकों को महिमामण्डित किया गया और उनके जीवन दर्शाने पर जोर दिया गया। आमतौर पर आखेट के दृश्य, ऐतिहासिक घटना और दरबार से सम्बन्धित विषयों का चित्रण किया गया। इस काल में चमकीले रंगों के इस्तेमाल ने लघुचित्रकारी को अद्वितीय बना दिया।

प्रश्न 2 भारत की प्रस्तर मूर्तिकला का इतिहास और विकास बताइए।

उत्तर- पत्थर की मूर्तियाँ पत्थर को त्रिआयाम से काटने से बनती हैं। इनकी आधारभूत संकल्पना एक ही होने पर भी हमें लाखों तरह की रचनाएं देखने को मिलती हैं। यह एक प्राचीन कला है जिसमें प्राकृतिक पत्थर को नियन्त्रित रीति से काटा जाता है। कलाकार अपनी क्षमता को पत्थर को काटने में दिखाता है जैसे वह उसकी कुशलता का प्रतीक हो। लगातार कई दिनों तक पत्थर को विभिन्न आकृतियों में काटकर शिल्पकार पत्थर को एक मूर्ति का रूप देता है।

पत्थर कई तरह के होते हैं जिनसे मूर्तियाँ निर्मित की जा सकती हैं। इससे पत्थर तराशने वाले को अनेक विकल्प मिल जाते हैं जिससे वह अलग-अलग रंग, गुणवत्ता और पत्थर की मजबूती को चुन सकता है। सबसे ज्यादा मजबूत आग्नेय चट्टान हैं जो पिघले हुए चट्टान से बनती है जैसे कि ग्रेनाइट, बसाल्ट, डिमोराइट। अवसादी पत्थर जैसे कि जिप्सम का भी उपयोग होता है। रूपान्तरित पत्थर तो मूर्तिकारों में सबसे प्रसिद्ध है। अनेक तरह के संगमरमर इसके अधीन आते हैं। पत्थर जितना मुलायम होता है उतना ही उसे काटना आसान हो जाता है। इसलिए सोपस्टोन के साथ काम करना बहुत आसान होता है जबकि ग्रेनाइट, बसाल्ट जैसे पत्थर काटने के लिए बहुत कठिनाई आती है पर उसकी मूर्ति ज्यादा टिकाऊ होती है। मूर्ति बनाने के लिए अच्छे पत्थर दुनिया को हर कहीं नहीं मिलते। ईजिप्ट, ग्रीस, इण्डिया राष्ट्रों में अच्छे पत्थरों की प्रचुरता है। अतः इन देशों में बहुत सारे मन्दिर और उन मन्दिरों में सुन्दर पत्थर मूर्तियाँ बहुत हैं। पेट्रोग्लिफ्स सबसे पुराने तरह का पत्थर है। इस चट्टान की सतह को थोड़ा हटाके मूर्ति की छवि बनाई जाती है।

प्रसिद्ध प्रस्तर मूर्तियाँ और नक्काशी- गोथिक काथेड्रलों में हुम शिल्प की अनेक बनावटों को देख सकते हैं। निकोला पियानो और उसके बेटे गियोवधि पियानो ने इसमें अपना

बड़ा योगदान दिया है। सबसे पहले जानकारी में आने वालों में एक मूर्तिकला 'लायन म्यान' के नाम से जानी जाती है। यह लगभग 32,000 साल पहले बनाई गई है। दुनिया के आठ आश्चर्यों में से दो पत्थर की मूर्तियाँ ही हैं। ग्रीस में डिलोस के शेर, रशशया की मदर रशशक्षा मूर्ति, मैकांलाजलों का डेविड, न्यूयार्क की स्वतन्त्रता की मूर्ति आदि प्रसिद्ध हैं। सुनसान सी ईस्टर द्वीप में स्थित कोई नायक पत्थर के एक चट्टानी शिल्प पूरे विश्व में विख्यात है। पालिनेशिया के उपनिवेशवादियों से यह कलाकृति बनी है और यह मृतक पूर्वजों को दर्शाती है।

भारत में भी ऐसी अति सुन्दर कलाकृति की रचनाएं हम पा सकते हैं। हिमाचल प्रदेश के कांगरा जिले में, राजस्थान के माउण्ट आबू के दिलवारा मन्दिर में हम अक्शम कलाकृति को पाते हैं। दिल्ली की कुतुब मीनार को यूनेस्को ने सबसे ऊंची मीनार का खिताब दिया है। तमिलनाडु के महिषासुर मर्दिनी गुफाओं में हिन्दू पुराण को माता दुर्गा के माध्यम से समझाया गया है। गुजरात में जयी मस्जिद में अनन्य रूप से पत्थर को काटा गया है। कर्नाटक में बहुत सारे मन्दिर अपनी शिल्प कलाकृति के लिए जाने जाते हैं जैसे, होयसला, हलेबीडू, वेल्लूर आदि। ओडीशा का कोणार्क मन्दिर भी अपनी पत्थर शिल्प कलाकृति के लिए जानी जाती है। महाराष्ट्र की अजन्ता गुफाएं भी बड़ी मनमोहक हैं।

भारत की सिन्धु घाटी सभ्यता के मोहनजोदड़ो के बड़े-बड़े जलकुण्ड प्राचीन भारतीय मूर्तिकला का एक श्रेष्ठ उदाहरण हैं। दक्षिण के मन्दिरों जैसे कि कांचीपुरम, मदुरै, श्रीरंगम और रामेश्वरम तथा उत्तर में वाराणसी के मन्दिरों की नक्काशी और मूर्तिकला उत्कृष्ट कला का उदाहरण हैं। केवल यही नहीं मध्यप्रदेश के खजुराहो मन्दिर और उड़ीसा के सूर्य मन्दिर भी इस उत्कृष्ट कला का जीता-जागता रूप हैं। साँची स्तूप की मूर्तिकला भी बहुत भव्य है जो तीन सदी ई.पूर्व से ही इसके आसपास के जंगलों और तोरण द्वारों को अलंकृत करती है। सारनाथ संग्रहालय के लायन केपीटल (जहाँ से भारत की सरकारी मुहर का नमूना तैयार किया गया था) में मोर की पत्थर की मूर्ति, महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं को चित्रित करने वाली अमरावती और नागार्जुनघोंडा की वास्तुशिल्पीय मूर्तियाँ इसके उदाहरण हैं।

प्रश्न 3 भारत में धातुकला एवं टेराकोटा का वर्णन कीजिए।

उत्तर-

(अ) धातुकला

धातुकार्य की कला भारतीयों को अब से 5,000 वर्षों से ज्ञात है। मोहनजोदड़ो की नृत्यांगना की सुन्दर छवि इस बात की गवाही देती है। यह प्राचीन कारीगरों द्वारा प्राप्त उच्च स्तर की कारीगरी को इंगित करती है। परम्परागत रूप से, भारतीय शिल्पकार विभिन्न धातुओं जैसे लोहा, ताँबा, चाँदी और मिश्र धातु जैसे कांस्य, बेल धातु, सफेद धातु आदि का उपयोग बर्तन, धूपदान, फोटोफ्रेम, देवताओं की मूर्तियों, पौराणिक आकृतियों और जानवरों की मूर्तियों को बनाने के लिए करते थे।

महरौली (दिल्ली) का लौह स्तंभ, जो मौर्यकाल से सम्बन्धित है, भारतीय शिल्पकारों की उत्कृष्टता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। चोल काल के दौरान भी धातु की कला महान ऊंचाइयों पर पहुँच गई। चोल शिल्पकार कांसे की मूर्तियाँ बनाने में उस्ताद थे। मूर्ति आमतौर पर रोई मोम तकनीक से बनाई जाती है। इस प्रक्रिया में मूर्तिकला या किसी वस्तु का मोम का मॉडल बनाया जाता है। इस मॉडल को फिर मिट्टी से ढक दिया जाता है और मिट्टी में छेद कर दिया जाता है। अन्त में पिघला हुआ धातु शीर्ष पर छेद के माध्यम से डाला जाता है, जिससे

मोम पिघल जाता है। भीतर गुहा स्वतः ही गर्म धातु में बदल जाती है। धातु को ठण्डा होने दिया जाता है और अन्तिम उत्पाद को मिट्टी और पालिश से मुक्त किया जाता है।

धातु कार्य के क्षेत्र में भारत के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की शैलियाँ देखी जाती हैं। कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र में पारम्परिक बर्तन लोहे और पीतल के बने होते हैं। कई बड़े पैमाने पर उत्कीर्ण पारम्परिक घरेलू सामान जैसे कटोरे, समोवर, प्लेट और ट्रे भी कश्मीर में बनाए जाते हैं। नक्काशी में ताँबे और चाँदी की वस्तुओं पर विस्तृत पुष्प और सुलेख डिजाइन छापे जाते हैं। इन वस्तुओं को फिर ऑक्सीकृत किया जाता है, जिससे डिजाइन पृष्ठभूमि से अलग दिखता है।

उत्तर प्रदेश का मुरादाबाद पीतल की वस्तुओं के लिए प्रसिद्ध है। घरेलू सामानों की एक विस्तृत श्रृंखला जैसे बर्तन, ट्रे, कटोरे, डोंगे और सजावटी टुकड़े यहाँ बनाए जाते हैं और जटिल नक्काशी से सजाए जाते हैं। बनारस देवताओं और घरेलू बर्तनों की ढली हुई मूर्तियों के लिए जाना जाता है।

राजस्थान भी धातु के काम की अपनी समृद्ध परम्परा के लिए जाना जाता है। यहाँ जयपुर पीतल की नक्काशी का केन्द्र है। यहाँ उत्पादित होने वाली वस्तुएं फोटोफ्रेम, कटोरे, प्लेट, बक्खे आदि हैं। अलवर में कोफ्तागरी या दमिश्क कार्य की कला प्रसिद्ध है। कई अन्य राज्यों में भी धातु के काम की कला फलती-फूलती है। वे मध्यप्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा और तमिलनाडु हैं।

(ब) टैराकोटा

टैराकोटा (इतालवी भाषा : पकी मिट्टी) एक सेरामिक है। इससे बर्तन, पाइप, सतह के अलंकरण, जो कि इमारतों में होते हैं, किये जाते हैं।

टेराकोटा एक विशेष प्रकार की मृत्तिका है जिसे पावडर ग्लास, क्रस्ड पाटरी, सिल्का, एलुमाइना, मंग्नेशिया इत्यादि को मिलाकर बनाया जाता है। टेराकोटा को मफल फुर्नेस में पकाते हैं।

इतिहास- मिट्टी की मूर्तियाँ बनाने की कला राजस्थान में टेराकोटा का मुख्य केन्द्र मोलेला गाँव (राजसमंद जिला) है। इसके अलावा अलवर का कागजी टेराकोटा प्रसिद्ध है।

प्रयोग- मिट्टी के बर्तन, दीपक, मटकी, साजोसामान और रखरखाव के साधन।

रंग- टैराकोटा का रंग लाल और भूरा के बीच होता है।

टेराकोटा सामान्यतः मिट्टी के बर्तन को कहा जा सकता है। टेराकोटा मूर्तियाँ बनाने के लिए पकी हुई मिट्टी के उपयोग को सन्दर्भित करता है। कांसे की मूर्तियों की तुलना में टेराकोटा की मूर्तियाँ संख्या में कम हैं और आकार में उतनी सुन्दर नहीं हैं। इन्हें पिंचिंग विधि का उपयोग करके बनाया जाता है। अधिकांशतः गुजरात और कालीबंगा के स्थलों में यह मिलती हैं। सामान्यतः टेराकोटा के खिलौने, पशुओं की मूर्तियाँ, लघु गाड़ियाँ और पहिए आदि बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है।

कला- मातृदेवी की मूर्तियाँ अनेक सैंधवस्थलों से मिली हैं। ये उन्नत वक्षस्थल पर लटके हुए कंठाहार से सज्जित एक खड़ी महिला की मूर्ति है। यह धोती/कटिवस्त्र और कघनी पहने हुए हैं। इसने पंखाकार मुकुट भी पहना हुआ है। चेहरे के रूपांकन को भी बहुत भद्दे ढंग से दिखाया गया है और कुशलता का अभाव है।

मोहनजोदड़ो से मिली स्टेटाइट की मुहर में पालथी मारकर बैठी मानव आकृति या देवता को दर्शाया गया है। पशुपति के रूप में सन्दर्भित इस आकृति ने तीन सींगों वाला मुकुट पहना है और चारों ओर पशुओं से घिरी है। आकृति के दाईं ओर हाथी और बाघ हैं जबकि बाईं ओर गैंडा और भैंस दिखाई देते हैं। आकृति के आसन के नीचे दो हिरण दर्शाए गए हैं।

आभूषण- हड़प्पाई लोग आभूषण बनाने के लिए मूल्यवान धातुओं और रत्नों से लेकर हड्डियों और पकी हुई मिट्टी जैसी विविधतापूर्ण सामग्री का उपयोग करते थे। पुरुष और महिलाएं दोनों कंठाहार, पट्टिका, बाजूबंद और अंगूठियों जैसे आभूषण बनाते व पहनते थे। करधनी, झुमके और पायल केवल महिलाएं पहनती थीं।

टेराकोटा की प्रक्रिया- टेराकोटा बनाने की प्रक्रिया में विभिन्न चरण शामिल हैं। जैसे मिट्टी को परिष्कृत करना, मिट्टी को मिलाना, पहिए पर फेंकना, सुखाना और पकाना। 900 डिग्री पर 8 घण्टे पकने पर बनता है टेराकोटा क्ले आर्टिकल।

बिहार प्रान्त का टेराकोटा- टेराकोटा बिहार की प्राचीन शिल्पकलाओं में से एक है जिसमें रामरस और गेरुआ मिट्टी का उपयोग किया जाता है। अपने सौन्दर्य के लिए प्रचलित यह कला शिल्पकारों द्वारा तरह-तरह के मिट्टी के बर्तन विशेषतः दैवी आकृतियाँ, प्राकृतिक कलाकृतियाँ और भी अनेक रंगरूप से सुसज्जित की जाती हैं जो सजावटी होती हैं।

प्रश्न 4 भारत में शिल्प की परम्पराएं और तकनीक पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- भारतीय शिल्प में धातुकार्य, काष्ठ कार्य, वस्त्र निर्माण, गहना निर्माण, टेरा की वस्तुएं, मिट्टी के बर्तन, बेंत और बाँस से बनी वस्तुएं आदि शामिल हैं। कुछ शिल्प जैसे लकड़ी का कार्य, पेंटिंग और स्टोन वर्क को वास्तु शिल्प के तत्त्वों और कला की वस्तुओं के रूप में चित्रित किया जाता है।

शिल्प समुदाय की गतिविधियों व उनकी सक्रियता का प्रमाण हमें सिन्धु घाटी सभ्यता (3000-1500 ई.पूर्व) काल में मिलता है। इस स्थल में मिले सूती वस्त्र और विभिन्न आकृतियाँ, आकार और डिजाइनों के मिट्टी के बर्तन, कम मूल्यवान पत्थरों के बने मनके, चिकनी मिट्टी से बनी मूर्तियाँ, मोहरें (सील) एक परिष्कृत शिल्प संस्कृति की ओर संकेत करती हैं। आगे चलकर 16वीं और 17वीं शताब्दी में मुगल शासकों के शासनकाल में शिल्प का एक नया रूप उभरकर सामने आया।

भारत अपने बुने हुए आसनों, रेशमी कपड़े, पीतल के बर्तन, चिकनकारी या कढ़ाई, रंगीन रेशम, मुगल लघुचित्र और चाँदी के गहनों के लिए प्रसिद्ध है। अन्य आकर्षक शिल्प की वस्तुओं में छोटे लाख के बक्से, शाल, पेंटिंग, सैंडल और आदिवासियों द्वारा बनाए गए गहने शामिल हैं। भारत वस्त्रों का एक बड़ा निर्यातक है और आगंतुक पारम्परिक भारतीय कपड़ों (साड़ियों और कुर्तों) को खरीदकर अपने साथ विश्वभर में ले जाते हैं। दरी, कालीन इत्यादि प्रकार के पैटर्न और रंगों में बनाए जाते हैं। भारत के अलग-अलग हिस्सों में शिल्प के भिन्न-भिन्न रूप पाए जाते हैं। शिल्प के कुछ प्रसिद्ध रूप इस प्रकार हैं-

ढोकरा- ढोकरा वास्तुकला की वस्तुएं भारतीय शिल्प भण्डारों में भरपूर मात्रा में उपलब्ध हैं जिन्हें बनाने की तकनीक श्रमसाध्य और समय लेने वाली है। इसमें हल्के सुनहरे रंग की फिनिशिंग के साथ शानदार रूप से तैयार किए गए डिजाइन सम्मिलित हैं। ढोकरा शिल्प पारम्परिक रूप से धार्मिक मूर्तियों, गहनों, दीये, पशुमूर्तियों और जहाजों के रूप में पाया जाता

है। इस पारम्परिक विधि में मोम और मिट्टी के माध्यम से धातु को मनचाही आकृति दी जाती है। इस विधि का उपयोग बड़े पैमाने पर खानाबदोश जनजातियों द्वारा किया जाता है। जो पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, उड़ीसा और दक्षिणी भारत के कुछ हिस्सों में रहते हैं। गुजरात में सुनार के परिवार से आने वाले तेजम सोनी ने ढोकरा की पारम्परिक तकनीक का उपयोग करके इसे अद्यतन रूप देने का प्रयास किया है।

मीनाकारी इनेमल वर्क- मीनाकारी एक धातु की सतह को तामचीनी के साथ गहने की तरह सजाने की एक प्राचीन कला है जिसे मुगलों द्वारा भारत लाया गया। यह सामान्यत: गहने, फूलदान, कटोरे और उपहार के बक्से पर की जाती है। यह एक जटिल प्रक्रिया है और रंगीन तामचीनी के साथ उत्पाद के रिक्त स्थानों को भरा जाता है। परम्परागत रूप से इसे रंगने के लिए लाल, हरे, नीले और सफेद रंग का उपयोग किया जाता है जिसमें सफेद रंग का उपयोग पहले और लाल रंग का उपयोग अन्त में किया जाता है। ये रंग आग के प्रतिरोधक होते हैं। भट्टी की गर्मी रंगों को पिघला सकती है इसलिए विशेष रंग ही उपयोग में लाए जाते हैं जो गर्मी में पिघल कर डिजाइन की चमक बढ़ाते और डिजाइन के खांचे के भीतर फैल जाते हैं। मीनाकारी में पारम्परिक रूप से इस्तेमाल किए जाने वाले प्राथमिक रंगों के उत्पादों को रोजमर्रा की जिन्दगी में उपयोग करना थोड़ा मुश्किल हो सकता है। अत: इसे आधुनिक स्वरूप देने के लिए आभूषणों को रंगने हेतु आधुनिक रंगों का प्रयोग किया जा रहा है। ये आभूषण 2315 कैरेट सोने और चमकदार रत्नों से तैयार किये जाते हैं।

मिट्टी और शीशे का कार्य- यह कार्य (शिल्प) गुजरात के कच्छ रेगिस्तान के कलाकारों और निवासियों द्वारा किया जाता है। यह कलाकारी मुख्यत: दीवारों पर की जाती है, इसे रेगिस्तान में पाए जाने वाले घरों में और मुख्य रूप से उनके शीतलन गुणों के लिए उपयोग किया जाता है। मिट्टी और ऊंट का गोबर जैसी स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री को दीवारों पर लगाया जाता है। ज्यादातर हथेलियों और उंगलियों का उपयोग करके मिश्रण को आकार दिया जाता है, फिर शीशे की गोद के माध्यम से डिजाइन में लगाया जाता है।

जामदानी- भारत में सबसे अच्छे शिल्पकारों में से एक जामदानी (जिसे मखमल के कपड़ों के रूप में भी जाना जाता है) एक आकर्षण पैटर्न वाला महीन सूती कपड़ा है जो परम्परागत रूप से बांग्लादेश के ढाका (जो पहले अविभाज्य हिन्दुस्तान में था) के शिल्पकारों और प्रशिक्षुओं द्वारा एक बन्द कपड़ा तकनीक का उपयोग करके हाथ से बुना जाता है। यह वस्त्र शान्त या जीवन्त रंगों और रूपांकनों के साथ डिजाइन की गहनता को जोड़ते हैं। इसमें मुख्यत: पौधे और पुष्प के ज्यामितीय चित्र बनाए जाते हैं। बुनकर परिवारों के बीच कौशल को आगे बढ़ाया जाता है और यह शिल्पकार अपनी विरासत पर गर्व करते हैं।

बिडरवेयर- बिडरवेयर शब्द की उत्पत्ति बिदर शहर से हुई है जो अभी भी अद्वितीय मेटलवेयर के निर्माण का मुख्य केन्द्र है। अपनी विचित्र जड़न कलाकृति के कारण बिडरवेयर भारत की एक महत्त्वपूर्ण निर्यात हस्तकला है और यह सम्पत्ति के प्रतीक के रूप में बेशकीमती है। इसमें चाँदी, जस्ता और ताँबे का उपयोग किया जाता है।

पेम्बर्थी मेटल क्राफ्ट- इस क्राफ्ट की उत्पत्ति तेलंगाना राज्य के वारंगल जिले में स्थित पेम्बर्थी नामक स्थान से हुई है, यह एक धातुकला शिल्प है। यह स्थान अति सुन्दर शीट धातुकला कार्यों के लिए लोकप्रिय है। काकतीय साम्राज्य के शासनकाल के दौरान इस शानदार पीतल

कार्य कला का विकास हुआ। रथों तथा मन्दिरों को सजाने के लिए शीट धातुकला का व्यापक रूप से उपयोग होता है।

ऊन तथा उससे सम्बन्धित शिल्प- भारत का हिमालयीन क्षेत्र अपने ऊन और काश्मीरी स्वेटर, कंबल, रजाई, तिब्बतीकालीन आदि के लिए प्रसिद्ध है। कश्मीर अपनी पश्मीना शाल, पन्ना, रेशम और ऊन के कालीन से बने उत्पाद, शिल्प से बने नक्कासीड अखरोट, पजीर के मेच के बक्से, हाथ से बुने हुए ऊन के रेशमी आसन, लाह के बर्तनों, रेशम से बने विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के लिए विख्यात है। बिहार प्रान्त अपनी मधुबनी चित्रकला के लिए प्रसिद्ध है। मिथिला के मूल निवासियों में एक मनोरम कथात्मक कला को जन्म देने वाला गुण है। राजस्थान में सदियों से आभूषणों में की गई मीनाकारी प्रसिद्ध है। गोवा जैसे तटीय राज्य मिट्टी के बर्तनों और हस्तशिल्प, समुद्री कौड़ियों और ताड़ के पत्तों से बने सजावटी सामानों के लिए जाने जाते हैं। तमिलनाडु का कांचीपुरम रेशम शिल्प, केरल शीशम और चंदन की कलाकारी, हाथीदाँत का काम, पीतल के उत्पाद, नारियल से बने उत्पाद के लिए विख्यात है।

हस्तशिल्प आधुनिक मशीनरी व उपकरणों के बिना हस्तनिर्मित उत्पाद है इसलिए भारत में शिल्प परम्परा और उसकी तकनीक महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्न 5 शिल्पकारों और शिल्प परम्पराओं के माध्यम से महिला सशक्तिकरण कैसे होगा? वर्णन कीजिए।

उत्तर- महिला सशक्तिकरण को बेहद आसान शब्दों में इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि इससे महिलाएं शक्तिशाली बनती हैं और वह अपने जीवन से जुड़े सभी फैसले स्वयं ले सकती हैं, वे आर्थिक रूप से किसी अन्य पर आश्रित नहीं होतीं। वे परिवार और समाज में ससम्मान रह सकती हैं। समाज में महिलाओं के वास्तविक अधिकारों को प्राप्त करने के लिए महिलाओं को सशक्त बनाना आवश्यक है। इसमें ऐसी ताकत है कि वे समाज और देश में बहुत कुछ बदल सकें।

भारत की आधी आबादी महिलाओं की है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार अगर महिला श्रम में योगदान दे तो भारत की विकास दर दहाई की संख्या में होगी। महिलाओं को रोजगार देना अथवा उन्हें किसी उद्योग या शिल्प में आत्मनिर्भर बनाने से वे आर्थिक उपार्जन कर सकेंगी और इस प्रकार सशक्त बन सकेंगी।

महिलाओं को किसी शिल्प में प्रशिक्षण देकर उन्हें उस शिल्प के द्वारा आवश्यक सुविधाएं प्रथम बार उपलब्ध कराकर शिल्पकारी के माध्यम से महिला सशक्तिकरण लाया जा सकता है। प्रारम्भ में सहकारी शिल्प करने, मार्केटिंग करने में महिलाओं को सशक्त बनाया जा सकता है।

महिला सशक्तिकरण की दिशा में काम करने वाली नोडल एजेंसी के रूप में ट्राइफेड टीम के द्वारा शिल्प में शामिल कर महिलाओं को आर्थिक उपार्जन करने के लिए तैयार किया जा सकता है। शिल्प में नियोजित महिलाएं कुछ ही समय में उत्पाद कर, फिर उत्पाद का विक्रय कर तथा प्राप्त पूँजी को पुन: शिल्प के कच्चे माल को क्रय कर शिल्प के उत्पादन को बढ़ाकर सशक्त हो सकती है। इसके लिए ऐसे शिल्प जो महिलाओं के लिए स्थानीय बाजार की दृष्टि से लाभप्रद हैं, में शासन की योजना बनाकर महिलाओं को शामिल किया जा सकता है। वे जितना उत्पाद करेंगी, उनकी आत्मनिर्भरता उतनी ही विकसित होगी।

बाँस से फर्नीचर आदि बनाना, कपड़ों पर कशीदाकारी करना, चित्रकारी करना, मेटर आर्ट में प्रशिक्षण देना, हथकरघा उत्पाद करना, मिट्टी के बर्तन तथा खिलौने बनाना, टोकरी बनाना, साबुन बनाना, मोमबत्ती बनाना, पत्थर के उत्पाद बनाना, लाख की चूड़ियाँ बनाना इत्यादि सैकड़ों शिल्प हैं जिनमें महिलाओं को सम्मिलित किया जा सकता है।

कौशल विकास और उद्यमशीलता मन्त्रालय के अन्तर्गत महिलाओं को प्रशिक्षण देकर, रोजगार में निपुण बनाया जा सकता है। यदि उत्पाद के विक्रय में कठिनाई आ रही है तो शासकीय स्तर पर इसे खरीदकर बेचा जाकर शिल्पकार के हिस्से की राशि का उसे वितरण कर महिलाओं को उत्पाद तथा स्वतन्त्र व्यापार करने हेतु प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

सिलाई कार्य में फैशनेबल महिला व बच्चों के वस्त्र महिला समुदाय द्वारा तैयार किये जा सकते हैं।

परम्परागत शिल्प का प्रशिक्षण देने पर महिलाएं शिल्पकार बन सकती हैं और सहकारी स्तर पर ग्रुप बनाकर उन्हें व्यावसायिक शिल्प तैयार कर विक्रय करने हेतु निपुण बनाया जा सकता है।

जिस क्षेत्र में जो परम्परागत शिल्प बनाए जाते हैं उनमें भी किसी भी महिला को शामिल करने से महिला धीरे-धीरे उस शिल्प के निर्माण की जानकारी प्राप्त कर स्वयं अच्छी शिल्पकार आसानी से बन सकती है। शिल्प के कुटीर या लघु उद्योगों में भी काम करने के लिए उन्हें तैयार किया जा सकता है। शिल्प अपेक्षाकृत अधिक मूल्य पर विक्रय होते हैं और शिल्पकार महिलाओं की आय भी अधिक होगी। इस प्रकार शिल्प के लिए आवश्यक सरकारी सहायता से महिला सशक्तिकरण सम्भव है।

प्रश्न 6 भारतीय वस्त्र उद्योग का परिचय दीजिए।

उत्तर- दो हजार वर्ष पहले जब भारत व्यापार में सिरमौर था, तब उस व्यापार का बड़ा हिस्सा वस्त्र उद्योग था। यूरोप को सूती वस्त्र भारत ने पहनाए, उन्हें तो मात्र ऊनी वस्त्र ही मालूम थे। चाहे सूती वस्त्र हों या रेशम या मलमल, भारतीयों का डंका सारी दुनिया में बजता था। यूरोपीय देश कपास की खेती नहीं जानते थे। पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं के देश, भारतीय वस्त्रों के दीवाने थे।

वस्त्रोद्योग भारत का प्राचीन उद्योग है। ऋग्वेद में इसका उल्लेख आता है। ऋग्वेद के दूसरे मण्डल में वर्णन है कि सबसे पहले ऋषि गृत्समद ने कपास का बीज बोया, उससे बने पेड़ से कपास प्राप्त की फिर उस कपास से सूत बनाया। इस सूत से कपड़ा बनाने के लिए उन्होंने लकड़ी की तकली बनाई। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी कपड़ों और बुनकरों का उल्लेख है।

कुछ हजार वर्ष पहले, भारत में कपड़ा बनाने की प्रक्रिया ने एक बड़े उद्योग का स्वरूप लिया। कपड़ों को विभिन्न शैली में तैयार कर उनको रंगना यह प्रक्रिया भारत में 5,000 वर्ष पहले से सामान्य रूप से होती थी। प्रोफे. डी.पी. सिंघल लिखते हैं कि 'चरखा' भारत की विश्व को देन है। मोहनजोदड़ो की खुदाई में एक कपड़े का टुकड़ा और रस्सी मिली है। दोनों का परीक्षण करने पर ध्यान में आता है कि उस हड़प्पा कालीन संस्कृति के समय (अर्थात् लगभग 5 से 7 हजार वर्ष पूर्व) भारत में उन्नत किस्म के कपड़े बनते थे। प्रो. स्केरर ने लिखा है, उस जमाने में हिन्दू कारीगरों द्वारा बनाए गए कपड़े आज की हमारी उन्नत-मशीनों पर बनाए गए

कपड़ों से भी अच्छे थे। कहा जाता है कि ढाका के कारीगरों द्वारा बनाई मलमल इतनी नाजुक थी कि एक अंगूठी से भी वस्त्र निकाला जा सकता था अर्थात् भारतीय कपड़ों की गुणवत्ता भी बहुत अच्छी थी।

अंग्रेजों ने भारतीय वस्त्र उद्योग को नष्ट किया। वे इस उद्योग की महत्ता और इसके कारण भारत के वैश्विक महत्त्व को समझते थे। इसलिए भारत में उनके आगमन के मात्र 5 वर्षों पश्चात् 1613 में उन्होंने अपनी पहली मिल (वस्त्रों का कारखाना) भारत के दक्षिणी छोर तमिलनाडु के मछलीपट्टनम में लगाई। उन दिनों मछलीपट्टनम कलयकारी कपड़ों के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ के वस्त्रों की विदेशों में अच्छी माँग थी।

अंग्रेजों के आने से पहले, भारतीय वस्त्रों का निर्माण मुदुरै, पाटन, सूरत, महेश्वर (मालवा), वाराणसी आदि स्थानों पर होता था, किन्तु बंगाल में यह भारतीय वस्त्रों के निर्माण का प्रमुख केन्द्र था। दुनिया में सबसे ज्यादा माँग यहाँ के कपड़ों की होती थी। 'ढाका की मलमल' तो दुनिया भर में राजे, रजवाड़ों और अमीरों की पहली पसन्द थी। यूरोप में इसका निर्यात बड़े पैमाने पर होता था किन्तु यह जापान से अमेरिका तक जाती थी। बंगाल में अंग्रेजों की हुकूमत आने से पहले तक (प्लासी के युद्ध के पहले तक) बंगाल का कपड़ा पश्चिम में तुर्किस्तान, ईरान, इजिप्ट, इटली आदि देशों में जाता था। पूर्व में जावा, चीन और जापान इन देशों में भी बंगाल की मलमल की और अन्य प्रकार के सूती वस्त्रों की अच्छी खासी माँग थी।

शशि थरूर ने अपनी पुस्तक 'एन इरा ऑफ डार्कनेस' में लिखा है कि 1750 के दशक में कपड़ों का निर्यात प्रतिवर्ष एक करोड़ साठ लाख से भी अधिक था (कल्पना करें यह एक करोड़ साठ लाख रुपये आज से पौने तीन सौ वर्ष पहले के हैं। आज के हिसाब से इसकी कीमत हम आंक सकते हैं।) इसके अतिरिक्त बंगाल के रेशम का निर्यात प्रतिवर्ष 65 लाख रुपयों से अधिक होता था। लगभग 2 करोड़ 25 लाख रुपयों के इस पूरे निर्यात में से, भारत में अपनी कम्पनियाँ खोल कर बैठे विदेशी व्यापार (अंग्रेज, पौर्तुगीज, डच, फ्रेंच आदि) लगभग 60 लाख रुपयों का निर्यात यूरोप को करते थे। इसके कारण 16वीं शताब्दी के मध्य से 18वीं शताब्दी के मध्य तक, बंगाल के सूती और रेशम के वस्त्र उद्योग में 35% से ज्यादा की बढ़ोतरी हुई। किन्तु 1757 में अंग्रेजों द्वारा प्लासी की लड़ाई जीतने के साथ दृश्य बदला।

भारतीय वस्त्र उद्योग को समाप्त करने की शुरुआत अंग्रेजों ने बंगाल में की। वे यहाँ केवल व्यापारी नहीं क्रूरतम शासक बन गए। 1757 के पहले तक अंग्रेज ब्रिटिश पाउण्ड में भारतीय माल खरीदते थे अर्थात् हमें विदेशी मुद्रा मिलती थी, जिसके अलग फायदे थे। किन्तु प्लासी की लड़ाई जीतने के बाद बंगाल की सत्ता पर काबिज होते ही अंग्रेजों ने ब्रिटिश पाउण्ड में भारतीय माल खरीदना बन्द कर दिया। अब वे बंगाल से मिलने वाले राजस्व से भारतीय माल खरीदकर उसे यूरोप में बेचने लगे। इसलिए भारतीय उत्पादकों को कम कीमत मिलने लगी।

अंग्रेज व्यापारी, ब्रिटिश सरकार यह सब अपने माल के लिए बाजार चाहते थे। उन्हें भारतीय वस्त्र उद्योग से प्रेम या सहानुभूति का कोई कारण नहीं था। इसलिए अंग्रेजों ने कपड़ा उद्योग में सिरमौर बनने के लिए सभी प्रकार की कुटिल चालें चलीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सिपाहियों ने बंगाल के बुनकरों के करघे (हैण्डलूम) तोड़ दिये।

इसी बीच अंग्रेजों ने वस्त्र बनाने की भारतीय तकनीक के आधार पर वर्ष 1765 के लगभग कुछ यन्त्र बनाए। इन यन्त्रों से कम समय में ज्यादा कपड़े बनते थे। इससे अनेक कुशल बुनकर भिखारी बन गए थे।

उधर इंग्लैण्ड में वस्त्रों का निर्यात बढ़ रहा था। वर्ष 1830 में वह 6 करोड़ यार्ड था तो 1857 में क्रान्ति युद्ध के बाद 1858 के आंकड़े बताते हैं कि भारत ने इंग्लैण्ड से 100 करोड़ यार्ड से ज्यादा कपड़े आयात किये।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में भारत के उद्योगपतियों ने भी कपड़ों के आधुनिक कारखाने खड़े किये। किन्तु फिर भी प्रथम विश्वयुद्ध से पहले 1913 के आंकड़े बताते हैं कि भारतीय कारखाने, भारत में खपने वाले कपड़े का मात्र 22% ही उत्पादन कर रहे थे। निर्यात तो दूर अपने ही देश की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम नहीं थे।

वैदिक काल से चल रहे, सारी दुनिया को सूती वस्त्र पहनाने वाले, उच्च गुणवत्ता का रेशम, मलमल बनाने वाले भारतीय वस्त्र उद्योग को इस प्रकार अंग्रेजों ने नष्ट होने के निकट पहुँचा दिया था।

प्रश्न 7 वाराणसी और कांचीपुरम केन्द्रों में युगों से प्रचलित पारम्परिक प्रथाओं के इतिहास व वर्तमान का विवरण दीजिए।

उत्तर-

(1) वाराणसी

वाराणसी जिसे काशी और प्रयागराज भी कहा जाता है, भारत के उत्तरप्रदेश राज्य में गंगा नदी के तट पर स्थित एक प्राचीन शहर है। हिन्दू धर्म में यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थान है। हिन्दुओं के साथ यह बौद्ध और जैन धर्मों का भी एक तीर्थ है।

वाराणसी संसार के प्राचीन बसे शहरों में से एक है। काशी नरेश वाराणसी शहर के मुख्य सांस्कृतिक संरक्षक हैं तथा सभी धार्मिक क्रियाओं के सांस्कृतिक संरक्षक हैं। वाराणसी की संस्कृति का गंगा नदी एवं इसके धार्मिक महत्त्व से अटूट रिश्ता है। यह नगर सहस्रों वर्षों से भारत का, विशेषकर उत्तर भारत का सांस्कृतिक एवं धार्मिक केन्द्र रहा है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का बनारस घराना वाराणसी में ही जन्मा और विकसित हुआ है। भारत के कई दार्शनिक, कवि, लेखक, संगीतज्ञ वाराणसी में रहे हैं जिनमें कबीरदास, वल्लभाचार्य, रविदास, स्वामी विवेकानंद, त्रैलंग स्वामी, शिवानंद गोस्वामी, मुंशी प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पं. शिवशंकर, गिरिजादेवी, पं. हरिप्रसाद चौरसिया, उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ आदि कुछ हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दू धर्म के परम पूज्य ग्रन्थ रामचरितमानस की रचना यहीं की है। गौतम बुद्ध ने अपना प्रथम प्रवचन वाराणसी के निकट सारनाथ में दिया था।

काशी/वाराणसी के निवासी मुख्यतः भोजपुरी बोलते हैं जो हिन्दी भाषा की एक बोली है। वाराणसी को प्रायः मन्दिरों का शहर, भगवान शिव की नगरी, दीपों का शहर, ज्ञान नगरी आदि विशेषणों से सम्बन्धित किया जाता है।

पौराणिक कथाओं के अनुसार काशी नगर की स्थापना हिन्दू भगवान शिव ने लगभग 5000 वर्ष पूर्व की थी।

यह नगर मलमल और रेशमी कपड़ों, इत्रों, हाथी दाँत और शिल्पकला के लिए व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्र रहा है। गौतम बुद्ध के जन्मकाल में (567 ई.पू.) वाराणसी काशी राज्य की राजधानी हुआ करता था। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने नगर को धार्मिक, शैक्षणिक, कलात्मक गतिविधियों का केन्द्र बताया है और इसका विस्तार गंगा नदी के किनारे 5 कि.मी. तक मिलता है।

वाराणसी 18वीं शताब्दी में ब्रिटिश शासन के अधीन प्रमुख व्यापारिक और धार्मिक केन्द्र रहा है। वाराणसी शहर का बड़ा अंश अति प्राचीन काल से काशी कहा जाता है। इसे हिन्दू मान्यता में सबसे बड़ा तीर्थ माना जाता है। किन्तु तीर्थ के रूप में वाराणसी का सबसे पुराना उल्लेख महाभारत में मिलता है।

बनारसी रेशम विश्वभर में अपनी महानता एवं मुलायमपन के लिए प्रसिद्ध है। बनारसी रेशमी साड़ियों पर बारीक डिजाइन और जरी का काम चार-चाँद लगाते हैं। इस कारण से ये साड़ियाँ वर्षों से सभी पारम्परिक उत्सवों एवं विवाह आदि समारोह में पहनी जाती हैं। कुछ समय पूर्व तक जरी में शुद्ध सोने का काम हुआ करता था।

भारतीय रेल का इंजन निर्माण हेतु बनारस रेल इंजन कारखाना वाराणसी में स्थित है। वाराणसी अपनी गलियों, गंगा धामों, साड़ियों और विश्वनाथ मन्दिर की वजह से प्रसिद्ध है। यह पर्यटन केन्द्र भी है। काशी विश्वनाथ मन्दिर भगवान शिव को समर्पित सबसे प्राचीन हिन्दू मन्दिरों में से एक है।

वाराणसी लकड़ी के खिलौनों, हस्तशिल्प, संगीत और नृत्य का केन्द्र है। यहाँ का हाथीदाँत और पीतल का काम भी प्रसिद्ध है।

(2) कांचीपुरम

कांचीपुरम जिसे कांची भी कहा जाता है, भारत के तमिलनाडु राज्य के कांचीपुरम जिले में स्थित एक नगर है। यह जिले का मुख्यालय भी है। कांची हिन्दू धर्म का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तीर्थ है। कांची पलार नदी के किनारे स्थित है। यह वस्त्रोद्योग में रेशमी साड़ियों के लिए भी प्रसिद्ध है। कांचीपुरम तमिलनाडु की राजधानी चेन्नई के वृहत महानगर क्षेत्र में आता है।

कांची का अर्थ ब्रह्मा, आंची का अर्थ पूजा और पुरम का अर्थ नगर होता है अर्थात् ब्रह्मा को पूजने वाला पवित्र स्थान। शायद इसलिए यहाँ विष्णु के अनेक मन्दिर स्थापित किये गये हैं। मोक्षदायिनी सप्त पुरियों में अयोध्या, मथुरा, द्वारका, हरिद्वार, काशी और अवन्तिका (उज्जैन) में कांचीपुरम की भी गणना है। कांची हरिहरात्मक पुरी है। इसके दो भाग शिवकांची और विष्णुकांची हैं।

साड़ियाँ- कांची अपनी रेशम की बनी साड़ियों के लिए प्रसिद्ध है। यह हाथों द्वारा बनाई जाती हैं एवं उच्च कोटि की गुणवत्ता की होती हैं। इसलिए प्रायः सभी तमिल संभ्रांत परिवार की महिलाओं की साड़ियाँ में एक न एक तो कांजीवरम होती ही है। इनका उत्तर भारत में भी बहुत मूल्य होता है।

कांचीपुरम में कई बड़े मन्दिर हैं जैसे वरदराज पेरूमल मन्दिर भगवान विष्णु के लिए, भगवान शिव के पाँच रूपों में से एक को समर्पित एकाम्बरनाथ, कच्छपेश्वर मन्दिर, कैलाशनाथ मन्दिर इत्यादि। हिन्दुओं का यह पवित्र तीर्थस्थल हजार मन्दिरों के शहर के रूप में चर्चित है। आज भी कांचीपुरम और उसके आसपास 126 शानदार मन्दिर देखे जा सकते हैं। यह शहर चैन्नई से 45 मील दक्षिण-पश्चिम में वेगवती नदी के किनारे बसा है। कांचीपुरम प्राचीन चोल और पल्लव राजाओं की राजधानी रही है।

कांचीपुरम मन्दिरों के साथ-साथ सिल्क (रेशम) का नगर है। यह शहर देवांग और पट्टू सालिर समुदाय के 45000 माहिर बुनकरों का घर है। ये समुदाय बुनाई की कला में महारत रखने के लिए जाने जाते हैं। 15वीं सदी में दोनों समुदाय के लोग बड़े पैमाने में आंध्रप्रदेश से कांचीपुरम आकर बस गए। इन समुदायों ने कांचीपुरम को कारोबार के खास केन्द्र के तौर पर उभरने में मदद की। कला और शिल्प के बेजोड़ नमूनों से यह शहर मिसाल पेश करता है जो कि ज्यादातर धर्म से जुड़े होते हैं। कई मन्दिरों के पुजारी कांचीपुरम सिल्क का इस्तेमाल देवी-देवताओं को सजाने के लिए करते हैं।

इकाई-तीन

प्रश्न 1 प्रदर्शन कलाएं क्या हैं? इनके प्रकार, मुख्य रूप पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- प्रदर्शन कलाएं संगीत, नृत्य और नाटक जैसी कलाएं हैं जो दर्शकों के लिए प्रदर्शित की जाती है। ये दृश्य कलाओं से भिन्न हैं जिसमें भौतिक या स्थिर कला वस्तुओं को बनाने के लिए पेंट, कैनवास या विभिन्न वस्तुओं/सामग्रियों का उपयोग किया जाता है। प्रदर्शन कला में कई प्रकार के अनुशासन शामिल होते हैं जो लाइव दर्शनों के सामने किये जाते हैं जिनमें थियेटर, संगीत और नृत्य शामिल हैं।

रंगमंच, संगीत, नृत्य, वस्तु हेरफेर और अन्य प्रकार के प्रदर्शन सभी मानव संस्कृतियों में मौजूद हैं। संगीत और नृत्य का इतिहास प्रागैतिहासिक काल का है जबकि सर्कस कौशल कम से कम प्राचीन मिश्र का है। कई प्रदर्शन कलाएं व्यावसायिक रूप से प्रदर्शित की जाती हैं। प्रदर्शन उद्देश्य निर्मित भवन में हो सकता है जैसे कि थियेटर और ओपेरा हाउस, त्यौहारों पर खुली हवा के मंच पर, सर्कस जैसे तम्बू में मंच पर या सड़क पर।

दर्शकों के सामने लाइव प्रदर्शन मनोरंजन का एक रूप है। ऑडियो और वीडियो रिकॉर्डिंग ने विकास कलाओं के निजी उपभोग की अनुमति दी है। प्रदर्शन कलाओं का उद्देश्य अक्सर किसी की भावनाओं और संवेदनाओं को व्यक्त करना होता है।

प्रदर्शन कलाओं के प्रकार- प्रदर्शन कला के अन्तर्गत मूल रूप से नृत्य, संगीत, रंगमंच और सम्बन्धित कलाएं आती हैं। जादू, कठपुतली, सर्कस, गान और भाषण देना आदि इस कला के दूसरे रूप हैं। प्रदर्शन कला का प्रदर्शन करने वालों को कलाकार कहते हैं। यह कलाकार नायक, विदूषक, नर्तक, जादूगर, संगीतकार, गायक आदि हैं। प्रदर्शन कला के कलाकार वह भी हैं जो इस कला को परदे के पीछे से सहारा देते हैं जैसे कि लिरिसिस्ट और रंगमंच सूत्रधार।

रंगमंच- रंगमंच प्रदर्शन कला की वह शाखा है जहाँ कहानियों को दर्शकों के सामने प्रदर्शित किया जाता है। प्रदर्शन, संभाषण, इशारों, संगीत, नृत्य आदि के द्वारा किया जाता है। साधारणतः रंगमंच द्वारा प्रदर्शन में मूल रूप से संवाद को अधिक महत्त्व दिया जाता है। रंगमंच, एकांकी, संगीत सभा, नृत्य, इन्द्रजाल, जादू, मूककला, शास्त्रीय नृत्य, स्टेंड अप कॉमेडी आदि रूप में प्रदर्शित किया जाता है।

नृत्य- प्रदर्शन के रूप में किसी संगीत के अनुसार हाथों, मुख और पैरों को एक विशिष्ट रूप में हिलना, घुमाना नृत्य कहलाता है। इन हाथ-पैरों की हिलाने की चेष्टा में एक प्रकार का संदेश रहता है। बातों द्वारा संवाद न कर पाने के विषय अनेक नृत्य द्वारा समझाए जा सकते हैं।

जैसे कि हवा में झूमता हुआ एक वृक्ष, नृत्यकला नृत्य या नाचने की विधि को एक रूप देने को कहते हैं। ऐसे नृत्य निर्देशक को नृत्य की रचना करने वाले को कहते हैं। नाचने की कला अनेक विषयों से प्रभावित होती है। जैसे कि किसी प्रदेश में प्रचलित नृत्य उस प्रदेश की राजनैतिक, सामाजिक एवं लोकप्रियता पर आधारित होता है।

संगीत- मनुष्य अपनी वाणी द्वारा गाकर कला प्रदर्शन कर सकता है। सुर, लय और ताल में गाने की विधि संगीत कला है। यह सीखकर ही प्राप्त हो सकती है। पीढ़ी दर पीढ़ी कई परिवार भारत में संगीत द्वारा जीविका चलाते हैं। इस कला प्रदर्शन को कई प्रदेशों में दैवी भावना भी दी जाती है।

प्रश्न 2 भारतीय नाटक एवं नाट्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बताइए और मुख्य पहलुओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- भारतीय नाटक का इतिहास भारत में संस्कृत के भण्डार से उत्पन्न और विकसित हुआ। भारतीय नाटक ने प्राचीनकाल से ही अपने अविश्वसनीय प्रभाव और सीमा को पूर्णता प्रदान की है। नाटक मूल रूप से प्रदर्शन कला का एक रूप है, जहाँ संवाद, संगीत और नृत्य के उपयोग द्वारा कहानियों का निर्माण किया जाता है। पारम्परिक भारतीय नाटक जो हिन्दू धर्म से अत्यधिक प्रभावित हैं, के स्थानीय कलाकारों द्वारा विकसित किया गया था। यह पश्चिमी प्रभाव की प्रतिकृति नहीं है। भरत को पारम्परिक रूप से भारतीय नाटक के इतिहास में पिता माना गया है। भारतीय नाटक का इतिहास शास्त्रीय संस्कृत रंगमंच में गहराई से निहित है, जो कि नाटक और रंगमंच का सबसे पहला मौजूदा रूप है।

प्राचीन भारतीय नाटक- भारतीय नाटक का इतिहास प्राचीन वैदिक काल का है। इस के बाद यह आधुनिक रंगमंच की परम्पराओं को आगे बढ़ाता है। ऐतिहासिक पथ की ओर मुड़ते हुए पुराण, उर्वशी, यम और यमी, इन्द्र-इन्द्राणी, सरयापाणि और उषा सूक्तम के साथ प्राचीन नाटकों की शुरुआत ऋग्वेद के स्मारकीय स्रोत सामग्री के कारण होती है। यहाँ तक कि रामायण, महाभारत और अर्थशास्त्र के महाकाव्यों में नाटकीयता की विशिष्ट तकनीकें हैं। वाल्मीकि, व्यास और पाणिनी जैसे ऋषियों ने भी निर्णायक प्रकाश डाला था और पतंजलि ने अपने महाभाष्य में दिल से योगदान दिया था कि वहाँ दो नाटक मौजूद थे अर्थात् कासमा वध और वली वध। जैसे प्रारम्भिक युग के नाटकों की उत्पत्ति को बाद की सभी कृतियों में सबसे प्रामाणिक और आधिकारिक माना जाता है।

भरत मुनि को भारतीय नाट्यकला का संस्थापक माना जाता है और उन्होंने भारतीय नाटक को पाँचवें वेद के रूप में वर्णित किया। इस प्रकार भरत मुनि को अक्सर भारतीय नाट्यकला के पिता के रूप में स्वीकार किया जाता है। भरत के नाट्यशास्त्र में एक व्यवस्थित तरीके से नाटक की तकनीक या कला को तैयार करने और उसे नियन्त्रित करने का न केवल इस बात की सलाह देता है कि किसी नाटक में क्या चित्रित किया जाता है बल्कि यह भी कि किस तरह से चित्रण को क्रियान्वित किया जाना है। भरत मुनि ने एक नाटक निर्माण की सफलता के लिए 4 मुख्य विधाओं भाषण, कविता, नृत्य और संगीत को तथा अभिनय और भावनाओं को मान्यता दी। बाद में 300 ईस्वी के मध्य तक भारतीय नाटक का इतिहास यह बताता है कि संस्कृत भाषा में अभिनय और तराशने का खेल काफी हद तक विकसित और पनप चुका था जो वास्तव में महाकाव्य की कविताओं के रूप में सामने आया। प्रत्येक नाटक 9 रस में से

के आसपास आयोजित किया गया था। 15वीं शताब्दी तक संस्कृत नाटक ज्यादातर तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश और गुजरात के मंच पर प्रदर्शित किये जाते थे। गुजरात के वल्लभी के राजा मित्रक ने भारतीय नाटकों और कलाओं को पर्याप्त संरक्षण दिया था।

मध्यकालीन भारतीय नाटक- भारतीय नाटक के इतिहास और भारत के कला के इतिहास में इसके महत्त्वपूर्ण योगदान के कारण किसी को पता चलता है कि 15वीं शताब्दी के बाद भारत पर विदेशी आक्रमणों के कारण भारतीय नाटकीय गतिविधियाँ लगभग समाप्त हो गई थीं। हालांकि यह युग लोकनाट्य की शुरुआत का गवाह बना रहा, जो भारत के प्रत्येक राज्य में 17वीं शताब्दी से देखा जाता था। कई राज्यों ने नाटक की नई शैलियों को नया रूप दिया। बंगाल में यत्रकीर्तनीया, पालागाँव जैसी शैलियाँ थीं। कश्मीर के भांड, थार और गुजरात में मवाई, रामलीला, उत्तर भारत में नौटंकी (उप्र) और भांड, रामलीला और रासलीला मौजूद थीं। महाराष्ट्र में तमाशा, राजस्थान में रास और झूमर, पंजाब में भांगड़ा और स्पंज, असम में यह अहीनात और अभिनात था, बिहार में यह विदुषी थी।

आधुनिक भारतीय नाटक- भारतीय नाटक के इतिहास में औपनिवेशिक काल और इसके उद्भव ने देशभर के नाटककारों के लिए एक कट्टरपंथी और लगभग बवंडर चरण की शुरुआत की थी। काफी समझदारी से अंग्रेजी के बीच सबसे प्रसिद्ध कालिदास द्वारा शकुंतला थी जिसे 1789 में विलियम जोन्स द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित किया गया था। यह नाटक गोएथ जैसे विद्वानों पर एक व्यावहारिक छाप खोदने के लिए पर्याप्त सफल था और इसने साहित्यिक सनसनी की एक लहर बनाई। भारतीय नाटक के आधुनिक इतिहास की शुरुआत और उदय 18वीं सदी के भीतर छिपा हुआ था जब ब्रिटिश साम्राज्य और इसके खिंचाव ने भारत में अपनी स्थिर शक्ति को मजबूत किया। 1831 में प्रशासन कुमार ठाकुर ने हिन्दी रंगमंच की आधारशिला रखी थी। 1843 में सांगली राजा के आग्रह पर नाटककार विष्णुदास भावे ने मराठी से सीता स्वयंवर को जन्म दिया था।

1850 में आधुनिक नाट्य गतिविधि का उद्भव बंगाल, कर्नाटक और केरल में भी हुआ जिसने भारतीय नाटक के इतिहास को आगे बढ़ाया। फिर 1858 से मुम्बई और गुजरात के कई शहरों में मुख्य रूप से अहमदाबाद, सूरत, बड़ौदा और बड़नगर में गुजराती और उर्दू नाटकों का मंचन शुरू हुआ। पारसियों ने अपनी नाटक कम्पनी शुरू की और अपने नाटकों का मंचन करते हुए हिन्दुस्तानी, उर्दू, फारसी और संस्कृत के शब्दों का उदार उपयोग किया। 1880 में ठीक समय बीतने के साथ, अन्ना साहब, नलवंत पांडुरंग किर्लोस्कर ने मराठी में अभिज्ञान शाकुंतलम का मंचन किया था। हालांकि भारत के पश्चिमी हिस्से में पुर्तगाली वर्चस्व के कारण पश्चिमी देशों के नाटक समूह अंग्रेजी नाटकों को मंचित करने के लिए भारत आने लगे।

स्वतन्त्रता के बाद का भारतीय नाटक- 1947 में भारत की स्वतन्त्रता के बाद की अवधि भारतीय नाटक के विकास और इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण द्वितीय चरण का प्रतीक है। 1947 से पहले, हिन्दी नाटकों को संस्कृत नाटकों, अंग्रेजी नाटकों और प्राचीन धार्मिक ऐतिहासिक महाकाव्यों के आसपास रखा गया था, जो कि भारतीय नाटक-अभिनय परिदृश्य में प्राचीन पहलुओं से बहुत अधिक प्रभावित थे। आधुनिक भारतीय नाटक के दूसरे चरण में व्यावसायिक रंगमंच और गैर-व्यावसायिक रंगमंच को मिलाकर नाटकों को दो भागों में विभाजित करने का प्रयास

किया गया। गैर व्यावसायिक रंगमंच समूहों की स्थापना की गई जो सहकारी नाट्य समितियों के तहत आकार लेते थे। जहाँ उनके विषय पश्चिमी नाटकों से प्रेरित थे।

प्रश्न 3 इन महत्त्वपूर्ण नाट्य परम्पराओं का वर्णन कीजिए-यक्षगान, मिडुियट्टु।

उत्तर- भारत में रंगमंच का इतिहास बहुत पुराना है। ऐसा समझा जाता है कि नाट्यकला का विकास सर्वप्रथम भारत में ही हुआ। ऋग्वेद के कतिपय सूत्रों में यम और यमी, पुरुरवा और उर्वशी आदि के कुछ संवाद हैं। इन संवादों में लोग नाटक के विकास का चिन्ह पाते हैं। अनुमान किया जाता है कि इन्हीं संवादों से प्रेरणा ग्रहण कर लोगों ने नाटक की रचना की और नाट्यकला का विकास हुआ। यथासमय भरतमुनि ने उसे शास्त्रीय रूप दिया।

यक्षगान

यक्षगान एक कर्नाटक की लोकप्रिय लोकनाट्य परम्परा है जो लगभग 16वीं शताब्दी से प्रचलित है। यक्षगान लोकनाट्य पर कन्नड़ साहित्य और संगीत, चित्रकला और स्थापत्य का निर्विवाद रूप से प्रभाव देखने को मिलता है। इन सभी के संयोग से संगीत, नृत्य और वेशभूषा तथा साज-सज्जा की अपनी विशिष्ट पद्धति का आविष्कार एवं विकास यक्षगान में देखने को मिलता है।

नृत्य नाटिका में इस रूप का मुख्य सार धर्म के साथ इसका जुड़ाव है, जो इसके नाटकों के लिए सर्वाधिक सामान्य विषयवस्तु प्रदान करता है। जनसमूह का एक नाट्यमंच होने के नाते यक्षगान संस्कृत नाटकों के कलात्मक तत्त्वों के मिले-जुले परिवेश में मन्दिरों और गाँवों के चौराहों पर बजाए जाने वाले पारम्परिक संगीत तथा रामायण और महाभारत जैसे महान ग्रंथों से ली गई युद्ध सम्बन्धी विषय वस्तुओं के साथ प्रदर्शित किया जाता है जिसे आमतौर पर रात के समय धान के खेत में निभाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में धार्मिक भावना की सशक्त पकड़ होने से यह लोकप्रिय है।

एक यक्षगान प्रदर्शन भगवान गणेश की वन्दना से शुरू होता है जिसके बाद एक हास्य अभिनय किया जाता है तथा इसमें पृष्ठभूमि संगीत बैंड और मेडल के साथ तीन व्यक्तियों के दल द्वारा ताल (घंटियाँ) बजाई जाती हैं। कथावाचक, जो भागवत नामक दल का एक हिस्सा भी है और वह पूरे प्रदर्शन का निर्माता, निर्देशक और कार्यक्रम प्रमुख होता है। उसके प्रारम्भिक कार्य में गीतों के माध्यम से कथा का वाचन, चरित्रों का परिचय और कभी-कभी उनके साथ वार्तालाप शामिल हैं।

वर्तमान परिदृश्य में यक्षगान न केवल भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय कला परम्परा में से एक है बल्कि पूरी दुनिया ने इसे मान्यता दी है। यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कर्नाटक राज्य में ही 10,000 से अधिक यक्षगान प्रदर्शन प्रतिवर्ष किये जाते हैं।

मुडियेट्टु

मुडियेट्टु केरल का एक पारम्परिक अनुष्ठान थियेटर और लोकनृत्य नाटक है जो देवी काली और राक्षस दारिका के बीच लड़ाई की पौराणिक कहानी पेश करता है। यह अनुष्ठान भगवती या भद्रकाली पंथ का एक हिस्सा है। यह नृत्य फसल कटाई के मौसम के बाद फरवरी और मई के बीच भद्रकाली मन्दिरों, देवी माँ के मन्दिरों में किया जाता है।

2010 में मुदियेट्टु को मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत की यूनेस्को की प्रतिनिधि सूची में शामिल किया गया था, जो कूडियाट्टम के बाद केरल का दूसरा कला रूप बन गया।

काली-दारिका मिथक

दारिका एक राक्षस था जिसे ब्रह्मा से वरदान मिला था कि वह हिन्दू पौराणिक कथाओं के चौदह लोकों में से किसी में भी रहने वाले किसी भी व्यक्ति से कभी नहीं हारेगा। इसने दारिका को अत्यधिक शक्तिशाली और अहंकारी बना दिया। इस वरदान के साथ, दारिका ने देवताओं के राजा इन्द्र को भी हराकर दुनिया पर विजय प्राप्त की। जैसे ही उसके अत्याचार असहनीय हो गए, ऋषि नारद ने शिव से दारिका को रोकने का अनुरोध किया। शिव ने ब्रह्मा के वरदान को टालते हुए यह घोषणा की कि दारिका की हत्या देवी काली द्वारा की जाएगी, क्योंकि वह एक महिला थी और उसे चौदह लोकों के पुरुषों में नहीं गिना जाएगा।

मुडियेट की विशेषताएं

मुडियेट केरल के त्रिशूर, एर्नाकुलम, कोट्टायम और इडुक्की जिलों में मरार और कुरुप्पु समुदायों के सदस्यों द्वारा किया जाने वाला एक ग्रामीण अनुष्ठान है। हालांकि, पूरा समुदाय इसमें योगदान देता है और इसमें भाग लेता है। मुडियेट्टू का प्रदर्शन हर साल चलक्कुडी पूझा, पेरियार और मूवट्टुपुझा नदियों के किनारे स्थित विभिन्न गाँवों मे देवी के मन्दिरों 'भगवती कावुस' में किया जाता है।

काली का किरदार निभाने में कोई रिहर्सल या तैयारी शामिल नहीं है। यह प्रदर्शन भगवान शिव, नारद, दानव और दारिकन से लेकर काली तक की स्वाभाविक प्रगति है। एक सम्पूर्ण मुदियेट्टू प्रदर्शन के लिए कुल 16 व्यक्तियों की आवश्यकता होती है- जिनमें तालवादक, कलामेझुथु कलाकार, गायक शामिल हैं। मुदियेट्टू की पोशाक और प्रदर्शन शैलियों में भी स्पष्ट क्षेत्रीय अंतर हैं। इस प्रकार, कोराट्टी शैली में, काली एक नंगे धड़ को प्रदर्शित करती है, जो केरल एक स्तन के आकार के तख्ते से ढका होता है, जबकि कुन्नयक्कल, कीझिल्लम और पजहूर शैलियों में, वह पूरे शरीर के ऊपरी हिस्से की पोशाक पहनती है। इसी तरह, कोराट्टी शैली में, दारिका की मुंडी कथकली मुकुट से मिलती जुलती है और उसका चेहरा कथकली के काठी वेश को चित्रित करता है। यह इंगित करता है कि कैसे दोनों रूप आपस में जुड़े हुए हैं, भले ही मुडियेट्टू कथकली से पहले का है, अभिलेखशास्त्रियों ने एक कला के रूप में इसमें विकास की 9वीं या 10वीं शताब्दी ईस्वी तक का पता लगाया है।

समुदाय की भूमिका

मुडियेट्टू एक सामुदायिक उपक्रम है जिसमें गाँव की प्रत्येक जाति एक विशिष्ट भूमिका निभाती है। ड्रमों के लिए बाँस की कलाकृतियाँ और चमड़े की खालें पारायण जाति द्वारा प्रदान की जाती है, जबकि थंडन जाति सुपारी के पते लाती है जो मुखौटों और टोपी के लिए आवश्यक होते हैं। गणकन समुदाय मुखौटों को रंगता है जबकि कुरुवन समुदाय मशालें जलाता है। यह वेलुथेडन (पाटियान) जाति है जो देवता की पोशाक बनाने के लिए इस्तेमाल किए गए कपड़ों को धोती है, जबकि मारन जाति मशालें तैयार करती है और उन्हें तेल की आपूर्ति करती रहती है।

इस प्रकार गाँव की प्रत्येक जाति अपनी पारम्परिक जाति भूमिका के अनुसार त्यौहार में योगदान देती है। अनुष्ठान में प्रत्येक जाति का आपसी सहयोग और सामूहिक भागीदारी समुदाय में आम पहचान और आपसी बन्धन को स्थापित और मजबूत करती है।

मुडियेट का प्रसारण और संरक्षण

एक समुदाय आधारित कला रूप होने के नाते यह वह समुदाय है जिसने पारम्परिक रूप से कला रूप को संरक्षित करने के लिए अगली पीढ़ी को प्रोत्साहित और प्रशिक्षित किया है। इस कला रूप में प्रशिक्षण देने के लिए कोई स्कूल या संस्थान नहीं है और इसका अस्तित्व लगभग विशेष रूप से गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से सीधे प्रसारण पर निर्भर करता है।

प्रश्न 4 कठपुतली और मुखौटा प्रदर्शन परम्पराएं और उनके रूपों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- (अ) कठपुतली प्रदर्शन परम्परा और उसके रूप

कठपुतली विश्व के प्राचीनतम रंगमंच पर खेले जाने वाले मनोरंजक कार्यक्रमों में से एक है। कठपुतलियों को विभिन्न प्रकार की गुड्डे-गुड्डियों, जोकर आदि पात्रों के रूप में बनाया जाता है। इसका नाम कठपुतली इस कारण पड़ा क्योंकि पूर्व में इसे लकड़ी अर्थात् काठ से बनाया जाता था। इस प्रकार काष्ठ से बनी पुतली का नाम कठपुतली पड़ा। प्रत्येक वर्ष 21 मार्च को विश्व कठपुतली दिवस भी मनाया जाता है।

इतिहास- कठपुतली के इतिहास के बारे में कहा जाता है कि ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में महाकवि पाणिनी के अष्टाध्यायी ग्रंथ में पुतला नाटक का उल्लेख मिलता है। इसके जन्म को लेकर पौराणिक मत इस प्रकार है कि भगवान शिवजी ने काठ की मूर्ति में प्रवेश कर माता पार्वती का मन बहला कर इस कला को प्रारम्भ किया। इसी प्रकार उज्जैन नगरी के राजा विक्रमादित्य के सिंहासन में जड़ित 32 पुतलियों का उल्लेख सिंहासन बत्तीसी नामक कथा में मिलता है।

कठपुतली के प्रकार/रूप- पहले लोग कठपुतली की नृत्य कला करके ज्यादा रोजी-रोटी चलाते थे। आज भले ही हर घर में टी.वी., मोबाइल आदि हो गए हैं परन्तु कठपुतली का प्रोग्राम बहुत ही पुराना मनोरंजन के लिए महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध कार्यक्रम रंगमंच पर खेला जाने वाला कठपुतली का नृत्य लोकप्रिय बना हुआ है। जब मनोरंजन के आधुनिक साधन नहीं थे उस दौर में बहुत सारे लोग इकट्ठे होकर कठपुतली द्वारा प्रदर्शित कहानी व नृत्य का भरपूर आनन्द लेते थे। कठपुतली का नाच सबसे ज्यादा बच्चों-किशोरों को अच्छा लगता था क्योंकि इसमें तरह-तरह की मनोरंजनात्मक कहानियाँ, राजा-रानी की कहानियाँ नृत्य के माध्यम से दिखाई जाती थीं। इसमें छोटे-छोटे गुड्डे गुड़ियाँ काठ से बनाकर या कपड़े से बनाकर उसको धागे से बाँध कर गीत गा-गाकर अनेक नयी-नयी कहानियों को दिखाया जाता था और बनाने वाले कलाकार को मनोरंजन के लिए पैसा भी दिया जाता था। गाँव-गाँव में कठपुतली का खेल दिखाने के लिए जब कलाकार आते थे, तब गाँव के लोग सारे जरूरी काम छोड़ कर अपने परिवार व बच्चों के साथ मनोरंजन के लिए कठपुतली का नृत्य देखते थे। इन कठपुतलियों को रंग-बिरंगे कपड़े पहनाकर उसे किसी पात्र के रूप में गीत गा-गाकर कलाकार (जो प्रायः एक परिवार के लोग ही होते हैं) बाजे के साथ प्रस्तुत करते हैं। विश्व के प्रत्येक भाग में मनोरंजन के अन्य रूप नहीं थे अतः कठपुतली के तमाशे प्रसिद्ध थे।

'हमारे देश में कठपुतली के नाच की कला को 2000 वर्ष पुराना माना जाता है।'

कठपुतली के प्रकार- कठपुतली के कई रूप प्रचलन में हैं।

(1) **छाया कठपुतली-** छाया कठपुतली में एक परदे के पीछे पुतले का नाच दिखाया जाता है जिसमें प्रकाश के सहारे परदे के बीचोंबीच दर्शकों को कठपुतली की छाया दिखाकर मनोरंजन किया जाता है। परदे के उस पार कठपुतली का संचालन प्रकाश के द्वारा किया जाता

है और परदे के दूसरी तरफ दर्शक एक छाया की तरह कठपुतली को देख सकते हैं। छाया कठपुतली का नृत्य आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र आदि राज्यों में सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है।

(2) **धागा कठपुतली-** धागा कठपुतली में काठ लकड़ी से बनाए कठपुतले को धागे के द्वारा बाँध कर कलाकार (सूत्रधार) की उंगलियों से उस सूत्र को बाँधा जाता है। धागे के सहारे जिस तरह की कहानी व नाटक होता है उसी तरह कलाकार उंगलियों से नचाकर तथा मुँह से संवाद बोलकर कला बताता है। धागा कठपुतली का खेल बहुत आम है।

(3) **छड़ कठपुतली-** छड़ कठपुतली में बहुत ही बड़ी छड़ या लकड़ी के सहारे पुतलों को बाँधकर नाटक कहानी को प्रस्तुत किया जाता है। यह प्रकार पश्चिम बंगाल और उड़ीसा में ज्यादा प्रचलित है।

(4) **दस्ताना कठपुतली-** दस्ताना कठपुतली के नाच में हथेली उंगली या भुजा के सहारे कठपुतली का नाच दिखाया जाता है। इसमें सिर्फ एक घाघरा होता है और अंगूठे और उंगलियों की तरह बनाकर के नाच दिखाया जाता है। गुजरात तथा राजस्थान में यह रूप अधिक प्रचलन में है।

राजस्थान के भाट जाति के लोग सबसे ज्यादा कठपुतली का नाच दिखाते हैं। वे कठपुतली को रंग-बिरंगे कपड़ों में बनाकर कठपुतली के हाथ-पाँव बनाते हैं। कठपुतली नृत्य में डोरी या सूत्र को पकड़ने वाले तथा संचालन करने वाले व्यक्ति को सहायक या संस्थापक या सूत्रधार कहा जाता है।

मनोरंजन के साथ-साथ कठपुतलियों ने समाज को संदेश देने का, जनजागृति फैलाने का काम भी किया है।

(ब) मुखौटा प्रदर्शन कला परम्परा और इसके प्रकार या रूप

मुखौटा का शाब्दिक अर्थ है जो मुख को ओट में ले जाए यानी लिया ले जाए। उड़िया में छऊ शब्द मुखौटे का पर्याय है, जिसका अर्थ करते हुए शशधर आचार्य कहते हैं कि 'छ' का मतलब है-छाना और 'उ' का मतलब है उपांग यानि किसी अंग को छा लेना। मुखौटा वही है जो मुख पर छा जाए। अंग्रेजी में मुखौटे का पर्याय 'मास्क' है, जिसका अर्थ ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार है-'जो चेहरे को ढक ले, रूप बदलने के लिए प्रयोग में आए, किसी को डराने के लिए, मनोरंजन के लिए'। सारांश में मुखौटे का मतलब एक ऐसा आवरण है, जिसे धारण करने से रूप बदल जाता है, व्यक्ति किसी और का प्रतिरूप बन जाता है। प्रायः नाटकों, नृत्यों, लोकनृत्यों आदि में मुखौटा पहनकर कलाकार किसी और की नकल आदि करते हैं।

कपिला वात्सायन के अनुसार मुखौटों का पहला सन्दर्भ 30,000 ई. पूर्व के चट्टानों पर उकेरे गए चित्रों से ही मिलता है। मुखौटों के ठोस प्रमाण 2040-1768 ईसा पूर्व और इस्वी की पहली शताब्दी के बीच प्राचीन मिश्र में मिले हैं-सोने या चाँदी को मुखौटों के रूप में मृतकों के चेहरे पर लगाए जाते थे। मोहनजोदाड़ो और हड़प्पा की खुदाई में भी कुछ छोटी-छोटी मुखौटानुमा आकृतियाँ मिलती हैं। आदिम जनजातियों में पुरखों की स्मृति में मुखौटा पहनने का रिवाज है। आदिम समाज के लोक उत्सव के समय या लोकाचार में मुखौटों का प्रयोग एशिया, अमेरिका, अफ्रीका, यूरोप, आस्ट्रेलिया सभी महादेशों में करने की परम्परा है।

कथकली, कुडियाट्टम, यक्षगान में अभिनेताओं का मेकअप ही ऐसा होता है कि लगता है कि मुखौटा धारण किये हुए हैं। उप्र. में रामनगर की रामलीला, झारखण्ड के छड़ में मुखौटों का प्रयोग होता है। ओमप्रकाश भारती कहते हैं कि भारतीय रंगमंच में मुखौटों का सबसे अधिक प्रयोग 'छउ' में है। रामलीला में वानरों के लिए लेकिन छउ में मानव व मानवेत्तर सभी किरदारों के लिए मुखौटे का उपयोग होता है। मुखौटों से ही अभिनेता के चरित्र की प्रवृत्ति का आसानी से पता दर्शकों को चलता है। इसलिए इनके नाटकों आदि में चरित्रों की भंगिमा के अनुसार मुखौटे बनाए जाते हैं।

अलग-अलग संस्कृतियों में मुखौटा बनाने की अलग-अलग विधियाँ हैं जैसे आदिवासियों में जानवरों के सींग, पक्षियों के पंख, लकड़ी, हड्डियों के भी मुखौटे मिलते हैं। छउ में नदी में मिलने वाली एक खास तरह की मिट्टी का उपयोग होता है। आमतौर पर लकड़ी, धातु, पंख, शंख, कपड़ा, कागज, प्लास्टर ऑफ पेरिस, प्लास्टिक आदि से मुखौटे बनाए जाते हैं।

मुखौटों के प्रकार- मुखौटों का विभिन्न वस्तुओं के संयोजन से बनाया जाता है। इस आधार पर मुखौटों के अनेक प्रकार होते हैं-कुट्टी (कागज-गत्ते को पानी में गलाकर लुग्दी या कुट्टी बनाकर), कागजी मुखौटे, रबर या प्लास्टिक के मुखौटे, धातु के मुखौटे आदि। प्लास्टर ऑफ पेरिस से भी मुखौटे तैयार किये जा सकते हैं। बनाने के पश्चात रंगों आदि से मुखौटों पर भंगिमाएं नाटक के किरदार के अनुरूप तैयार की जाती हैं।

प्रश्न 5 भारत के विभिन्न संगीत और नृत्य रूप-शास्त्रीय और लोक का वर्णन कीजिए।

उत्तर- भारत के शास्त्रीय संगीत और नृत्य रूप- भारतीय शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति सबसे पुराने ग्रंथों, जो भारतीय परम्परा का हिस्सा हैं, वेदों से पाई जा सकती हैं। सामवेद में संगीत का विस्तार से वर्णन किया गया है। किंवदंती के अनुसार भारतीय पौराणिक कथाओं में एक पात्र ब्रह्मा ने यह संगीत अपनी पत्नी सरस्वती को दिया था। उनके हाथ में वीणा इसी संगीत का प्रतीक है। सरस्वती से संगीत महर्षि नारद तक गया और गुरु नारद ने गंधर्वों, अप्सराओं, किन्नरों को यह संगीत सिखाया। कालान्तर में विद्वानों और कलाकारों ने विज्ञान, वैज्ञानिक नियमों और विधियों की खोज की जिसे आज शास्त्रीय संगीत के नाम से जाना जाता है। शास्त्रीय संगीत लोक संगीत का वैज्ञानिक रूप है। शास्त्रीय नृत्य और लोकनृत्य संगीत में सम्मिलित हैं।

(1) भारत के शास्त्रीय नृत्य

भारत में शास्त्रीय संगीत और नृत्य तथा लोक संगीत व नृत्यों की शैलियों में से कुछ जो भारत में उत्पन्न और विकसित हुईं, वे हैं भरतनाट्यम, कथक, कथकली, कुचिपुडी, मणिपुरी, मोहनी अट्टम और ओडिसी। ये सभी नृत्यरूप अभिव्यक्ति की सामान्य भाषा के रूप में मूल रूप से एक ही मुद्रा या हाथ के संकेतों का उपयोग करते हैं और मूल रूप से विभिन्न देवी-देवताओं के मनोरंजन करने के साथ-साथ विभिन्न पौराणिक कहानियों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाने में प्रभावी रहे।

(i) **भरतनाट्यम-** यह नृत्य रूप सबसे प्राचीन है तथा दक्षिण भारतीय राज्यों तमिलनाडु और कर्नाटक में अधिक लोकप्रिय है। ऐसा माना जाता है कि भरतनाट्यम को ब्रह्मा ने ऋषि भरत मुनि को बताया था जिन्होंने तब उसे नाट्यशास्त्र नामक संस्कृत पाठ में संहिताबद्ध किया था।

(ii) **कथक**- यह नृत्य रूप महत्त्वपूर्ण शास्त्रीय नृत्यों में से एक है। इसकी उत्पत्ति कथा शब्द से हुई जिसका अर्थ है, कहानी कहने की कला। कत्थक नृत्य शैली की उत्पत्ति उत्तर भारत में हुई और यह भरतनाट्यम नृत्य शैली के समान थी। प्राचीन भारत कथाकार या भाटकार थे जो संगीत, स्वांग और नृत्य के साथ धार्मिक और पौराणिक कहानियाँ सुनाते थे।

(iii) **कथकली**- कथकली केरल का शास्त्रीय नृत्य है जिसका अर्थ है-कहानी-नाटक। कथकली अपने भारी, विस्तृत श्रृंगार और वेशभूषा के लिए जानी जाती है। वस्तुतः कथकली की रंगीन और आकर्षक पोशाकें केरल की सबसे मान्यता प्राप्त प्रतीक बन गई हैं। कथकली को कल्पना और रचनात्मकता के सबसे शानदार थियेटरों में से एक माना जाता है। कथकली नृत्य रामायण, महाभारत और अन्य हिन्दू महाकाव्यों, पौराणिक कथाओं और किंवदन्तियों से प्राप्त विषयों को प्रस्तुत करता है।

(iv) **कुचिपुड़ी**- कुचिपुड़ी का नाम आन्ध्र प्रदेश के कुचिपुड़ी गाँव से लिया गया है। सत्रहवीं शताब्दी में कुचिपुड़ी गाँव ब्राह्मणों को सौंप दिया गया था, जो नृत्य और नाटक के मंचन के विशेषज्ञ थे। यह नृत्य हिन्दू महाकाव्यों, किंवदन्तियों और पौराणिक कथाओं के दृश्यों को प्रदर्शित करता है। इसमें शुद्ध नृत्य और अभिनय शामिल है लेकिन यह भाषण का उपयोग है, जो कुचिपुड़ी की प्रस्तुति को नृत्य नाटक के रूप में अलग करता है।

(v) **मणिपुरी**- यह भारत के मणिपुर का प्रमुख शास्त्रीय नृत्य है। मणिपुरी नृत्य शैली मणिपुरी लोगों के जीवन पैटर्न में अन्तर्निहित है। मणिपुरी नृत्य का सबसे आकर्षक हिस्सा इसकी रंगीन सजावट, नाचते हुए पैरों का हल्कापन, अभिनय (नाटक) की नाजुकता, मधुर संगीत और काव्यात्मक आकर्षण है। मणिपुरी की नृत्यशैली ज्यादातर अनुष्ठानिक है और मणिपुर राज्य की समृद्ध संस्कृति से प्रेरित है।

शास्त्रीय संगीत के दो रूप- शास्त्रीय संगीत में हिन्दुस्तानी संगीत और कर्नाटक संगीत दो संगीत शैलियाँ सम्मिलित हैं जिसमें हिन्दुस्तानी संगीत इस्लामी और फारसी संस्कृति से अधिक प्रभावित है। इसके वाद्ययंत्र और राग काफी हद तक विदेशी शैलियों से मिलते-जुलते हैं। कर्नाटक संगीत शास्त्रीय संगीत के सबसे पुराने रूपों में से एक है और इसका सम्बन्ध भारत के दक्षिणी भाग से है। कर्नाटक संगीत हिन्दू परम्पराओं से जुड़ा है और इस्लामी या फारसी प्रभावों से मुक्त है।

(2) भारत के प्रमुख लोक संगीत व लोकनृत्य

भारत में लोकसंगीत जातियों तथा जनजातियों के हिसाब से अलग-अलग है। भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग लोकगीत विकसित हुए हैं। भारत में लोक संगीत परम्परा प्राचीन समय से चली आ रही है।

भारत के प्रमुख लोक संगीत इस प्रकार हैं-

1. *बिहूगीत (असम)*
2. *पंडवानी (छतीसगढ़)*
3. *गरबा (गुजरात)*
4. *लावणी (महाराष्ट्र)*
5. *ओडिसी (उड़ीसा)*
6. *महिया (पंजाब)*

7. *भांगड़ा (पंजाब)*
8. *झूमर (झारखण्ड)*
9. *होरी (ब्रिज)*
10. *भवगीत (कर्नाटक)*
11. *मांड (राजस्थान)*
12. *रासलीला (उ.प्र.)*

लोकगीत, लोकसंगीत और लोकनृत्य आम लोगों के गीत हैं जिनकी परम्परा सदियों से चली आ रही है। जीवन जीने की स्वतन्त्र इच्छा लोकगीतों के मिजाज को दर्शाती है। भारत में लोकगीत विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों को निर्दिष्ट करते हुए विभिन्न रूपों में आता है।

भारत में लोक संगीत की उत्पत्ति- चूँकि लोकगीत मुख्य रूप से लोगों के जीवन, धार्मिक विश्वासों और परम्पराओं से प्राप्त होते हैं जो अलग-अलग प्रान्तों/प्रदेशों में भिन्न-भिन्न हैं, अतः सभी में पर्याप्त विभिन्नता दृष्टिगत होती है। ये अपने क्षेत्र की लोकसंस्कृति को भी दर्शाते हैं। आम जनता द्वारा लोकगीत, लोकसंगीत तथा लोकनृत्यों की उत्पत्ति होती है। इनके रचयिता आम लोग हैं।

प्रश्न 6 प्रमुख भारतीय मेलों और त्यौहारों का वर्णन कीजिए।

उत्तर-

(अ) प्रमुख भारतीय मेलों का वर्णन

भारत में मेलों का विशेष महत्त्व है। मेलों में अनेक लोग मिलते हैं और मेलास्थलों पर विभिन्न स्थानों से आए भिन्न-भिन्न संस्कृति वाले लोग, बच्चे और वृद्धगण हर्षोल्लास से स्नान ध्यान करते हैं। बच्चों को मेलों में आयोजित होने वाले खेल-तमाशों में बड़ा आनन्द आता है। मेलों में विभिन्न प्रकार की दुकानें लगती हैं और लोग खरीदारी करते हैं। मनोरंजन के खेलों में सभी भाग लेते हैं।

(1) **कार्तिक पूर्णिमा मेला**- इस मेले का आयोजन भारत भर में नदियों के किनारे पर स्थित स्थल पर किया जाता है, ताकि इस अवसर पर लोग स्नान का लाभ उठा सकें। पौराणिक मान्यता है कि स्नान करने से पुण्य लाभ प्राप्त होता है। पद्मपुराण के अनुसार मायानगरी के देवशर्मा अपनी कन्या गुणवती तथा दामाद के साथ समिधा- कुशा लेने वन को गए थे। वहां एक राक्षस ने देववर्मा और उनके दामाद की हत्या कर दी। अनाथ गणवती विधवा जीवन व्यतीत करती हुई कार्तिक स्नान करती रही। इस अनुपम अनुष्ठान के फलस्वरुप गुणवती ने पुनर्जन्म में भगवान श्रीकृष्ण की अर्द्धांगिनी का पद प्राप्त किया। इस कथा से कार्तिक पूर्णिमा का महत्त्व और भी विशेष रुप से स्पष्ट होता है। कार्तिक पूर्णिमा का दूसरा नाम त्रिपुरारि पूर्णिमा भी है क्योंकि भगवान शिव ने इस दिन त्रिपुर राक्षस का वध किया था, तभी से इस दिन को शुभ माना जाने लगा है। एक किंवदन्ती के अनुसार कार्तिक के माह में सभी देवता जल में निवास करते हैं, इसलिए इस महीने में हजारों व्यक्ति ब्रह्म मुहूर्त में उठकर स्नानादि कर पुण्य लाभ प्राप्त करते हैं।

उत्तर भारत के अनेक प्रान्तों/प्रदेशों में अतीत से नदी-तटों पर मेले लगते हैं। इस अवसर पर गंगा, ऋषिकेश, हरिद्वार, कानपुर, प्रयाग, वाराणसी आदि स्थानों पर विशाल मेलों का आयोजन होता है। गंगा जल की अपार महिमा मानी जाती है अतः गंगा तट पर स्थित स्थानों में प्रत्येक तीर्थस्थल पर तप, दान, जप आदि का महत्त्व है। राजस्थान में आयोजित विभिन्न भागों

के मेलों में पशु मेले आयोजित होते हैं और हजारों पशु लाए जाते हैं। पशुओं का क्रय-विक्रय सम्पन्न होता है। यमुना, नर्मदा, गोदावरी आदि के तटों पर भी इसी प्रकार मेले कार्तिक पूर्णिमा पर मनाए जाते हैं।

(2) **कुम्भ मेला-** विशुद्ध धार्मिक दृष्टि से सम्पन्न होने वाले मेलों में कुम्भ मेला अपनी अनुपमता के कारण जाना जाता है। एशिया का सबसे बड़ा मेला प्रयाग का कुम्भ मेला है, जो 12 वर्षों में त्रिवेणी के तट पर आयोजित होता है। कुम्भ का अर्थ घड़ा (घट) से है। इस विषय में एक पौराणिक कथा है कि समुद्र मंथन के समय चौदह रत्न निकलने के बाद एक अमृत-घट निकला जिसे राक्षसों ने देवताओं से छीन लिया। देवताओं की सहायता हेतु गरुड़ ने वह घट राक्षसों से छीन लिया और चल दिये। उन्होंने विश्राम के लिए उस घट को चार स्थानों पर रखा। अतः जिन स्थानों पर घट रखे गए वहाँ (हरिद्वार, नासिक, उज्जैन, प्रयाग में) कुम्भ मेले आयोजित होते हैं।

कुम्भ का सबसे बड़ा आकर्षण नागा साधुओं और संतों का जुलूस होता है। साधुओं के अखाड़े गाते-बजाते तथा शस्त्र संचालन का प्रदर्शन करते हुए कुम्भ स्नान को जाते हैं। इस शोभा-यात्रा में अनेक वस्त्रविहीन नागा दल बनाकर स्नान के लिए आते हैं। लाखों की संख्या में श्रद्धालु कुम्भ मेले में आते हैं। वहाँ गंगा की रेती पर एक विशाल मेला नगर तैयार हो जाता है जिसमें अनेक व्यक्ति एक मास तक निवास करते हैं।

(3) **तिल संक्रान्ति/मकर संक्रान्ति मेला-** देश में 14 जनवरी को यह पर्व प्रतिवर्ष मनाया जाता है। इस दिन लोग अपने-अपने क्षेत्रों की नदियों तथा अन्य बड़ी पवित्र नदियों में स्नान करते हैं। इस दिन शासकीय कार्यालयों, स्कूलों आदि में सार्वजनिक अवकाश रहता है। इस दिन सूर्य उत्तरायण में प्रवेश करता है। घरों में लोग तिल्ली की तिलपट्टी, तिल के लड्डू बनाते हैं और खाते हैं। गजक भी तिल्ली की बनाई जाती है। अनेक स्थानों पर नदियों के किनारे, संक्रान्ति का मेला भी लगता है तथा लोग स्नान के उपरान्त मन्दिरों में जाकर प्रभु से प्रार्थना करते हैं।

(4) **सबरीमाला मेला-** केरल का सबरीमाला मेला प्रसिद्ध है। हर दिन यहाँ लाखों लोग दर्शन करने आते हैं। हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने सबरीमाला मन्दिर में महिलाओं के प्रवेश पर लगा प्रतिबन्ध हटा दिया है। यह मन्दिर भगवान अयप्पा को समर्पित है। भगवान अयप्पा के पिता शिवजी और माता मोहिनी हैं। यहाँ प्रतिदिन मेले जैसी रौनक रहती है। सबरीमाला का नाम शबरी के नाम पर पड़ा है जिसके भगवान राम ने जूठे बेर खाए थे। सबरीमाला में मकर संक्रान्ति को पंडालय राजमहल से अय्यप्पा के आभूषणों को संदूकों में रखकर एक भव्य शोभायात्रा निकाली जाती है जो 90 किलोमीटर की यात्रा तय कर तीन दिनों में सबरीमाला पहुँचती है।

(5) **सिंहस्थ मेला-** यह उज्जैन में महाकाल मन्दिर के पास क्षिप्रा नदी के तट पर चैत्र मास की पूर्णिमा से बैशाख पूर्णिमा तक महान स्नान पर्व चलता है। इसे मध्य प्रदेश में कुम्भ का मेला भी कहते हैं।

(6) **पुष्कर मेला-** अजमेर (राजस्थान) से 11 किलोमीटर दूर हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ स्थल पुष्कर है। यहाँ कार्तिक पूर्णिमा को मेला भरता है जिसमें बड़ी संख्या में देशी-विदेशी पर्यटक आते हैं। हिन्दू यहाँ पवित्र पुष्कर झील में स्नान करते हैं। यहाँ ऊंट उत्सव के अलावा

9 दिनों तक चलने वाला सबसे बड़ा पशु मेला भी भरता है। पुष्कर ब्रह्माजी का मन्दिर है। लोग यहाँ स्नान के बाद दर्शन करने आते हैं।

(ब) प्रमुख भारतीय त्यौहारों का वर्णन

भारत त्यौहारों के लिए प्रसिद्ध है। शायद ही कोई महीना-पखवाड़ा हो जिसमें कोई त्यौहार न मनाया जाता हो। त्यौहार मनाने की अनेक विधियाँ हैं। अनेक त्यौहारों का सम्बन्ध धर्म से है तो कुछ कृषि, पशुपालन से सम्बन्धित हैं।

भारतीय त्यौहारों की विशेषताएं

1. *अधिकतर त्यौहार वार्षिक होते हैं।*
2. *उनमें से कुछ का सम्बन्ध देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना से होता है।*
3. *कुछ त्यौहार एक निश्चित राज्य/प्रान्त तक सीमित होते हैं।*
4. *कुछ त्यौहारों का सम्बन्ध स्मृति में सुरक्षित लोक कथाओं, दन्त कथाओं से होता है।*
5. *दक्षिणी एवं पूर्वी राज्यों के कुछ त्यौहार मन्दिर-पर्व या मन्दिर-उत्सव के रूप में मनाए जाते हैं। जैसे, तिरूमला, तिरूपति, मीनाक्षी मन्दिर आदि। मन्दिर आदि से सम्बद्ध ये उत्सव बड़े उल्लास से मनाए जाते हैं।*
6. *कुछ उत्सव रथयात्रा से सम्बद्ध होते हैं। जैसे जगन्नाथपुरी, उड़ीसा की रथ यात्रा बहुत प्रसिद्ध है जिसके अनुकरण पर अन्य नगरों में भी रथयात्रा निकाली जाती है।*
7. *हिन्दू त्यौहार नृत्य, संगीत आदि के माध्यम से आकर्षक बनाए जाते हैं जैसे गणेशोत्सव, नवदुर्गा आदि।*
8. *हिन्दुओं के त्यौहारों में सामाजिक जीवन में हर्षोल्लास होता है जिसका प्रभाव मुस्लिमों और क्रिश्चियनों के सामाजिक-जीवन पर भी पड़ा है। मोहर्रम में ताजिए निकालना इसका उदाहरण है।*
9. *कुछ त्यौहारों का महत्त्व कृषि उत्पाद के विपणन, क्रय विक्रय तथा कुछ का पशुओं की प्रदर्शनी तथा अन्य सामानों की प्रदर्शनी के रूप में होता है जैसे ग्वालियर का मेला, पुष्कर मेला।*

त्यौहारों में पूजित देवी-देवता- वैदिक धर्म में अनेक देवी-देवताओं का उल्लेख है। भक्तजन इनकी पूजा उपासना करते हैं। भारतीय त्यौहारों में पूजित देवी-देवताओं का वर्णन इस प्रकार है-

(1) **गणेश-** गणेश चतुर्थी से चतुर्दशी तक भारत में गणेशोत्सव का आयोजन महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश व अन्य स्थानों पर हर्षोल्लास से किया जाता है। इन्हें बुद्धि का प्रतीक माना जाता है। साथ ही प्रत्येक शुभकार्य (जैसे विवाह आदि) में गणेश पूजन से कार्य सिद्ध होना माना जाता है। इनका वाहन चूहा है।

(2) **लक्ष्मी-** इन्हें धन की देवी माना गया है। दीपावली पर्व पर हिन्दू लक्ष्मीजी का पूजन करते हैं। व्यवसायी लोग अपनी दुकान तथा घर में लक्ष्मीजी का मन्दिर बनाकर नित्य पूजन करते हैं।

(3) **दुर्गा-** यह शक्ति की देवी हैं। इनका वाहन शेर है तथा इनकी बत्तीस भुजाएं हैं। दुर्गानवमी त्यौहार पर नौ दिनों तक दुर्गाजी की विशेष पूजा का आयोजन सार्वजनिक त्यौहार के रूप में होता है। विजयादशमी को विसर्जन होता है। कई नगरों में शोभा यात्राएं निकाली जाती हैं जिसमें झाँकियाँ जन समुदाय के लिए प्रदर्शित की जाती हैं। गरबा नृत्य का आयोजन विशेष रूप से गुजरात तथा जहाँ-जहाँ दुर्गाजी की मूर्ति लगाई गई है उनमें से कई स्थानों पर समारोहपूर्वक आयोजन होता है।

(4) **शिव-** शिवरात्रि को विशेष रूप से शिव की आराधना होती है।

(5) **दीपावली-** दीपावली त्यौहार भारत में हर्षोल्लास से मनाया जाता है। इस दिन पटाखे-फुलझड़ियाँ चलाते हैं। त्यौहार आने के पूर्व घरों में पुताई साफ-सफाई की जाती है तथा प्रायः नए कपड़े पहने जाते हैं। कहा जाता है कि श्रीराम, लक्ष्मण व सीताजी 14 वर्ष का वनवास काटकर अयोध्या वापस लौटे थे-इस हर्ष के अवसर पर दीप जलाकर स्वागत किया गया था। हिन्दू इस दिन दीप जलाकर दिवाली मनाते हैं। लक्ष्मी पूजन के बाद मिठाइयाँ परिजनों में वितरित की जाती हैं। दीपावली के पूर्व धन-तेरस का त्यौहार भी मनाया जाता है। इस अवसर पर हिन्दू प्रायः आभूषण, बर्तन आदि क्रय करते हैं।

(6) **दुर्गापूजा-** विशेषतः बंगाल में दुर्गा नवमी पर दुर्गाजी की स्थापना की जाती है। अब भारत के अनेक नगरों में दुर्गा नवमी सार्वजनिक रूप से मनाई जाती है तथा 9 दिन तक दुर्गा के रूपों का पूजन होता है। दसवें दिन दुर्गाजी की शोभायात्रा निकाली जाती है। झाँकियाँ भी निकाली जाती हैं।

(7) **दशहरा-** दसवीं पर रावणदहन का आयोजन भारत के सर्व स्थानों पर आयोजित होता है। दक्षिण में भी मैसूर आदि में इतना प्रचलन है। हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, पंजाब, बस्तर आदि में भी दशहरा त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने बुराई के प्रतीक रावण का वध किया था जिसके प्रतीक रुप में इस दिन रावण का दहन उसका पुतला बनाकर किया जाता है।

(8) **होली त्यौहार-** भारत का यह एक प्रमुख त्यौहार है, जो समता की शिक्षा देता है। विद्वान और मूर्ख के भेदभाव को मिटा देता है। यह पर्व हमारे देश में फागुन शुक्ला पूर्णिमा को हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। यह पर्व उस समय मनाया जाता है जब किसानों की फसल पककर तैयार खड़ी होती है। इस त्यौहार पर लोग एक-दूसरे को गले लगाते हैं और रंग-गुलाल लगाते हैं। इस पर्व के सम्बन्ध में यह कहानी प्रचलित है कि हिरण्यकश्यप एक अत्याचारी राजा था जिसकी बहन का नाम होलिका था। हिरण्यकश्यप का प्रहलाद नामक पुत्र था। उसने एक बार कुम्हार के यहाँ मिट्टी के बर्तनों मे, जो आग में पक रहे थे, बिल्ली के बच्चों को सुरक्षित देखा। भगवान की इस लीला को देखकर प्रहलाद के मन में विष्णु के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। हिरण्यकश्यप ने प्रहलाद को विष्णु की भक्ति की अपेक्षा अपनी पूजा करने को

कहा, परन्तु प्रहलाद ने इसका सदैव विरोध किया। क्रोध में राजा ने प्रहलाद को विभिन्न प्रकार की अमानवीय यातनाएं देना आरम्भ किया। विष पिलाया गया, पागल हाथी के नीचे कुचलवाया गया परन्तु प्रहलाद जीवित रहा और अपनी ईश भक्ति पर अटल रहा। हिरण्यकश्यप ने अपनी बहन होलिका को जलती लकड़ियों के बीच प्रहलाद को गोद में लेकर बैठा दिया। होलिका को अग्नि से न जलने का वरदान ईश्वर से प्राप्त था परन्तु अग्नि से होलिका जल गई और प्रहलाद जीवित रहा। इसकी याद में होली पर आग जलाई जाती है और उसके दूसरे दिन हर्षोल्लास का पर्व रंगोत्सव मनाया जाता है।

(9) **रक्षाबन्धन-** इस त्यौहार पर प्रचलन है कि बहनें अपने भाई को राखी बाँधती हैं और मिठाई खिलाती हैं। भाई सगुन में बहिन को कुछ रुपये देता है और आजीवन बहन की रक्षा का संकल्प लेता है। मान्यता है कि पहले लोगों की रक्षा का भार वेदज्ञ ब्राह्मणों और तत्प्रेरित क्षत्रियों पर था, वह कालान्तर में बहनों पर आ गया।

(10) **दक्षिण भारत के त्यौहार-** दक्षिण भारत में शैव और वैष्णव धर्म प्रचलित हैं, विभिन्न दार्शनिक संप्रदायों के अनुयायी दक्षिण के राज्यों में रहते हैं। इस प्रकार हिन्दू धर्म की दृष्टि से उत्तर भारत और दक्षिण भारत में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

कार्तिके, ओणम, पोंगल दक्षिण भारत के विशेष त्यौहार हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिणी राज्यों में दीपावली, नवरात्रि, दशहरा, मकर संक्रान्ति आदि भी मनाए जाते हैं।

ओणम- केरल का एक प्रमुख त्यौहार है-ओणम। इसका सम्बन्ध विष्णु के वामनावतार के साथ है। वामन ने महाराज बलि से तीन कदम भूमि देने की याचना की और वामनावतार ने सारे ब्रह्माण्ड को तीन कदमों में नाप लिया। बलि को पाताल में रहने को विवश कर दिया। बलि महाराज वर्ष में एक बार भूलोक में आकर अपनी प्रजा की स्थिति का निरीक्षण करते हैं। ओणम का उत्सव इसी से सम्बन्धित है। केरल में बड़े उत्साह के साथ सामूहिक नृत्य, पुष्पालंकारों से ओणम मनाया जाता है।

कार्तिके- यह कृत्तिका का तमिल रुप है। इस दिन विशेषकर तमिलनाडु के लोग घरों में दीप सजाकर रखते हैं। इस एक प्रकार की छोटी दीवाली भी कह सकते हैं। लोग मिठाइयाँ बनाकर मित्रों आदि को वितरित करते हैं। संस्कृत के नाटक साहित्य में ऐसे दीपोत्सव का वर्णन मिलता है।

पोंगल - तमिलनाडु में पोंगल का उत्सव बहुत प्रमुख है। पोंगल एक प्रकार का अन्न है जो खिचड़ी के समान होता है। कृषि के गाय-बैलों के साथ इस उत्सव का विशेष सम्बन्ध है। इस अवसर पर गाय की पूजा भी होती है। यह समृद्धि और हर्ष का त्यौहार है।

इकाई-चार

प्रश्न 1 विदेशों में भारतीय संस्कृति और परम्परा का प्रसार और इसकी निरन्तरता का वर्णन कीजिए।

उत्तर- कतिपय विद्वानों की धारणा है कि भारतीय संस्कृति का विकास और प्रसार आधुनिक भारत की सीमाओं के अन्तर्गत ही हुआ। दूसरे अन्य देशों में उनका प्रसार नहीं हुआ, क्योंकि भारतीय विश्व के अन्य देशों से पृथक रहे, उनमें कूप-मण्डूकता, वर्जनशीलता, पुरातनवादिता और पृथकत्व की भावना थी। वे घरपसन्द लोग थे और पर्वतों, वनों तथा समुद्रों की विघ्न-बाधाओं से अलग रहकर अपने ही देश की सीमाओं में शान्ति व सुख का जीवन व्यतीत करते थे। समुद्र पार अन्य देशों में जाने के लिए उन पर निषेध और नियन्त्रण थे। परन्तु आधुनिक अनुसन्धानों और गवेषणा से यह धारणा निर्मूल और भ्रान्तिमूलक प्रमाणित हो गयी है। ईसा पूर्व तीसरी सदी से लेकर ईस्वी सन् एक हजार के सुदीर्घ युग में भारतीय पूर्व और पश्चिम के अनेक देशों को गये। वहाँ उन्होंने अपने धर्म, भाषा, संस्कृति आदि का प्रसार किया। भारतीय अन्य देशों की खोज करने, दिग्विजय करने, धर्म-प्रसार एवं व्यापार करने के लिए पर्वत और समुद्र की चहारदीवारी लाँघकर अपने देश के बाहर पूर्व और पश्चिम के देशों को गये। पूर्व में उन्होंने अपने अनेक उपनिवेश स्थापित किये। लंका, ब्रह्मा, स्याम, कम्बोडिया, मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, मध्य एशिया के तुर्किस्तान, खोतान आदि देशों में भारतीयों ने अपने उपनिवेश बसाकर वहाँ अपनी संस्कृति का विस्तार किया। उन्होंने इन देशों से आगे बढ़कर अपनी संस्कृति की आध्यात्मिक शक्तियों से चीन, जापान और कोरिया का रूपान्तरण कर दिया। भारतीयों की संस्कृति के विस्तार का आधारभूत सिद्धान्त, एकीकरण और प्रकटीकरण था, न कि प्रतिबन्ध और दमन। भारतीय दर्शन, धर्म और संस्कृति अन्य देशों में विध्वंस और संहार करने हेतु नहीं वरन् विदेशियों को परिपूर्ण और सफल करने के लिये गयी थी। भारतीय संस्कृति विदेशों में प्राणदायक वर्षा के समान थी, न कि तप्त झुलसा देने वाली लू के समान।

बृहत्तर भारत- पूर्व और पश्चिम के देशों में भारतीय-संस्कृति का पर्याप्त प्रसार हुआ था। पूर्व से कोरिया, जापान से लेकर पश्चिम में ईरान और अलेक्जेण्ड्रिया या सिकन्दरिया तक और उत्तर में मध्य एशिया के देशों से लेकर दक्षिण में लंका तक हिन्दू संस्कृति का प्रसार हुआ था। इस क्षेत्र में और विशेषकर मध्य एशिया और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों में भारतीयों ने अपने अनेक उपनिवेश स्थापित किये थे। इस सारे क्षेत्र और उपनिवेशों में हिन्दुओं का विशाल सांस्कृतिक साम्राज्य था। इसी सांस्कृतिक साम्राज्य के क्षेत्र को बृहत्तर भारत कहते हैं।

विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार के प्रमाण

भारत की सीमाओं के पार अनेक देशों में हिन्दू संस्कृति का प्रसार हुआ। इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। ये प्रमाण भारतीय और विदेशी दोनों प्रकार के हैं। भारतीय प्रमाणों में धार्मिक और लौकिक साहित्य और पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्री है। विदेशी प्रमाणों में भी साहित्यिक और पुरातत्त्व की सामग्री है। इनका विस्तृत विवेचन निम्नलिखित है-

(1) **भारतीय साहित्यिक प्रमाण-** इसमें धार्मिक ग्रन्थ और साहित्यिक ग्रन्थ दोनों हैं। धार्मिक ग्रन्थों में ब्राह्मण धर्म के पुराण विशेष उल्लेखनीय हैं। मत्स्य पुराण में भारतीयों के

उपनिवेशों एवं द्वीपों का उल्लेख है। इन द्वीपों के नाम थे-इन्द्र द्वीप (बर्मा), ताम्रपर्णी (लंका), निकोबार, कम्बोडिया, सुमात्रा, जवद्वीप (जावा), बोर्नियो आदि। ये समुद्र द्वारा परस्पर एक-दूसरे से पृथक थे। इनमें भारतीय रहते थे। इनका केन्द्र भारतवर्ष हिमालय और समुद्र के बीच स्थित था। शिवपुराण में उल्लेख है कि मनु के पुत्र नरिष्यत के वंशज भारत के पश्चिमोत्तर दर्रों को पार करके उत्तर में गये और उन्होंने अपने उपनिवेश बनाये। इसी प्रकार इक्ष्वाकु के लड़के विकुक्षि के वंशजों ने सुमेरु या पामीर पर्वत के उत्तर व दक्षिण के प्रदेशों में अपने उपनिवेश स्थापित किये। अग्नि पुराण में लिखा है कि भारतीय समुद्र पार के देशों में गये और वे समुद्र पार के इन भारतीय देशों को 'दीपान्तर' कहते थे। वायुपुराण के अनुसार चन्द्रवंशी आर्यों के द्रुहु वंश के लोगों ने पश्चिमोत्तर भारत को पार करके मध्य एशिया के देशों में अपने राज्य स्थापित किये। इन सभी भारतीय उपनिवेशों में हिन्दू संस्कृति और संस्कृत व्याप्त थी। इस प्रकार पुराण यह प्रकट करते हैं कि भारतीय देश के बाहर गये, और उन्होंने अपना विस्तार किया।

सिलवेनलेवी ने रामायण और महाभारत के उदाहरणों से यह प्रमाणित किया है कि भारतीय व्यापारी ब्रह्मा और मलाया की उपज से अवगत थे। ब्राह्मण ग्रन्थों के अतिरिक्त 'मलिन्दपन्हो' और महाविदेष नामक बौद्ध ग्रन्थों में भी विदेशों से होने वाले भारतीय व्यापार का उल्लेख है। महाविदेष में, जिसकी रचना ईसा की दूसरी सदी के पूर्व हुई थी, समुद्री यात्रा की कठिनाइयों का और समुद्र पार उन स्थानों का उल्लेख है जहाँ भारतीय व्यापारी आते-जाते रहते थे।

लौकिक साहित्य के ग्रन्थों में भी भारतीयों के विदेश भ्रमण और व्यापार के उल्लेख हैं। जातक-कथाओं, बृहत्कथा, कौटिल्य-कृत 'अर्थशास्त्र' और 'कौमुदी महोत्सव' नाटक में विदेशों में भारतीयों के आवागमन और उनके व्यापार की निरन्तर वृद्धि के प्रमाण हैं। जातक-कथाओं व वृहत्कथाओं से विदित होता है कि दक्षिणी-पूर्वी एशिया के प्रदेशों या स्वर्णभूमि और उसके बन्दरगाहों से भारतीय अवगत थे। 'महाजन जातक' में चम्पा और स्वर्णभूमि के मध्य समुद्री यात्राओं का विशद वर्णन है।

(2) **भारतीय पुरातत्त्व सामग्री-** उत्तर पाषाण काल के जो अवशेष भारत में प्राप्त हुए हैं, उनसे कतिपय विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि उस युग में मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया, चीन और पूर्वी द्वीपसमूह से भारत का सम्पर्क था। इसी प्रकार सिन्धुघाटी की सभ्यता के जो अवशेष हैं उनसे भी यह स्पष्ट होता है कि भारत का पश्चिम के बड़े उन्नत देशों से व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध था। अशोक के चतुर्थ शिलालेख में उन यूनानी राज्यों और शासकों का उल्लेख है, जहाँ उसने अपने धर्म प्रचारक भेजे थे। इससे स्पष्ट है कि भारतीय धर्म विजय हेतु उत्तरी अफ्रीका, पश्चिमी एशिया और लंका में गये थे।

प्रयाग स्तम्भ पर समुद्रगुप्त की प्रशस्तियों में उल्लेख है कि समुद्रगुप्त का प्रभुत्व सिंहलद्वीप और अन्य द्वीपों तक व्याप्त था। इससे भी भारतीयों के प्रसार की ओर संकेत होता है।

(3) **विदेशी साहित्यिक और ऐतिहासिक सामग्री-** विदेशों के साहित्य में ऐसे कतिपय ग्रन्थ हैं जिनमें भारतीयों के उपनिवेशों और उनके व्यापार और संस्कृति के प्रसार के प्रमाण हैं। ईस्वी सन् की प्रथम सदी में मिस्र के एक यूनानी नाविक ने "दी पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी" नामक ग्रन्थ लिखा। इनमें भारत के पूर्वी और पश्चिमी तटों के बन्दरगाहों का वर्णन है और

यह उल्लेख है कि इन बन्दरगाहों से अनेकानेक व्यापारिक वस्तुएं मिस्र, यूनान और रोम को जाती थीं एवं अरब सागर के अनेक द्वीपों में भारतीय व्यापारी निवास करते थे। ये द्वीप भारतीय उपनिवेश बन गये थे। इन उपनिवेशों में सोकोत्रा प्रसिद्ध था। इसकी पुष्टि प्लिनी के ग्रन्थ से भी होती है। उसने भारत द्वारा रोमन साम्राज्य को अत्यधिक मात्रा में श्रृंगार के प्रसाधन और विलास की सामग्री भेजने का उल्लेख किया है। ईस्वी की दूसरी सदी में टोल्मी ने भूगोल पर एक ग्रन्थ लिखा है। उसमें उसने मलाया, जावा, सुमात्रा और भारत के बन्दरगाहों का और वहाँ से आने-जाने वाले जलयानों का वर्णन किया है। उसने हिन्द-चीन के अनेक ऐसे स्थानों के नाम बताये हैं जिनका मूल संस्कृत है। मध्य-एशिया में आठवीं सदी में रचित एक संस्कृत-चीनी शब्दकोष उपलब्ध हुआ है, इनमें दक्षिण समुद्रों के प्रदेशों को "जिपत्तल" कहा है। सिलवेनलेवी के अनुसार, "जिपत्तल" से तात्पर्य है "समीपवर्ती द्वीपों सहित भारतीय द्वीपसमूह"। इन द्वीपों और भारत के बीच में समुद्र था। इन्द्रद्वीप, कसेरू, ताम्रवर्ण, गम्भस्तिमन, कागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व और वरुण इन द्वीपों के नाम थे। ये सब भारतीयों के समुद्र पार के भ्रमण की ओर संकेत करते हैं। दूसरी सदी के अन्त में जब अन्नामवासियों का इतिहास प्रारम्भ होता है तो उन्हें हिन्दू हुए राजवंश के अधीन माना गया है। तीसरी सदी के पूर्वार्द्ध में चीन का राजनीतिक सम्बन्ध फानहान के हिन्दू राज्य से था। यहाँ के हिन्दू राजवंश की स्थापना दूसरी सदी के पूर्वार्द्ध में मानी जाती है। सन् 515 में तनासरिम के छोटे से हिन्दू राज्य का राजदूत चीनी सम्राट की सेवार्थ प्रस्तुत-हुआ और उसने वहाँ प्रकट किया कि उसका हिन्दू राज्य चार सौ से भी अधिक वर्ष पूर्व प्रतिष्ठित हुआ था। अरब देश में दसवीं सदी में मसूदी भूगोलशास्त्र का बड़ा पण्डित था। उसने सन् 943 में एक ग्रन्थ लिखा है, जिसका अंग्रेजी में 'Meadows of Gold' के नाम से अनुवाद हुआ है। उस ग्रन्थ में उसने लिखा है कि भारत "भूमि और समुद्र दोनों पर ही फैला हुआ था और उसकी सीमा जवाग (सुमात्रा या जावा) तक थी जहाँ इन द्वीपों का शासक राज्य करता था।" सीरिया के एक लेखक जेनोब ने लिखा है कि अरमीनिया के सम्राट वलर सेसिस (ईसा पूर्व 149 से 127) के यहाँ दो भारतीय राजकुमारों ने शरण ली थी। इन्हें सम्राट ने वानझील के पश्चिम टैरन के एक प्रदेश में बसा दिया। धीरे-धीरे इनके वंशजों ने वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया और अपने उपनिवेश बसा लिये तथा मन्दिर बनाये। लगभग पाँच हजार व्यक्ति यहाँ पूजन करते थे। सन् 304 में ईसाई धर्म प्रचारक सेंट जॉर्ज ने इन मन्दिरों को नष्ट करके वहाँ ईसाई धर्म के गिरिजाघर स्थापित कर दिये।

ग्यारहवीं सदी में अलबरुनी ने अपने यात्रा विवरण में इस बात का उल्लेख किया है कि "पहले खुरासान, पर्सिया, ईराक, मोमुल और सीरिया की सीमा तक के देश बौद्ध थे।" इन देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार करने वाले भारतीय बौद्ध भिक्षु थे। तिब्बत के ग्रन्थों में यह वर्णन है कि अशोक का एक राजकुमार कुस्तन मध्य एशिया के खोतान प्रदेश में अपने साथियों के साथ गया और वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार किया। लंका के द्वीपवंश और महावंश नामक ग्रन्थों में भी यह वर्णन है कि भारतीयों ने लंका को जीता था और विजेता राजकुमार विजय के पिता सिंह के नाम पर लंका का नाम सिंहलद्वीप और वहाँ की भाषा का नाम सिंहली रखा गया और बाद में भारतीय बौद्ध भिक्षुओं ने थेरवादी बौद्ध धर्म का प्रचार लंका और ब्रह्मा में किया। ये इस बात का प्रमाण है कि भारतीय विदेशों में धर्म-प्रचार एवं व्यापार हेतु गये और उन्होंने अपने उपनिवेश स्थापित किये।

(4) **विदेशी पुरातत्व सामग्री-** विदेशों में ऐसी पुरातत्व सामग्री उपलब्ध हुई है जो भारतीयों के विदेश भ्रमण, व्यापार की वृद्धि और धर्म तथा संस्कृति के प्रसार के प्रमाण प्रस्तुत करती है। पश्चिम एशिया में बोगाजकोई स्थान में एक उत्कीर्ण शिलालेख प्राप्त हुआ है जो ईसा पूर्व चौदह सौ वर्ष पूर्व का है। उनमें वैदिक देवताओं और भारतीयों के नामों का उल्लेख है जो इस बात का प्रमाण है कि भारतीय और उनका वैदिक धर्म उस सुदूर अतीत में पश्चिम एशिया में पहुँच गया था। मलाया प्रायद्वीप में आधुनिक वैलजली जिले में चौथी सदी का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जो एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। इसे बुधगुप्त नामक एक भारतीय नाविक ने उत्कीर्ण करवाया था।

सर आरिल स्टेन ने मध्य एशिया में उत्खनन कर वहाँ अनेक सिक्के, भारतीय भाषा और लिपि में उत्कीर्ण लेख, ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ तथा बौद्ध विहारों व स्तूपों के भग्नावशेष, बौद्ध और हिन्दू देवताओं की प्रतिमाएं प्राप्त की हैं। उनसे विदित होता है कि कुषाण और मौर्य-युग में अनेक भारतीय मध्य-एशिया में चले गये और वहाँ उन्होंने अपने धर्म और संस्कृति का खूब प्रचार किया।

भारतीय संस्कृति के प्रसार के साधन और कारण

भारतीय संस्कृति का प्रचार निम्नलिखित साधनों व कारणों से पूर्व और पश्चिम के देशों में हो सका-

(1) **भारतवर्ष की अनूकूल केन्द्रीय स्थिति-** प्राचीन युग में हिन्द महासागर में स्थित होने के कारण भारत की केन्द्रीय अनुकूल स्थिति थी और वह प्राचीन विश्व के सभ्य और सुसंस्कृत देशों के सामुद्रिक मार्गों के मध्य में पड़ता था। वह पूर्व और पश्चिम के देशों को परस्पर सम्बन्धित करने हेतु एक कड़ी के समान था। इसके अतिरिक्त भारत एशिया के दक्षिण भाग में स्थित होने से एशिया के विभिन्न देशों के साथ जल और थल दोनों मार्गों से अपना सम्बन्ध सरलता से स्थापित कर सका। अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतीय पूर्व और पश्चिम के विभिन्न देशों को आते-जाते रहे और उन्होंने इन देशों से अपने घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लिये।

(2) **स्वर्ण की लालसा, भारतीय व्यापारी और उनका वाणिज्य-** पूर्व के देश जैसे जावा, सुमात्रा, मलाया, ब्रह्मा आदि प्राचीन काल में धन-धान्यपूर्ण देश थे। वे स्वर्ण की खानों के देश समझे जाते थे। उनकी धन-सम्पन्नता और स्वर्ण की खानों के कारण भारतवासी इन पूर्वी देशों को स्वर्णभूमि या स्वर्णद्वीप कहते थे। अनेक भारतीय स्वर्ण प्राप्त करने की अधिक लालसा के कारण समुद्र पार इन देशों को गये। भारत के अनेक व्यापारी इन देशों में व्यापार करने तथा धनोपार्जन के उद्देश्य से गये। ये व्यापारी पूर्व में चीन से लेकर पश्चिम में नील नदी के मुहाने पर स्थित अलेक्जेण्ड्रिया या सिकन्दरिया नगर तक के प्रदेशों को आया-जाया करते थे। इन देशों की असभ्य और अनुन्नत जातियाँ भारत के साहसी और सभ्य वणिकों के सम्पर्क में आयीं और उन्होंने भारतीय संस्कृति के प्रथम पाठ उनसे सीखे। अनेक जातक कथाओं, जैन ग्रन्थों, वृहत्कथा तथा अन्य साहित्यिक प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि व्यापार और धन कमाने की लालसा ने भारत तथा अन्य देशों के सांस्कृतिक सम्बन्धों में गतिशीलता प्रदान की।

(3) **पराक्रमी प्रवृत्ति और उपनिवेश-स्थापना की भावना-** कभी-कभी पराक्रमी क्षत्रिय राजकुमार अपने भाग्य की खोज करने, नवीन राज्य और उपनिवेशों की स्थापना करने हेतु भारत

के बाहर समुद्र पार दूरस्थ देशों को जाते थे। उपनिवेश तथा अपने राज्य स्थापित करके उन पर शासन करने के ध्येय से अनेक साहसी योद्धा राजवंशी लोग भी भारत से बाहर गये। वे स्थायी रूप से विदेशों में निवास कर अपने नवनिर्मित राज्यों पर शासन करने लगे। ये राजकुमार और उनके राज्य भारतीय संस्कृति के केन्द्र बन गये। तिब्बती अनुश्रुति के अनुसार अशोक के एक पुत्र कुस्तन ने मध्य एशिया के खोतान प्रदेश में भारतीय उपनिवेश और अपना राज्य स्थापित किया। कौण्डिक नामक एक साहसी भारतीय ब्राह्मण के नेतृत्व में अनेक भारतीय पूर्वी देशों को गए और उन्होंने हिन्दू उपनिवेश की स्थापना की। चीनी इतिहास में इसे फूनान कहते थे। पूर्वी देशों में भारतीयों के अनेक ऐसे राज्य स्थापित हो गये और उन्होंने भारतीय संस्कृति के प्रसार में बड़ा योग दिया।

(4) **धर्म प्रचार-** अशोक, कनिष्क, हर्ष जैसे धर्मनिष्ठ भारतीय सम्राटों ने लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अनेक बौद्ध धर्म प्रचारक और भिक्षुओं के समूह विदेशों में अपने धार्मिक सिद्धान्तों के प्रसार हेतु भेजे। धीरे-धीरे अन्य बौद्ध धर्म प्रचारक, ब्राह्मण आचार्य और उपदेशक भी भारतीय सौदागरों के साथ-साथ विदेशों में गये। वे भारतीय विचार और संस्कृति को अपने साथ लेते गये। ये असभ्य बर्बर विदेशी जातियों में जाते तथा भीषण बाधाओं के होने पर भी उन्हें अपने धर्म का उपदेश देते थे और अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें सभ्य, सुसंस्कृत और उन्नत बनाते थे। परिणाम यह हुआ कि चीन, जापान, जावा, सुमात्रा, बाली, बोर्नियो, कम्बोडिया, ब्रह्मा, लंका, अफगानिस्तान, तिब्बत, खोतान, चीनी, तुर्किस्तान आदि देशों में जहाँ-जहाँ भी भारत के बौद्ध, शैव और वैष्णव धर्म के प्रचारक गये, वहाँ भारत की भाषा, साहित्य, धर्म और संस्कृति का अत्यधिक प्रसार हुआ और वे देश भारतीय संस्कृति के प्रभाव में आ गये।

(5) **विदेशी आक्रान्ता-** कतिपय विदेशी जातियों ने प्राचीन युग में समय-समय पर भारत पर आक्रमण किये और भारत में उन्होंने अपने राज्य स्थापित कर लिये। उन्होंने भारतीय संस्कृति और धर्म ग्रहण कर लिया। उन्होंने अपने मूल देश और भारत के बीच सांस्कृतिक सम्पर्क और सम्बन्ध स्थापित करने में सहयोग दिया।

प्रश्न 2 भारत के दक्षिण पूर्वी एशिया के श्रीलंका तथा दक्षिणी पूर्वी प्रमुख देशों तथा पूर्वी द्वीप समूह से ऐतिहासिक सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।

उत्तर-

श्रीलंका और दक्षिण पूर्व एशिया से सम्बन्ध

श्रीलंका- 5 ई.पू. बौद्ध संस्कृति के विकास के कारण भारत तथा सिंहल (श्रीलंका) के बीच सम्बन्ध स्थापित हुये। बौद्ध साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि काठियावाड़ का विजय नामक राजकुमार अपने पिता का राज्य छोड़कर लंका के लिये रवाना हुआ। वहाँ पहुंचने के बाद उसने लंकाधिपति की कन्या से विवाह किया। वहीं रहकर उसने अपनी कूटनीति से लंका पर अधिकार कर लिया। लंका में शासन को स्थापित करके लंका को भारत का उपनिवेश बना दिया। इतिहास के आधार पर यह माना जाता है कि जिस दिन बुद्ध ने कुशीनगर में निर्वाण प्राप्त किया, उसी दिन राजकुमार विजय ने लंका पर अधिकार किया था। अतः लंका में बौद्ध संस्कृति का प्रचार 5 वीं ई.पू. में ही हो चुका था।

लंका से भारत का विशिष्ट सम्बन्ध सम्राट अशोक के शासनकाल में हुआ। अशोक ने 3 ई.पू. तृतीय बौद्ध संगीति को आमन्त्रित किया। इस संगीति के अधिवेशन के तुरन्त पश्चात् विदेशों में संस्कृति प्रचार करने के लिये प्रचारकों की सूची बनाई गई। लंका के धर्म का प्रचार

करने के लिये अशोक के पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा को चुना गया। वे अपने साथ बौद्ध वृक्ष की शाखा या टहनी भी अपने साथ ले गये थे। उसी की शाखाएँ, प्रशाखाएँ आज लंका की भूमि पर बौद्ध वृक्ष के रूप में झूमती जान पड़ती हैं। 4 थी ई. में गुप्तवंशी सम्राट चन्द्रगुप्त ने लंका के राजा मेघवर्ण से राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित किये।

गुप्तकालीन कला ने श्रीलंका की कला को काफी प्रभावित किया। अनुराधपुर कला का मुख्य केन्द्र है। प्राचीनतम कला के नमूने स्तूप हैं। स्तूपों के अलावा कई विहार भी बने, मूर्तियाँ भी बनीं। सिगरिया की दीवारों पर चित्रित चित्र अजन्ता के गुहाचित्रों के प्रभाव को लेकर बने। पोलन्नावुर में कई हिन्दू मन्दिर हैं, जिन पर गुप्त शैली का प्रभाव है। 10-11 ई. में चोल नरेश राजराज I ने कई हजार द्वीपों के ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित किया था। इनमें लक्षद्वीप तथा मालदीव भी थे। चोलराज के लंका के उत्तरी भाग पर भी अधिकार किया तथा लंका को सांस्कृतिक उपनिवेश का स्वरूप प्रदान किया। इसी तरह से 13 वीं सदी में पांड्यराज महावर्मन कुलशेखर ने लंका को जीता। ऐसे ही कतिपय उदाहरणों के अतिरिक्त भारतीय राजाओं ने लंका पर राज करने का कोई प्रयास नहीं किया।

बर्मा- बर्मा (प्राचीन ब्रह्मा या ब्रह्म देश या स्वर्ण भूमि) में भारतीय उपनिवेश ई.पू. सदियों में ही पहुंच गये। टॉलेमी के वर्णन में द्वितीय शताब्दी के बर्मा के अनेक ऐसे स्थानों के नाम मिलते हैं, जो संस्कृत भाषा के शब्द हैं। बर्मा के कुछ शिलालेखों में ब्राह्मी लेखों का प्रयोग भी वहाँ भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव को सिद्ध करता है। आज भी इस देश के विभिन्न क्षेत्रों में संस्कृत का प्रभाव दिखाई देता है और बर्मी राजाओं की रानियों को आज भी महादेवी कहा जाता है।

बर्मी लोग नस्ल की दृष्टि से हालांकि चीनियों से अधिक मिलते जुलते हैं, किन्तु यह सत्य है कि उन पर चीनी सभ्यता का उतना प्रभाव नहीं पड़ा जितना भारतीय सभ्यता का। बर्मी वृत्तान्तों के अनुसार बुद्ध से बहुत पहले शाक्य वंश के अभि (धि ?) राज नामक राजकुमार ने बर्मा के ऊपरी प्रदेश को जीतकर वहाँ राज्य स्थापित कर लिया और ईरावती नदी के किनारे संकिसा (तगोंग) नामक नगर बसाया। अभिराज के ही एक अन्य वंशज ने दक्षिणबर्मा में राज्य स्थापित किया और उस क्षेत्र को अपनी राजधानी बनाया जो आधुनिक प्रोम के निकट थी। दक्षिण बर्मा में हीनयान सम्प्रदाय का प्रचार हुआ। कहा जाता है कि दक्षिणी चीन के यून्तान प्रदेश का राजवंश भी भारतीय सम्राट अशोक के वंश का था। इस जनश्रुति में कितना ऐतिहासिक सत्य है, यह कहना कठिन है।

स्याम- बर्मा के पूर्व में स्थित स्याम देश में भी लगभग दूसरी सदी में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रवेश हुआ। स्याम को आजकल थाई जाति के नाम पर थाईलैण्ड कहा जाता है, किन्तु थाइयों का प्रभुत्व यहाँ 13 वीं सदी के पूर्व नहीं हुआ था। इसके पूर्व भारतीय इस देश में अनेक अनेकों उपनिवेश स्थापित कर चुके थे, जिनसमें सबसे पहले द्वारवती था। 10 वीं सदी में इसे कम्बुज या कम्पूचिया (आधुनिक कम्बोडिया) नरेशों ने अपने राज्य में मिला लिया।

फूनान- कम्बोडिया का दक्षिण भाग फूनान कहलाता है। चीनी इतिहासकारों के अनुसार इस उपनिवेश का संस्थापक कौडिन्य ब्राह्मण था। उसने वहाँ की राजकुमारी शोभा को वस्त्र पहनना सिखाया और उससे शादी की। उनकी संतानें सोमवंशी कहलाईं। उसके बाद दूसरी सदी में फूनान पर फान ची मेन का अधिकार हुआ, फिर फान चांग हुआ, जिसने 243 ई. में चीन

तथा भारत में चीनी राजदूत भेजा। फान चांग के बाद फान सियुन का पता चलता है। उसके समय में चीनी राजदूत टांगताई फू-नान आया था। फान सियून ने भी 4 बार अपने राजदूत चीन भेजे थे। फिर कौण्डिन्य II नामक भारतीय ब्राह्मण फू-नान गया। वहाँ के लोगों ने उसे राजा नियुक्त किया। उसने पुरानी पद्धति बदलकर नई आरम्भ की। चीनी अश्रुतियों से हमें पता चलता है कि उसके लड़के केष्टोन ने व्यापार हेतु व्यापार मण्डल भेजा था। इन सम्राटों के संस्कृत में अभिलेख मिले हैं। उनके समय में अधिनाथ के शासकों के आक्रमण शुरू हो गये थे। यहाँ के सम्राट पहले शैव, परन्तु बाद में वैष्णव हो गये थे।

कम्बुज- करीब 7 वीं सदी तक कम्बुज फू-नान का अभिन्न अंग रहा, परन्तु बाद में स्वतन्त्र हो गया। करीब 10-11 वीं सदी में वह एक शक्तिशाली हिन्दू इकाई हो गया। वक्शाईचकोई के शक संवत 879 के अभिलेख से पता चलता है कि एक भारतीय व्यापारी कम्बुसुयम्भव ने कम्बोज की स्थापना की। उसके बाद श्रुतबर्म, श्रेष्टवर्मन, रुद्रवर्मन और चित्रसेन हुये। चित्रसेन ने कम्बोज को स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान किया। उसके बाद इशान्यवर्मा हुआ। इशान्यपुर उसकी राजधानी थी। ह्वेनसांग के अनुसार उसका साम्राज्य विशाल था। करीब 616 ई. में उसने चीन में दूत भेजा। चम्पा से उसके सम्बन्ध ठीक नहीं थे, यद्यपि भारत से अच्छे थे। उसने हिन्दुओं के लिये कई मठ बनवाये। फिर क्रमशः भाववर्मन द्वितीय और जयवर्मन हुये।

जयवर्मन के बाद कम्बुज दो भागों में विभक्त हो गया- (i) उत्तर (स्थल) और (ii) दक्षिण (जल कम्बुज) । राज्वर्मन द्वितीय के समय से कम्बुज में एक प्रकार से नये युग का प्रादुर्भाव हुआ। उसके बाद जयवर्मन द्वितीय हुआ, जिसने खण्डित कम्बुज को पुनः जोड़ा। उसने जावा के शैलेन्द्रों को भगाया। उसके समय शिवतन्त्र प्रचलित हुआ। उसने कई मन्दिर और नगर बनवाये। जयवर्मन द्वितीय के बाद करीब 877 ई. में जयवर्धन (जयवर्मन तृतीय) हुआ।

जयवर्मन के बाद इन्द्रवर्मन हुआ और उसके समय में कम्बुज का स्वर्णयुग शुरू हुआ। इस युग में करीब 7 शासक हुये। इस समय सम्पूर्ण चम्पा, जावा का कुछ हिस्सा तथा चीन का कुछ दक्षिण हिस्सा भी कम्बुज में सम्मिलित था।

चम्पा - चम्पा निवासियों पर प्रारम्भ से ही भारतीय संस्कृत की गहरी छाप रही। वहाँ भी चातुवर्ण प्रथा थी। किन्तु प्रधानतः ब्राह्मण और क्षत्रिय दो ही भेद थे। वैवाहिक पद्धति हिन्दू वैवाहिक पद्धति के समान ही थी। विवाह में जाति तथा गोत्र का ध्यान रखा जाता था। यज्ञोपवीत पहनने की प्रथा थी। विधवायें हिन्दू विधवाओं की भांति संयमित और सादगीपूर्ण जीवन बिताती थीं। राजकुलों में सती प्रथा का प्रचलन भी था। मृतक संस्कार हिन्दू विधि से होता था। अस्थि-प्रवाह की प्रथा भी थी। वे लोग हिन्दू त्यौहार और उत्सव भी मनाते थे। चम्पा का मुख्य धर्म शैव था। शिव के साथ शक्ति, गणेश एवं कार्तिकेय की पूजा होती थी। विष्णु भी लोकप्रिय थे। उनकी पत्नी लक्ष्मी और उनके अवतार राम और कृष्ण की उपासना भी होती थी। चम्पा की भाषा संस्कृत थी और चम्पा नरेश स्वयं भी संस्कृत साहित्य के विद्वान और आश्रयदाता थे।

मलय प्रायःद्वीप- यह द्वीप प्राचीनकाल में भारत एवं सुदूर पूर्व के देशों के बीच व्यापार का केन्द्र था। इस प्रायद्वीप के अनेक भागों में प्राचीन मन्दिरों के खण्डहर, मूर्तियाँ, संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण लेख आदि प्राप्त हुए हैं, जिनसे पता चलता है कि चौथी ई. में सम्पूर्ण प्रायद्वीप में भारतीयों के अनेक उपनिवेश थे। मलय प्रायद्वीप के हिन्दू राज्य कर्मरंग, कलशपुर, कटाह, पहग आदि थे। इन सभी राज्यों का भारत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। मलय प्रायद्वीपों के राजाओं

में गौतम, सुभद्र, विजयावर्मन आदि भारतीय नामों का उल्लेख आता है। एक बलपुत्र शैलेन्द्र ने बंगाल के राजा देवपाल के पास राजदूत भेजा और प्रार्थना की कि वह उसके बनाये हुये विहार के लिये 5 गाँव प्रदान करें। देवपाल ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। शैलेन्द्र को स्थापत्य से बड़ा प्रेम था। उन्होंने नालन्दा में तारादेवी के मध्य मन्दिर का निर्माण करवाया। 13 वीं सदी के अन्त में उनके वंश का अन्त हो गया।

पूर्वी द्वीप समूह:

जावा- जावा में भारतीय संस्कृति सबसे अधिक व्यापक रूप में फैली। यहाँ पर सैकड़ों हिन्दू और बौद्ध मन्दिरों के ध्वंसावशेष पाये गये हैं। इनमें लाराजोगरंग का हिन्दू मन्दिर काफी प्रसिद्ध है। इसकी मूर्तियाँ सजीव और भावपूर्ण हैं। चण्डी, कलामन, चण्डी सरी और चण्डी सेबू बौद्ध कला का प्रतिनिधित्व करते हैं। बेरोबुदूर बौद्ध एवं हिन्दू कला का प्रमुख एवं अत्यधिक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा। यहाँ का महाचैत्य इण्डोनेशिया की शैली का प्रतिनिधित्व करता है तथा यहाँ की कला शास्त्रियता लिये हुये है। यहाँ का मन्दिर पिरेमिड आकार में बना हुआ 3 मीटर ऊंचा है। 123-124 मीटर चौकोर आकार पर 4 चबूतरों पर नक्काशी की 11 श्रेणियाँ (Series) हैं, जिन पर बुद्ध और रामायण के 1,460 दृश्य हैं। ऊपर 3 वर्तुलों में 72 घण्टीनुमा स्तूप हैं और प्रत्येक में बुद्ध की मूर्ति है। सबसे ऊपर एक स्तूप है- रिक्त तथा ढका हुआ। रिक्तता सच के चिन्तन का प्रतीक है। मध्य के स्तूपों में शायद बुद्ध के अवशेष हैं। ऊपर जाने के लिये चारों ओर सीढ़ियाँ हैं। चित्रकला के भी नमूने मिले हैं। मन्दिर बौद्ध धर्म के महायानी ब्रह्मांड और ज्ञानपथ का त्रिआयामी प्रतीक है। इसके शिखर पर चढ़कर वस्तुतः बौद्ध धर्म के परम आदर्श की पराकाष्ठा के दर्शन होते हैं। मोटे रूप में महाचैत्य के 3 स्तर हैं, जो क्रमशः कामना, साकार और निराकार जगत के प्रतीक हैं। हिन्दू मन्दिरों में 7 मंजिला मन्दिर ही मुख्य है एवं प्रसिद्ध है। इसमें प्रतिष्ठित मूर्तियों की संख्या काफी बड़ी है तथा उन मूर्तियों की चौड़ाई भी काफी है। यदि इन मूर्तियों को धरातल पर पंक्तिबद्ध किया जाये तो उनकी चौड़ाई 400 फीट की होगी तथा लम्बाई $4\frac{1}{2}$ किलोमीटर की। शैनराज दक्ष के शिव मन्दिरों में शिव की मूर्तियों के साथ-साथ रामायण और महाभारत की कथायें मूर्तियों के माध्यम से चित्रित की गई हैं।

बालि तथा बोर्नियो- इन द्वीपों में भारतीय संस्कृति और सभ्यता का खूब प्रचार था। कुछ अंशों में यह आज भी विद्यमान है। इस बात को निश्चय रूप से नहीं कह सकते कि कब और किस प्रकार भारतीयों ने बलि में अपना राज्य स्थापित किया था। परन्तु, इतना निश्चित है कि 6 तथा 7 वीं. ई. में यहाँ कोण्डिन्य नामक क्षत्रिय राजा राज्य करता था। 10 वीं. सदी में उग्रसेन, केसरी, तवनेन्द्र, चन्द्रमानसिंह आदि भारतीय नामधारी राजाओं का यहाँ शासन था। पहले यहाँ बौद्ध धर्म (वह भी उसकी मूल सर्वास्तिवाद शाखा) का प्राबल्य था। बाद में हिन्दू धर्म का प्रचार हुआ। बालि का दरबार भारतीय दरबार की तरह ही होता था। लोग रेशमी वस्त्र पसन्द करते थे, उन्हें शिकार का शौक था : बोर्नियो (बुकुलपुर) में हिन्दुओं ने 45 वीं सदी में अपना राज्य स्थापित कर लिया था। इस समय पूर्वी बोर्नियों में मूलवर्मन नाम का राजा शासन करता था। वह हिन्दू संस्कृति का परम भक्त था। इन द्वीपों में भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की छाप अब भी दिखाई देती है।

सुमात्रा- सुमात्रा का प्राचीन नाम श्रीविजय (पल्लेमवंग) था, जिसकी स्थापना 4 थी सदी के आसपास हुई थी। इस राज्य के विषय में पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं है। 4 थी सदी में यह राज्य बहुत शक्तिशाली था। श्रीविजय के शासकों ने आक्रमण नीति का अनुकरण किया। उन्होंने मलाया राज्य पर अधिकार कर लिया था तथा यवद्वीप (जापान) पर भी आक्रमण किया था। 8 वीं सदी में श्रीविजय का विस्तार बहुत बढ़ गया था। श्रीविजय ने चीन को अपने दूत भेजे थे। चीनी यात्री इत्सिंग ने अपने यात्रा वर्णन में इसकी स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार था। भारत व श्रीविजय के बीच समुद्री मार्ग से व्यापार होता था। श्रीविजय चीन के बीच का व्यापार का भी प्रमुख केन्द्र था। मलय प्रायद्वीप में 775 ई. के एक अभिलेख में श्रीविजय के राजाओं के शौर्य का वर्णन है, पर इसके दूसरी तरफ 'राजाधिराज विष्णु' का उल्लेख है, जिसे शैलेन्द्रवंशी बताया गया है। इससे इतिहासकारों की यह धारणा बनी कि सुमात्रा में 8 वीं सदी में शैलेन्द्र राजाओं का शासन था, किन्तु बाद में यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई।

प्रश्न 3 विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार में भारत के प्राचीन विश्वविद्यालयों/उच्च शिक्षा केन्द्रों तथा विद्वानों की भूमिका बताइए।

उत्तर- भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत धर्म, दर्शन, कलाएं, साहित्य, भाषा, परम्पराएं, शिक्षा, मूल्य, जीवनशैली, दृष्टिकोण और रीति रिवाजों इत्यादि की गणना प्रमुखतः होती है। प्राचीन भारत में भारतीय संस्कृति का प्रसार विदेशों में होता रहा है, जो विदेशी सम्पर्क होने के कारण सम्भव हो पाया। भारतीय प्राचीन विश्वविद्यालय और शिक्षा केन्द्र वह स्थान थे जहाँ देश के अतिरिक्त विदेशों के विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से आते थे। शिक्षा, धर्म, ज्ञान के प्रति विश्व आकर्षित रहता था और पर्यटन के रूप में भी अनेक विदेशी यहाँ आकर संस्कृति की शिक्षा लेते थे। विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाकर भी कई विदेशी यहाँ के आवासीय विश्वविद्यालयों में निवास भी प्राप्त करते थे तथा विद्वान शिक्षकों से ज्ञानार्जन करते थे। विदेशों में भारतीय संस्कृति, विशेषतः दर्शन, धर्म, कला, विज्ञान आदि फैलाने में तक्षशिला, विक्रमशिला; नालन्दा, वल्लभी, ओन्दन्तपुरी, कश्मीर के उच्च शिक्षा केन्द्रों/विश्वविद्यालयों की प्रमुख भूमिका रही है। इन विश्वविद्यालयों में अनेक विद्वान शिक्षण कार्य आदि करते थे जिसका प्रभाव देश के विद्यार्थियों के अतिरिक्त विदेशों के छात्रों पर भी पड़ता था। इन विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में ऐसे क्षेत्र भी सम्मिलित रहते थे जिससे शिक्षा पूर्ण कर घर वापस जाने वाले विदेशी प्रभावित होते थे। विद्यार्थी के अतिरिक्त भारत आने वाले विदेशी पर्यटक भी विदेशों में भारतीय संस्कृति के अच्छे संवाहक थे। भारत से धर्म प्रवर्तन हेतु विदेश जाने वाले भारतीयों का भी भारतीय संस्कृति व धर्म-दर्शन के प्रसार का अपना ही असरकारी प्रभाव था।

प्रमुख प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयों का संस्कृति प्रसार में योगदान आदि का नीचे वर्णन किया जा रहा है-

तक्षशिला

हमारे देश का सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र तक्षशिला था। यह पश्चिमी पंजाब के रावलपिण्डी नगर से लगभग बतीस किलोमीटर दूर पर स्थित था। ऐसा कहा जाता है कि राम के छोटे भाई भरत के कनिष्ठ पुत्र तक्ष ने तक्षशिला नगर बसाया था और वह उसका प्रथम शासक था। पुरातन-युग में यह सभ्यता का प्रसिद्ध केन्द्र रहा था। ईस्वी सन् के पूर्व के

पाँच सौ वर्ष से लेकर ईस्वी सन् की छठी शताब्दी तक इस नगर की प्रभूत प्रगति हुई। परन्तु सीमा पर स्थित होने के कारण इसका सामरिक महत्त्व था। फलतः भारत पर निरन्तर होने वाले आक्रमणों के कारण यह नगर विध्वंस हो गया था। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि तक्षशिला को नागराज तक्षक ने बसाया था। तक्षक के डसने या विष देने से पाण्डव राजा परीक्षित की मृत्यु हो गयी थी। इसलिए परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए तक्षक पर आक्रमण किया। उसे पराजित कर तक्षक का राज्य और तक्षशिला अपने राज्य में मिला लिये और वहाँ नागों का विशाल यज्ञ किया। कहने का तात्पर्य यह है कि तक्षशिला अत्यन्त ही प्राचीन है।

पाँचवीं सदी के प्रारम्भ से जब चीनी यात्री फाह्यान तक्षशिला में आया था, तब उसने वहाँ बौद्ध धर्म को फलता-फूलता पाया। परन्तु सातवीं सदी में भारत में आने वाले चीनी यात्री ह्वेनसांग ने तक्षशिला की दुर्दशा देखी थी।

तक्षशिला में आजकल के समान विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, सुव्यवस्थित विद्यापीठ या वेतनभोगी शिक्षक नहीं थे, न कोई निर्दिष्ट पाठ्यक्रम व शिक्षा-अवधि ही थी और न कोई परीक्षा, प्रमाण-पत्र या उपाधियाँ ही थीं। वह तो शिक्षा का एक प्रसिद्ध केन्द्र था जहाँ विभिन्न विद्याओं और कलाओं के धुरन्धर पण्डित और विद्वान रहते थे। इनके घरों पर रहकर छात्र विद्याध्ययन करते थे। किसी-किसी ग्रन्थ में यहाँ के एक-एक आचार्य के पास पढ़ने वाले सौ छात्रों का उल्लेख है तो जातक ग्रन्थों में पाँच सौ विद्यार्थियों का। प्रायः यहाँ उच्च शिक्षा प्रारम्भ करने की आयु सोलह वर्ष की थी और छः से आठ वर्ष तक अध्ययन चलता था। निर्धन विद्यार्थी दिन में काम करते और रात्रि के अवकाश में पढ़ते थे; कभी-कभी छात्र शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् शुल्क देने की प्रतिज्ञा करते थे, शुल्क देने वाले छात्र-गुरु के घर पुत्र के समान रहते थे। गुरु व्यक्तिगत रूप से छात्र की ओर ध्यान देता था और उसके श्रेष्ठ सादे जीवन व उच्च आचरण पर विशेष बल दिया जाता था। यहाँ साहित्यिक, धार्मिक और लौकिक सभी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी जिनमें तीनों वेद और शिल्प-विधाएं प्रधान थीं। व्याकरण, धनुर्विद्या, हस्त-विद्या, मन्त्र-विद्या, शल्य-विद्या और चिकित्सा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। प्रत्येक आचार्य अपना पाठ्यक्रम और शिक्षाकाल निश्चित करने के लिए स्वतन्त्र था। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् छात्रगण शिल्पकलाओं और व्यवसायों का क्रियात्मक अनुशीलन और अध्ययन करने तथा विभिन्न प्रदेशों के रीति-रिवाज, रहन-सहन आदि का ज्ञान प्रापत करने के लिए पर्यटन करते थे।

ईस्वी सन् की प्रारम्भिक सदियों में तक्षशिला शिक्षा के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हो चुका था। भारत के दूरस्थ प्रान्तों और राजगृह, वाराणसी, मिथिला जैसे दूर नगरों से यहाँ विद्यार्थी आते थे। यहाँ भारत से बाहर प्रदेशों के भी अनेक विद्यार्थी अध्ययन हेतु आते थे। यहाँ के विद्यार्थी और स्नातक बनने में वे अपना गौरव मानते थे। चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार करने वाले आचार्य कश्यप मातंग तक्षशिला के विद्यार्थी थे। राजनीति और कूटनीति के महापण्डित विष्णुगुप्त कौटिल्य चाणक्य ने तक्षशिला में ही अध्ययन किया और वे वहीं प्रसिद्ध आचार्य भी बन गये। व्याकरण के महान् प्रसिद्ध पण्डित पाणिनि तक्षशिला में शिक्षक थे। भारत के प्रतापी सम्राटों ने भी तक्षशिला में शिक्षा पायी। इनमें कौशल नरेश प्रसेनजित उल्लेखनीय हैं। यहाँ की आयुर्वेद और चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा विशेष प्रसिद्ध थी। शल्य-चिकित्सा की भी शिक्षा दी

जाती थी। कुमारजीव जैसे प्रख्यात शल्य चिकित्सक (सर्जन) तक्षशिला के ही विद्यार्थी थे। मगध के सम्राट बिम्बिसार के राजवैद्य और गौतम बुद्ध के चिकित्सक जीवक ने तक्षशिला में ही चिकित्साशास्त्र और शल्यशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की थी। ऐसा कहा जाता है कि एक बार चीन के एक राजकुमार को भयानक नेत्र-कष्ट हुआ। जब उसको अपने देश के चिकित्सकों से लाभ नहीं हुआ तो वह तक्षशिला आया और यहाँ अपना इलाज कराने पर वह स्वस्थ होकर चीन लौट गया।

नालन्दा महाविहार विश्वविद्यालय

नालन्दा महाविहार प्राचीन युग में भारत का एक अत्यधिक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था। मूलतः यह एक बौद्ध विहार था, जिसका विकास एक महान् विश्वविद्यालय के रूप में हुआ।

नालन्दा बौद्ध विहार की स्थापना- गुप्त-सम्राटों की राजधानी पाटलिपुत्र के समीप लगभग पैंतीस किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण-पश्चिम में नालन्दा ग्राम में एक छोटा-सा बौद्ध विहार था। गुप्त-सम्राट कुमार गुप्त (सन् 415 से 455) ने यहीं पर बौद्ध धर्म के एक महाविहार की स्थापना की। यहाँ प्रारम्भ में बौद्ध भिक्षु रहते थे और बौद्ध धर्म का अध्ययन-अध्यापन करते थे। कुमारगुप्त के पश्चात् अन्य विद्यानुरागी और उदार गुप्त सम्राटों ने नालन्दा के अन्य बौद्ध विहार और भवन निर्माण किये और उनकी व्यवस्था के लिए आर्थिक अनुदान और ग्राम दान में दिये। भारत के तथा भारत के बाहर अन्य भारतीय उपनिवेशों के धन-सम्पन्न व्यक्तियों ने नालन्दा के इन विहारों और विश्वविद्यालय के लिए अपार निधि प्रदान की थी। इत्सिंग के अनुसार दो सौ से भी अधिक ऐसे ग्राम थे जो नालन्दा विश्वविद्यालय के व्यय के लिए दिये गये थे। सम्राट ने भी अपार धन राशि नालन्दा को दानस्वरूप दी थी।

महाविहार का विश्वविद्यालय में विकास- मूलतः नालन्दा महाविहार की स्थापना बुद्ध की शिक्षा और धर्म के प्रसार के लिए की गयी थी। फलतः यहाँ सहस्रों बौद्ध भिक्षु निवास करते थे और बौद्ध धर्म का अध्ययन-अध्यापन करते थे। उनके लिए नालन्दा भगवान के पवित्र मन्दिर के समान था। धीरे-धीरे बौद्धों के विभिन्न सम्प्रदायों के ग्रन्थों के अनुशीलन के अतिरिक्त विभिन्न धर्मों के शास्त्रों और दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन किया जाने लगा। विभिन्न विषयों पर वाद-विवाद, विचार-गोष्ठियाँ और शास्त्रार्थ होने लगे और बड़े महान् धर्माचार्य और विद्वान पण्डित यहाँ रहने लगे। फलतः कालान्तर में नालन्दा एक महान् विश्वविद्यालय बन गया। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग के वर्णन से विदित होता है कि नालन्दा विश्वविद्यालय में आचार्यों और विद्यार्थियों की संख्या दस सहस्र थी। भारत के समस्त प्रदेशों में उसका आदर था और सर्वत्र उसका अनुसरण किया जाता था। उसका यश-गौरव इतना था कि भारत के विभिन्न प्रदेशों के ही नहीं अपितु लंका, तिब्बत, मंगोलिया, चीन, कोरिया और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के प्रदेशों और दूर-दूर देशों के विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने हेतु आते थे। ह्वेनसांग, इत्सिंग, हिएनचिन, चेहांग आदि चीनी विद्वान नालन्दा में आये और विद्याध्ययन किया था। हिएनचिन जिसका भारतीय नाम प्रकाशमणि था नालन्दा में सातवीं सदी में आया और तीन वर्ष तक रहा। चेहांग भी सातवीं सदी में आया और यहाँ आठ वर्ष तक रहा। हुई न्येह और आर्यवर्मन नामक कोरिया के बौद्ध भिक्षु और विद्वान भी नालन्दा में आये थे और यहीं विद्याध्ययन करते रहे। आर्यवर्मन

का देहावसान नालन्दा में हो गया था। इससे प्रकट होता है कि नालन्दा कालान्तर में एक अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान-मन्दिर और विश्वविद्यालय बन गया था।

नालन्दा के भवन- नालन्दा विश्वविद्यालय के समस्त क्षेत्र के चारों ओर ईंटों की ऊंची दीवार थी। इसमें भव्य प्रवेशद्वार थे। इनके भीतर विश्वविद्यालय के भव्य भवन थे। महाविद्यालयों के आठ भवन थे। इन्हें विभिन्न विद्याप्रेमियों ने निर्मित करवाया था। एक महाविद्यालय भवन सुमात्रा के श्रीविजय साम्राज्य के नरेश बाल पुत्रदेव ने बनवाया था। इन महाविद्यालयों में विशाल ऊंचे स्तम्भों वाले सभाग्रह थे और भवनों पर ऊंची मीनारें थीं। इन महाविद्यालयों के क्षेत्र में एक बहुत ही ऊंची वैधशाला थी। ह्वेनसांग के अनुसार, "इसके ऊपर वाले कक्ष आकाश से भी ऊंचे थे।" महाविद्यालयों के आठ सभागृहों के अतिरिक्त तीन सौ छोटे कमरे और थे जहाँ प्रतिदिन व्याख्यान होते थे। विश्वविद्यालय क्षेत्र में चतुर्दिक बौद्ध आचार्यों, पुरोहितों और प्रचारकों के निवास के लिए चार मन्जिलों वाले भवन थे। इन भवनों में मुलम्मेदार और अलंकृत लालमणि जैसे स्तम्भ थे और छतों में रंगीन टाइलें लगी थीं, जिनमें से प्रकाश बहुरंगों में प्रतिबिम्बित होता था। विद्यार्थियों के निवास के लिए अलग भवन थे जहाँ अध्ययन और निवास की समस्त सुविधाएं उपलब्ध थीं। इस विश्वविद्यालय में लगभग 12 मीटर ऊंचा एक भव्य बौद्ध मन्दिर या केन्द्रीय देवालय था जिसमें लगभग चौबीस मीटर ऊंची विशाल बौद्ध प्रतिमा थी। ह्वेनसांग ने इसे स्वयं देखा था। नालन्दा में एक विशाल पुस्तकालय भी था। इसको धर्मगंग कहते थे। पुस्तकालय के तीन भव्य ऊंचे भवन थे। इनके नाम रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरंजक थे। रत्नोदधि भवन नौ मन्जिल ऊंचा था जिसमें धार्मिक और तान्त्रिक ग्रन्थों का संग्रह था। बौद्ध भिक्षुओं के निवास और अध्ययन हेतु पृथक भवन और कक्ष थे। कुछ कमरे एक ही भिक्षु हेतु और कुछ दो के लिए थे। परन्तु सभी में शयन हेतु एक या दो पाषाण शैय्याएं, दीपक और पुस्तकों हेतु निर्दिष्ट ताक बने हुए थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय के निर्वाह का भार- नालन्दा विश्वविद्यालय में प्रविष्ट होकर, अध्ययन करने वाले छात्रों को शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी। उनके निवास, वस्त्र, चिकित्सा और अध्ययन करने के लिए किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। दस सहस्र विद्यार्थीगण इस प्रकार वहाँ निवास करते और विद्या ग्रहण करते थे। इनके अतिरिक्त पन्द्रह सौ से अधिक आचार्य, शिक्षक और विद्वान भी वहाँ रहते थे। इन सभी के निर्वाह के लिए नालन्दा विश्वविद्यालय को राजाओं, सम्राटों और धन-सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा अतुलनीय सम्पत्ति दान में दी जाती थी। विश्वविद्यालय का खर्च चलाने के लिए राज्य की ओर से भी भूमि प्रदान की गयी थी, इत्सिंग के अनुसार दो सौ से भी अधिक ऐसे ग्राम थे जो नालन्दा के लिए दिये गये थे। इनमें प्राप्त उपज की आय से विश्वविद्यालय का खर्च चलता था। फलतः नालन्दा विश्वविद्यालय के अपने धन और गेहूँ के खेत थे, इसके अपने पशु और गोधन था तथा अपनी दुग्धशालाएं थीं। ह्वेनसांग ने लिखा है-उसने विश्वविद्यालय के लिए पार्श्ववर्ती गाँवों से प्रतिदिन अनेक बैलगाड़ियों में चावल और दुग्धशालाओं से मक्खन और दूध आते हुए देखा है। विद्यार्थियों के भोजन के लिए मुख्यतया चावल दिया जाता था और प्रति मास घी, तेल और अन्य खाद्य पदार्थ भी निश्चित मात्रा में दिये जाते थे। अतिथियों को भी इसी प्रकार निःशुल्क भोजन दिया जाता था।

नालन्दा के विश्वविद्यालय में प्रवेश और कठिन विद्याभ्यास- इस विश्वविद्यालय में प्रवेश पाना दुर्लभ कार्य था। प्रवेश पाने के इच्छुक प्रत्येक विद्यार्थी को प्रवेश-परीक्षा में उत्तीर्ण

होना अनिवार्य था। यह परीक्षा "द्वार पण्डित" द्वारा ली जाती थी। इस परीक्षा में बड़े कठिन प्रश्न पूछे जाते थे। ह्वेनसांग के अनुसार बीस या तीस विद्यार्थी अथवा दस में से दो या तीन विद्यार्थी ही उत्तीर्ण हो पाते थे। प्रवेश-परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए व्याकरण, हेतु-विद्या (न्याय) और अभिधम्म कोष का ज्ञान अनिवार्य था। प्रवेश-परीक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात जो विद्यार्थी विश्वविद्यालय में रहते थे, उन्हें वहाँ अत्यन्त कठिन परिश्रम और अध्ययन करना पड़ता था। प्रवेश पाने के बाद भी कठिन परिश्रम और विद्याध्ययन और दैनिक जीवन के अत्यधिक कठोर नियमों से ऊबकर विद्यार्थी हताश और परास्त हो जाते थे और नालन्दा छोड़ देते थे। परन्तु जो विद्यार्थी धैर्य और साहस से वहाँ रहकर विद्याध्ययन करते थे उनका ज्ञान अत्यधिक विकसित होता था एवं विभिन्न परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर विश्वविद्यालय के बाहर जाने पर उनके ज्ञान और पाण्डित्य का सर्वत्र आदर होता था और उन्हें यह यश-गौरव प्राप्त होता था।

नालन्दा के नियम और व्यवस्था- इस विश्वविद्यालय के नियम और उपनियम अत्यन्त ही कठोर होते थे और उनका अनुकरण और पालन करना सबके लिए अनिवार्य था। विद्यार्थियों को अध्ययन करने के लिए कठोर परिश्रम में संलग्न रहना पड़ता था। सदाचार और नैतिकता के नियमों का उन्हें पूर्ण तत्परता और सच्चाई से पालन करना पड़ता था और उन्हें अनुशासनबद्ध होकर रहना पड़ता था। नालन्दा में जीवन अति व्यस्त होता था। अध्ययन और वाद-विवाद में दिन व्यतीत हो जाते थे। बड़े और छोटे सभी एक-दूसरे को परस्पर पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति में सहयोग और सहायता देते थे। ह्वेनसांग के अनुसार, "विभिन्न नगरों के विद्वान जो वाद-विवाद में शीघ्र यश और ख्याति प्राप्त करना चाहते हैं, अधिक संख्या में यहाँ आते हैं।"

व्यवस्था हेतु नालन्दा विश्वविद्यालय एक संघबद्ध संस्था थी। इसमें सभी महाविद्यालय और विहार भी संघ के समान कार्य करते थे। प्रत्येक के संचालन और व्यवस्था के लिए एक परिषद या कार्यकारिणी होती थी। उसके अधिकार और कर्त्तव्य थे। महाविद्यालय के अधिकारियों के द्वार पण्डित (शिक्षार्थियों की प्रवेश-परीक्षा लेने वाला), धर्मकोश (कुलपति), कर्मदान (उपकुलपति), स्थावर आदि होते थे। प्रत्येक महाविद्यालय और विहार की अपनी मुद्रा या सील होती थी। इन मुद्राओं पर प्रायः "धर्मचक्र" उत्कीर्ण होता था। ऐसी अनेक मुद्राएं उत्खनन में उपलब्ध हुई हैं। एक प्राप्त मुद्रा पर अंकित है-"श्री नालन्दा-महाविहार-आर्य-भिक्षु-संघव्य" अर्थात् प्रतिष्ठित नालन्दा विश्वविद्यालय की संचालन परिषद का। महाविद्यालय की प्राप्त एक अन्य मुद्रा पर अंकित है-"श्री नालन्दा-महाविहार-गुणाकर-बुद्ध-भिक्षुणाम् ।"

नालन्दा के विद्वान और आचार्य- ह्वेनसांग के अनुसार नालन्दा में विद्वानों और आचार्यों की संख्या एक सहस्र थी। ये सभी अपने चरित्र, आचार-विचार, नैतिकता, आदर्श, विद्वत्ता और गुणों में देव तुल्य थे। वे अपने ज्ञान और पाण्डित्य के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध थे, उनका चरित्र उज्ज्वल और निर्दोष था। उनका दैनिक जीवन भारत के प्राचीन ऋषियों के समान था। उनका विदेशों में भी आदर और सम्मान था। यहाँ के कतिपय प्रसिद्ध विद्वान आचार्यों के नाम हैं-नागार्जुन, आर्यदेव, धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभाकर मित्र, अंग, शीलभद्र, वसबंधु, जिनमित्र, भद्रसेन, दिग्नाग, ज्ञानचन्द; शान्तिरक्षित आदि। इनके अतिरिक्त "कई सहस्र अन्य बन्धु भी थे जो समस्त योग्यता और विद्वता के आगार थे और उनमें से सैकड़ों का अत्यधिक सम्मान किया जाता था और वे बहुत प्रसिद्ध थे।" आचार्य शान्तिरक्षित के समग्र नालन्दा विश्वविद्यालय की कीर्ति विश्वव्यापी हो चुकी थी और विश्वविद्यालय के एक अन्य कुलपति शीलभद्र अपने समय

के अद्वितीय विद्वान थे जिनके चरणों पर बड़े-बड़े सम्राट भी नत-मस्तक होते थे। बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए नालन्दा के अनेक विद्वान विश्व के विभिन्न देशों को आया-जाया करते थे। आठवीं सदी के प्रारम्भ में नालन्दा के प्रसिद्ध आचार्य शान्तिरक्षित को तिब्बत के नरेश ने अपने राज्य में बौद्ध धर्म के विकास और प्रचार के लिए आमन्त्रित किया। वहाँ उसका अत्यधिक राजकीय सम्मान हुआ और उसे "आचार्य बोधिसत्व" की उपाधि प्रदान की गयी। शान्तिरक्षित से कुछ समय बाद कमलशील और फिर अविशा, स्थिरमति, बुद्ध कीर्ति नामक आचार्य भी तिब्बत गये। चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के उद्देश्य से नालन्दा से जाने वाले विद्वान और आचार्य थे-कुमारजीव, परमार्थ, सुधारकर सिंह, धर्मदेव आदि।

नालन्दा विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रम- नालन्दा विश्वविद्यालय प्रमुखतया बौद्ध विहार था। इसकी स्थापना बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के अध्ययन और प्रसार के लिए की गयी थी। फलतः इसमें सहस्रों बौद्ध भिक्षु और आचार्य बौद्ध धर्म के अध्ययन-अध्यापन में संलग्न रहते थे और इस हेतु उन्हें समस्त सुविधाएं प्रदान की गयी थीं। परन्तु कालान्तर में यहाँ बौद्ध धर्म के साथ-साथ अन्य धर्मों, दर्शन-प्रणालियों और विभिन्न विषयों का भी अध्ययन-अध्यापन होने लगा। सभी सम्प्रदायों, धर्मों और व्यक्तियों के लिए भी वह खुल गया। यहाँ ज्ञान प्राप्त करने की समस्त सुविधाएं और स्वतन्त्रता थी। नालन्दा कोई धार्मिक, साम्प्रदायिक या वर्गीय महाविद्यालय या विद्यापीठ नहीं थी। एक विशिष्ट सम्प्रदाय या धर्म से उसका सम्बन्ध नहीं था, अपितु यह यथार्थ में एक विश्वविद्यालय था, जिसमें स्नातकोत्तर महाविद्यालय थे, सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य और दर्शन के अतिरिक्त चारों वेदों, गणित, ज्योतिष, तर्कशास्त्र, व्याकरण, सांख्य, योग, न्याय-दर्शन, चिकित्सा-विज्ञान, तन्त्र-मन्त्र, रसायन-विज्ञान-शिल्प आदि विविध विषयों का अध्ययन होता था। गृह, नक्षत्र आदि को देखने और उनका अध्ययन करने के लिए यहाँ एक वेधशाला थी। व्याख्यान, वाद-विवाद, व्यक्तिगत सहायता, निर्देशन आदि के द्वारा शिक्षा दी जाती थी। विवादों और गोष्ठियों में अनेक आचार्य और शिक्षार्थी सम्मिलित होते थे। उनमें परस्पर शास्त्रार्थ भी होता था। ह्वेनसांग ने ऐसे वाद-विवाद, गोष्ठियों और शास्त्रों में स्वयं भाग लिया था और उनका उसने विशद् वर्णन भी किया है। अपने ज्ञान को सम्पूर्ण करने और उसमें वृद्धि करने के लिए अनेक विद्वान् , पण्डित और आचार्य यहाँ आते थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय का अन्त- नालन्दा विश्वविद्यालय भारत का ज्ञान-भण्डार ही नहीं, अपितु विश्व में ज्ञान-विज्ञान का पथ-प्रदर्शक भी हो गया। आठवीं सदी तक उसे अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त हो गया था। ग्यारहवीं सदी तक यह अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय रहा। परन्तु ग्यारहवीं सदी में पालवंशी राजाओं द्वारा विक्रमशिला विश्वविद्यालय को प्रोत्साहन देने से और उसके अत्यधिक विकास से तथा बारहवीं सदी में तुर्कों के भयंकर आक्रमणों और अमानुषिक प्रहारों से यह विश्वविद्यालय नष्ट-भ्रष्ट हो गया। नालन्दा विश्वविद्यालय का ह्रास बौद्ध धर्म के पतन से जुड़ा हुआ है।

वलभी

सौराष्ट्र में वलभी या वलभीपुरम सन् 475 से 775 तक मैत्रक राजाओं की राजधानी था। मैत्रक नरेशों ने गुजरात और सौराष्ट्र में शासन किया था। प्राचीन भारत में वलभी वाणिज्य-व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था। वहाँ कई धन-सम्पन्न व्यापारी निवास करते थे। वे वलभी में शैक्षणिक संस्थाओं को उदारता और मुक्तहस्त से दान देते थे। परन्तु मैत्रक नरेशों ने ही

शैक्षणिक संस्थाओं को विपुलता से दान दिये और उदारता से सुख-सुविधाएं प्रदान कीं। मैत्रक नरेश ध्रुव प्रथम की बहिन की पुत्री दुद्दा ने वलभी में प्रथम बौद्ध विहार स्थापित किया। आचार्य भदन्त स्थिरमति नामक एक महान् विद्वान बौद्ध आचार्य ने वलभी में दूसरा प्रसिद्ध बौद्ध विहार स्थापित किया और राजा धरसेन प्रथम ने इस विहार को प्रचुर दान दिया था। महान् प्रकाण्ड बौद्ध विद्वान गुणमती व स्थिरमती इस विहार में रहे और बौद्ध धर्म पर प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे। धीरे-धीरे वलभी में अन्य बौद्ध विहार स्थापित किये गये। जब ह्वेनसांग वलभी गया था, तब उसने वहाँ सैंकड़ों संघाराम देखे थे और उनमें लगभग 6000 बौद्ध-भिक्षु निवास करते थे। चीनी यात्री इत्सिंग भी वलभी गया था।

सातवीं शताब्दी में वलभी एक श्रेष्ठ विश्वविद्यालय के रूप में अधिक लोकप्रिय हो गया था। यह नालन्दा के समान ही प्रसिद्ध था। छठी सदी से बारहवीं सदी तक पश्चिमी भारत में वलभी शिक्षा का महान् और लोकप्रिय केन्द्र रहा। यदि नालन्दा की विशिष्टता महायान बौद्ध धर्म की श्रेष्ठतम शिक्षा प्रदान करना था तो वलभी में हीनयान बौद्ध धर्म की उच्चतम शिक्षा का विशिष्टीकरण था। वलभी में धार्मिक विषयों के अतिरिक्त, अर्थशास्त्र और उससे सम्बन्धित विषयों का, नीति (कानून) और धर्म का तथा चिकित्साशास्त्र जैसे लौकिक और व्यावहारिक विषयों का अध्यापन होता था। एक बहुमंजिले विहार में वलभी विश्वविद्यालय का विशाल पुस्तकालय था। इसके लिए ग्रन्थों के क्रय के लिए तत्काल ही राजकीय अनुदान और धन उपलब्ध था।

अनेक विद्यार्थी अपनी उच्च शिक्षा पूर्ण करने के लिए नालन्दा के समान वलभी में भी निवास करते थे। इस विश्वविद्यालय को राजाओं के प्रचुर दान से पूर्ण सहायता प्राप्त होती थी। कई बार समूचे भारतवर्ष के विद्वान विवादग्रस्त तथा सम्भव और असम्भव सिद्धान्तों पर वाद-विवाद और विचार-विनिमय करने के लिए वलभी में एकत्रित हुए थे। यहाँ के आचार्यगण अपने पाण्डित्य और विद्वत्ता के लिए समस्त देश में प्रख्यात थे और इसलिए देश के दूर-दूर के प्रदेशों से छात्र यहाँ अध्ययन के लिए आते थे। उच्चतम या स्नातक स्तर के समकक्ष शिक्षा ग्रहण करने के बाद विद्यार्थी अपने को राजसभाओं में विद्वानों की मण्डली के सम्मुख प्रस्तुत करते थे और यहाँ अपने ज्ञान, सिद्धान्तों, तर्कों के द्वारा अपनी प्रतिभा और योग्यता तथा दक्षता अभिव्यक्त करते थे। ऐसे प्रयासों में सफल शिक्षित व्यक्तियों को राजकीय सेवाओं में श्रेष्ठ ऊंचे उत्तरदायी पदों पर नियुक्त करते थे। इससे यह प्रगट होता है कि वलभी केवल धार्मिक शिक्षा का ही नहीं, अपितु लौकिक और व्यवसायोन्मुख शिक्षा का भी केन्द्र था।

विक्रमशिला

बिहार में भागलपुर से चौबीस मील दूर पत्थरघाटा स्थान पर पालवंश के नरेशों ने आठवीं शताब्दी में विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना की। यह अन्य विश्वविद्यालयों की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित था। चार शताब्दियों तक यह भारत का प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र रहा। इस विश्वविद्यालय के चतुर्दिक चार प्रवेशद्वार थे और प्रत्येक पर प्रवेशार्थी विद्यार्थियों की परीक्षा हेतु एक विद्वान पण्डित रहता था। यहाँ भारतीय विद्यार्थियों के साथ-साथ अन्य विदेशी छात्र भी विद्याध्ययन करते थे। उनके निवास, भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था विश्वविद्यालय की ओर से होती थी। विदेशी विद्यार्थियों के लिए अनेक सुविधाएं और साधन थे। इस विश्वविद्यालय का तिब्बत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण यहाँ तिब्बती विद्यार्थियों के लिए धर्मशाला की विशेष व्यवस्था थी। यहाँ के अनेक विद्वान आचार्य तिब्बत गये थे और

उन्होंने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद तिब्बत की भाषा में किया। इस विश्वविद्यालय में रत्नवज्र, कृष्णसमरवज्र, लीलावज्र तथा गतरक्षित, दीपंकर श्रीज्ञान, बौधिभद्र, कमलरक्षित और नरेश श्रीज्ञान जैसे धुरन्धर आचार्य थे।इनमें दीपंकर, श्रीज्ञान विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्होंने लगभग दो सौ पुस्तकें लिखीं एवं अनुवाद भी किया। इस विश्वविद्यालय में एक विशाल पुस्तकालय, सहस्रों तान्त्रिक देवालय एवं मध्य में बोधिसत्व की भव्य प्रतिमा थी। यहाँ धर्म, साहित्य, व्याकरण, न्याय दर्शन एवं तन्त्र-मंत्र शास्त्र का विशेष अध्ययन होता था। शिक्षा समाप्त हो जाने पर यहाँ पाल नरेश द्वारा उपाधियाँ और पदवियाँ प्रदान की जाती थीं। मध्य-युग में विक्रमशिला महाविहार बौद्धों के वज्रयान सम्प्रदाय के अध्ययन का सबसे प्रामाणिक केन्द्र और तन्त्रवाद का महत्वपूर्ण स्थान था। सन् 1203 में विजयमदान्ध मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने इस विश्वविद्यालय को दुर्ग समझकर आक्रमण किया और बर्बरता से इसका विध्वंस कर दिया।

ओन्दन्तपुरी

ओन्दन्तपुरी में एक बौद्ध विहार स्थापित किया गया था और धीरे-धीरे यह छोटे विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हो गया। पाल नरेशों के अभ्युदय और उत्कर्ष के पूर्व ही यह उच्चतम शिक्षा का प्रसिद्ध और लोकप्रिय केन्द्र बन चुका था। यहाँ के प्राचार्यों की विद्वत्ता और धर्मनिष्ठा से प्रभावित होकर पाल नरेशों ने वहाँ के विश्वविद्यालय को प्रचुरता से दान दिये और राजकीय व्यय से यहाँ एक विशाल पुस्तकालय भी स्थापित किया। इस ग्रन्थालय में ब्राह्मण और बौद्ध धर्म के अनेक बहुचर्चित और दुर्लभ ग्रन्थों का श्रेष्ठ संग्रह था परन्तु नालन्दा और विक्रमशिला के समान ओन्दन्तपुरी का उच्चतम श्रेष्ठ शिक्षा केन्द्र के रूप में विकास नहीं हो सका। फिर भी यहाँ लगभग एक सहस्र बौद्ध भिक्षु रहते थे। यहाँ का प्रसिद्ध और प्रकाण्ड विद्वान प्रभाकर था। ओन्दन्तपुरी ने अध्यापन और अनुशीलन से बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का खूब प्रचार किया। यहाँ तिब्बत के विद्यार्थी अधिक आकर्षित होते थे। सम्भवतया यहाँ वज्रयान और उसके बाद के सम्प्रदाय कालचक्रयान का विशेष रूप से अध्यापन और प्रचार होता था। ओन्दन्तपुरी ने तिब्बत में बौद्ध विहारों के निर्माण की प्रेरणा दी और सन् 749 में तिब्बत में जो प्रथम बौद्ध विहार निर्मित किया गया था वह स्वरूप और आकार-प्रकार में ओन्दन्तपुरी के प्रमुख विहार के समान ही था।

कश्मीर

ग्यारहवीं सदी में विदेशी यात्री अलबरुनी ने कश्मीर को शिक्षा का बड़ा केन्द्र बताया है। दूर-दूर देशों के विद्यार्थी यहाँ साहित्य और वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ के पण्डित और आचार्यगण अपने अलग-अलग अध्यापन केन्द्र चलाते थे। नालन्दा या विक्रमशिला जैसा कोई सुसंगठित या सुव्यवस्थित विश्वविद्यालय यहाँ नहीं था।

उपर्युक्त वर्णित विश्वविद्यालयों और महाविहारों के अतिरिक्त वाराणसी, नवद्वीप (नदिया, बंगाल में), वलभी, (सौराष्ट्र में), धारा (मालवा में), कन्नौज, उज्जैन आदि नगर भी शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। सुदूर दक्षिण भारत में मदुरा में विद्वानों, कवियों, लेखकों और आचार्यों की संघम नामक एक प्रसिद्ध संख्या थी जिसे राज्याश्रय और राज्य संरक्षण प्राप्त था। इसमें तमिल साहित्य के अनेक कवि, लेखक और आचार्य सदस्य होते थे। ये लेखन, काव्य, अध्ययन-अध्यापन आदि के कार्यों को प्रोत्साहित करते थे। धारा (आधुनिक धार) नगर में भी शारदा सदन नामक प्रख्यात

महाविद्यालय था जहाँ विद्वानों, कवियों और लेखकों का जमघट होता था और अध्ययन-अध्यापन कार्यों को प्रेरणा प्राप्त होती थी। इसके अतिरिक्त इस युग में अनेक राजा तथा सम्राट शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के प्रोत्साहन और प्रसार में आर्थिक अनुदान, छात्रवृत्तियाँ और दान देते थे।

प्रश्न 4 भारतीय धर्म और संस्कृति के विदेशों में प्रभाव पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- समुद्र पार अन्य देशों में भारत द्वारा स्थापित साम्राज्य पवित्रता और आध्यात्मिक शक्ति से विजित हुआ था जिसका मुख्य सिद्धान्त धर्म और सत्य था। पश्चिमी देशों के आधुनिक साम्राज्यों से प्राचीन भारत के औपनिवेशिक साम्राज्य भिन्न थे। भारतीयों ने मध्य एशिया और दक्षिणी-पूर्वी एशिया में उपनिवेश स्थापित किये थे, परन्तु इन उपनिवेशों को भारतीयों ने अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या बसाने के लिए उपयुक्त स्थान नहीं समझा और न इनको अपने परिवर्द्धित वाणिज्य-व्यापार के लिए उपयोगी बाजार ही माना। ये उपनिवेश उनके भारतीय संस्थापकों और विजेताओ के लिए शोषण के साधन नहीं माने जाते थे। जहाँ कहीं भी विदेशों में भारतीय गये और अस्थायी रूप से बस गये, वहाँ उन्होंने स्थायी मौलिक तत्त्वों के साथ अपनी भारतीय संस्कृति का मिश्रण कर एक नवीन संस्कृति का विकास किया, जिस पर भारतीयता की गहन छाप थी। इसके अतिरिक्त ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ है जिससे यह स्पष्ट हो जाये कि भारतीय राज्यों को भारतीय सीमाओं से पार इस विस्तृत साम्राज्य से राजनीतिक लाभ हुआ हो। वह भी शंकास्पद है कि औपनिवेशिक सत्ताएं भारत की राजनीतिक सत्ताओं और नरेशों से नियमित सम्पर्क रखती थीं। समुद्र पार स्थापित हिन्दू साम्राज्य का सबसे अधिक महत्वशाली प्रभाव दूरस्थ प्रदेशों में हिन्दू संस्कृति और सभ्यता का प्रसार था। अब इस प्रसार का विशद विवेचन किया जायेगा।

लंका- भारतीय अनुभूति के अनुसार लंका में सर्वप्रथम भारतीय संस्कृति का सन्देश अयोध्या के राजा श्री रामचन्द्रजी ले गये थे। भारत और लंका के सम्बन्ध रामायण काल से प्रारम्भ होते हैं, जब श्रीराम ने रावण के कारागृह से सीता को मुक्त करने के लिए लंका पर आक्रमण किया परन्तु ऐतिहासिक परम्पराओं के अनुसार लंका के साथ भारत का सम्बन्ध ईसा पूर्व छठी सदी से माना जाता है। कुछ ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख है कि काठियावाड़ के राजा विजय ने ईसा पूर्व 500 वर्ष के लगभग लंका को विजय किया और यहाँ भारतीय उपनिवेश स्थापित किया। अपने पिता सिंह के नाम पर उसने इसे 'सिंहलद्वीप' घोषित किया और इसकी भाषा को 'सिंहली' भाषा। इसके बाद से बंगाल, गुजरात और सौराष्ट्र से भ्रमण करने वालों की बाढ़ लंका में उमड़ पड़ी। कालान्तर में वहाँ उत्तरी भारत के आर्यों के वंशज और दक्षिण भारत के तमिल या द्रविड़ लोग स्थायी रूप से बस गये। इनके साथ-साथ भारतीय भाषा, ललितकलाएं और शिल्प-व्यवसाय भी प्रचलित हो गये। ईसा पूर्व तीसरी सदी के मध्य में मौर्य सम्राट अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को लंका में बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ भेजा। फलतः लंका के नरेश तिस्स ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। इसके बाद लंका में बौद्ध धर्म का अधिक विकास हुआ। बौद्ध धर्म के स्मारक-चिन्ह लंका में चले गये। वहाँ महेन्द्र ने गया के बोधिवृक्ष की शाखा अनुराधापुर के एक विहार में रोप दी और आज इससे फलाफूला बोधिवृक्ष वहाँ विद्यमान है। लंका में बौद्ध स्तूपों और विहारों का निर्माण किया गया और चट्टानों पर धार्मिक उपदेश उत्कीर्ण किये गये। धीरे-धीरे समस्त लंका में बौद्ध मत फैल गया। लंका के नरेशों के राज्याश्रय में बौद्ध धर्म लंका का राष्ट्रीय धर्म हो गया और ब्राह्मी लिपि तथा पाली भाषा वहाँ प्रचलित हो गयी। बौद्ध धर्म

के सबसे प्राचीन स्थविर सम्प्रदाय के त्रिपिटिक का पाली संस्करण लंका में ही रचा गया। बौद्ध धर्म के साथ-साथ लंका में भारतीय शिल्पकला और मूर्तिकला का भी अधिक प्रसार हुआ। सुदीर्घकाल तक लंका निवासी भारतीय संस्कृति के प्रभाव में रहे। उनके धर्म, भाषा, साहित्य, कला आदि पर भारतीय संस्कृति की गहन छाप है।

तिब्बत- यदि दक्षिण में लंका भारत में सबसे निकट है तो उत्तर में तिब्बत और नेपाल हैं। अतः दोनों ही भारत की सभ्यता व संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। प्राचीनकाल में भारत से चीन जाने का एक थलमार्ग तिब्बत से होकर जाता था। इसी मार्ग से व्यापार भी होता था। फलतः भारत की व्यापारिक वस्तुओं के साथ-साथ भारतीय भाषा, साहित्य, संस्कृति और धर्म तिब्बत में प्रसारित हुए। छठी सदी के बाद तिब्बत और भारत के धार्मिक और सांस्कृतिक सम्पर्क अधिक दृढ़ हो गये। छठी सदी के अन्त में तिब्बत के एक सामन्त ग्नाम-रि-श्रान-सान ने एक दृढ़ राज्य स्थापित किया। उनका पुत्र श्रान-सान-गम्पो सातवीं सदी के पूर्वार्द्ध में तिब्बत का प्रतापी नरेश हुआ। उसने चीनी और नेपाली राजकुमारियों से विवाह किया। दोनों ही धर्मनिष्ठ बौद्ध थीं। उन्होंने अपने प्रभाव से श्रान-सान-गम्पो राजा को बौद्ध बना लिया। फलतः उसने तिब्बत में बौद्ध धर्म को राजधर्म बना दिया। उसने तिब्बत में अनेक बौद्ध विहार और मन्दिर निर्मित किये तथा अनेक बौद्ध ग्रन्थों का तिब्बती भाषा में अनुवाद करवाया। उसने भारतीय वर्णमाला और लिपि सीखने के लिए अपने मन्त्रियों को भारत में दो बार भेजा था। अन्त में, उसने तिब्बत में भारतीय संस्कृत भाषा व लिपि भी बौद्ध धर्म के साथ-साथ प्रसारित की। इससे तिब्बत में भारतीय सभ्यता के प्रवेश के लिए मार्ग सुलभ हो गया और बौद्ध धर्म-प्रचारकों का प्रथम दल तिब्बत में सन् 640 में पहुँचा। इसके बाद सन् 747 में कश्मीर के आचार्य पद्मसम्भव ने तिब्बत में प्रवेश कर तन्त्रपाद से ओतप्रोत महायान बौद्ध धर्म का प्रचार किया जो आगे चलकर लामामत में परिवर्तित हो गया।

तिब्बत का एक नरेश खी-स्रान-दे-सान जिसने सन् 755 से 797 तक राज्य किया, तिब्बत में महायान धर्म का महान् उदार आश्रयदाता था। उसने बौद्ध धर्म को तिब्बत का राजधर्म घोषित कर दिया और इसके अत्यधिक विकास और प्रसार के लिए नालन्दा विश्वविद्यालय के तत्कालीन प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु तथा विद्वान शान्तरक्षित को तिब्बत में आमन्त्रित किया। राजा ने शान्तरक्षित को तिब्बत का प्रधान धर्माधिकारी और महापुरोहित नियुक्त किया और अपनी राजधानी लासा से लगभग 55 किलोमीटर दूर सम-ये नामक एक बौद्ध विहार निर्मित किया। शान्तरक्षित ने अनेक तिब्बतियों को बौद्ध भिक्षु बनाया और लामावंश की स्थापना की। शान्तरक्षित को उसके धर्म-प्रचार के कार्य में प्रसिद्ध आचार्य पद्मसम्भव से अत्यधिक सहयोग और सहायता प्राप्त हुई। इसके बाद बहुसंख्या में तिब्बत के बौद्ध भारत में आये और बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का अध्ययन किया। इसी बीच तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए चीन से बौद्ध प्रचारकों का एक मण्डल आया। उसने भारतीय बौद्ध धर्म के विपरीत अन्य बौद्ध सिद्धान्तों का प्रचार प्रारम्भ किया। इस पर तिब्बत के तत्कालीन नरेश ने मगध से प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान कमलशील को तिब्बत में आमन्त्रित किया। कमल ने अपनी विद्वत्ता से इस चीनी बौद्ध प्रचार मण्डल को प्रभावित कर तिब्बत से भगा दिया। इस पर राजा ने प्रसन्न होकर कमलशील को बौद्ध धर्म की तत्त्व-दर्शनशाखा का प्रमुख नियुक्त कर दिया। इसके बाद धर्मकीर्ति, विमलमित्र, बुद्धगुप्त और शान्तिगर्भ नामक भारतीय बौद्ध विद्वान तिब्बत में गये और उन्होंने वहाँ के विभिन्न

प्रदेशों में बौद्ध धर्म प्रसारित किया। उन्होंने बौद्ध तन्त्रवाद को प्रचलित किया और अध्यात्मविद्या की शिक्षा दी।

खी-स्रान-दे-सान के उत्तराधिकारियों ने बौद्ध धर्म के ग्रन्थों को तिब्बती भाषा में अनुवाद करवाने, बौद्ध विहार और मन्दिर निर्माण करवाने और भारत में बौद्ध विद्वानों और आचार्यों को आमन्त्रित करने की नीति बनाये रखी। नवीं सदी के प्रारम्भ में रत्पचन नामक तिब्बती सम्राट ने अनेक विद्वान बौद्ध भिक्षुओं को नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों से तिब्बत में आमन्त्रित किया और अनेक तिब्बती बौद्धों को इन विश्वविद्यालयों में बौद्ध धर्म के अध्ययन हेतु भेजा।

बौद्ध धर्म का अधिक विकास और प्रचार करने के लिए तिब्बत के सम्राट के अत्यधिक अनुग्रह पर सन् 1028 में विक्रमशिला विश्वविद्यालय के प्रचान आचार्य अतिषया दीपंकर श्रीज्ञान तिब्बत गये। वहाँ उन्होंने तिब्बत के विभिन्न भागों में तेरह वर्ष तक भ्रमण करके वज्रयान बौद्ध धर्म का प्रचार किया, बौद्ध धर्म में सुधार किये और लगभग दो सौ ग्रन्थ लिखे। सन् 1053 में 75 वर्ष की आयु में लासा में इनका देहावसान हो गया।

ग्यारहवीं सदी में तिब्बत के नरेशों और बंगाल के पाल नरेशों के परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध थे। इसलिए पाल नरेशों ने तिब्बत में बौद्ध धर्म के सुधार हेतु सहायता दी। तिब्बत के बौद्ध भिक्षु और विद्वान नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालय में अध्ययन हेतु आने लगे और अनेक भारतीय बौद्ध भिक्षु तिब्बत जाने लगे। वहाँ उन्होंने बौद्ध धर्म का प्रचार किया। पाल-युग में इन दोनों विश्वविद्यालयों के साथ तिब्बत का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। बौद्ध धर्म के संस्कृत भाषा के सैकड़ों धर्म-ग्रन्थों के अनुवाद तिब्बती भाषा में किये गये जिनमें से दो बड़े संग्रह तांजूर और कांजूर आज भी विद्यमान हैं। बौद्ध धर्म के अनेक संस्कृत के ग्रन्थ लुप्त हो गये होते यदि उनके तिब्बत भाषा के अनुवादों को उपलब्ध करके उन्हें सुरक्षित न किया होता।

इस प्रकार कई भारतीय विद्वानों द्वारा तिब्बत में बौद्ध धर्म और संस्कृत भाषा का प्रसार किया गया। इससे वहाँ की कला भी भारतीय कला से प्रभावित हुई; क्योंकि इस युग में कला धर्म की चेरी रही। अनेक बौद्ध प्रतिमाएं भारतीय नमूनों पर तिब्बत में निर्मित की गयीं। महायान सम्प्रदाय के विविध देवी-देवताओं की रत्न-जड़ित ताँबे की मुलम्मेदार मूर्तियाँ बनाने में तिब्बत की मूर्तिकला श्रेष्ठ है। इस प्रकार तिब्बत की भाषा, लिपि, व्याकरण, साहित्य, कला और धर्म भारत से प्रसारित बौद्ध धर्म के प्रमाण थे। वास्तव में असभ्य और बर्बर तिब्बतियों को सभ्यता और संस्कृति की शिक्षा देने में भारत का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

नेपाल- भारत की उत्तरी सीमा पर नेपाल देश स्थित है। यह देश हिमालय की दक्षिण भूमि पर पश्चिम में उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा जिले से पूर्व में दार्जिलिंग की पर्वतमालाओं तक फैला हुआ है। ईसा पूर्व तीसरी सदी से मौर्य सम्राट अशोक ने इस देश पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। नेपाली अनुश्रुतियों के अनुसार अशोक अपनी पुत्री चारुमती और दामाद देवपाल खत्तिय या क्षत्रिय के साथ नेपाल गया था। उसने वहाँ बौद्ध धर्म का प्रसार किया, और अनेक बौद्ध विहार और स्तूप निर्माण किये। मौर्य साम्राज्य के क्षीण होने पर नेपाल एक स्वतन्त्र राज्य हो गया परन्तु गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त ने नेपाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था और नेपाल प्रतिवर्ष गुप्त सम्राट को नियमित कर देता था। ईसा की छठी सदी के अन्त और सातवीं के पूर्वार्द्ध में नेपाल में लिच्छवि वंश का राज्य प्रतिष्ठित हो गया था। इसके बाद नेपाल में राजनीतिक उतार-चढ़ाव रहे। मध्य-युग में मुसलमानों के आक्रमणों से भयभीत होकर अनेक

ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने नेपाल में सुरक्षा के लिए शरण ली। वे अपने साथ नेपाल में भारतीय साहित्य, लिपि, धर्म, संस्कृति और कला ले गये। भारतीय क्षत्रियों की एक शाखा ने गुरखों के नाम से अठारहवीं सदी में नेपाल को विजय करके वहाँ अपनी प्रभुता स्थापित कर ली। इन्होंने नेपाल में ब्राह्मण धर्म का प्रसार किया। इसके पूर्व वहाँ हीनयान, महायान और वज्रयान या तान्त्रिक बौद्ध धर्म प्रचलित थे। कालान्तर में वहाँ भारतीय बौद्ध धर्म का तीव्रता से पतन हो गया और धीरे-धीरे हिन्दू धर्म का अत्यधिक प्रसार हुआ। आज भी नेपाल में हिन्दू धर्म अधिक प्रचलित है।

धर्म के समान नेपाल की भाषा, साहित्य, ललितकलाएं और सामाजिक प्रथाएं गहरे भारतीय प्रभाव को प्रकट करती हैं। वहाँ भारतीय ढंग के अनेक बौद्ध स्तूप, सैकड़ों मन्दिर और विविध तीर्थस्थान विद्यमान हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध मन्दिर काठमांडू में पशुपतिनाथ का मन्दिर है। यहाँ शिव की पूजा होती है। नेपाल के मन्दिर की शिल्पकला भारतीय मन्दिरों की कला के समान है। वहाँ भी भारत के समान पाषाण के विशाल शिखर वाले मन्दिर हैं। इनके अतिरिक्त पगोडा आकार के लकड़ी के बने हुए अनेक मन्दिर भी हैं जिनकी छतें ताँबे की बनी हुई हैं। मध्य-युग में बंगाल के पाल नरेशों की कला नेपाल में प्रविष्ट हो गयी और वहाँ की कला को प्रभावित किया। नेपाल की सामाजिक व्यवस्था भी भारतीय सामाजिक व्यवस्था से प्रभावित हुई है। भारतीय जाति-व्यवस्था का आभास नेपाली समाज में दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार हिन्दू संस्कृति ने नेपाल को अपने प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत ले लिया था।

अफगानिस्तान- भारतीय इतिहास के प्रारम्भिक युग में अफगानिस्तान भारत का ही एक अंग था। वह मौर्य और कुषाण राज्यों के अन्तर्गत था। इस क्षेत्र में प्राचीन काल में कम्बोज और गान्धार राज्य थे। कम्बोज राज्य में हिन्दुकुश पर्वत से परे पामीर के पर्वतीय प्रदेश और बदख्शां के प्रदेश थे। गान्धार राज्य में सिन्धु नदी के पूर्वी और पश्चिमी तट के प्रदेश थे जिनकी राजधानी क्रमशः तक्षशिला और पुष्करावती थी। गान्धार और कम्बोज से आगे वाल्हीक या बल्ख या बेक्ट्रिया का प्रदेश था। भारतीयों ने गान्धार, कम्बोज और बल्ख पर अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया था। राजनीतिक सम्बन्ध के अतिरिक्त भारतीयों ने इन देशों से अपने व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध भी बढ़ा लिये थे। मौर्य-युग से गुप्त-काल तक ये सम्बन्ध अधिकाधिक घनिष्ठ होते गये। इससे यहाँ भारतीय धर्म और साहित्य का प्रचार हुआ। ईसा पूर्व की सदियों में यहाँ की भाषा खरोष्ठी थी जो भारतीय संस्कृत से प्रभावित थी। गुप्त-काल में यहाँ ब्राह्मी लिपि और संस्कृत भाषा का अधिक प्रसार हुआ। यहाँ के विद्वान और भिक्षु संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन करते थे। अशोक के शासनकाल में और उसके बाद यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। अनेक बौद्ध स्तूप, चैत्य और विहार निर्माण किये गये तथा कई बुद्ध प्रतिमाएं प्रतिष्ठित की गयीं। चीनी यात्री फाहियान उन प्रदेशों में भ्रमण करता हुआ भारत आया था। उसके कथनानुसार इन प्रदेशों के निवासी धर्म और संस्कृति में भारतीयों के समीप हैं। फलतः अफगानिस्तान में बर्मियन और रुद्दा प्राचीन भारतीय संस्कृति के महत्त्वशाली केन्द्र थे। अफगानिस्तान में खोज और उत्खनन के पश्चात् भारतीय संस्कृति और धर्म के अवशेष चिन्ह जैसे स्तूप, विहार, मूर्तियाँ, प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ आदि उपलब्ध हुए हैं। जिस युग में फाहियान और ह्वेनसांग इन प्रदेशों में होते हुए भारत आये थे तब यहाँ बौद्ध धर्म प्रचलित था और मध्य-युग

में सुबुक्तगीन के आक्रमण के पूर्व काबुल घाटी में हिन्दू धर्म प्रचलित था। अलबरुनी के कथनानुसार ईरान, खुरासान, सीरिया, इराक आदि देशों में इस्लाम के पूर्व बौद्ध धर्म था।

मध्य-एशिया के राज्य और भारतीय धर्म संस्कृति

प्राचीन युग में मध्य-एशिया में निम्नलिखित राज्य मुख्य थे-

1. *शैल देश (काशगर),*
2. *चौक्कुक (यारकन्द),*
3. *खोतन्न या खोतान,*
4. *चल्कद (शान-शान),*
5. *भरुक (पोलुकिया),*
6. *कुचौ या कुचर,*
7. *अग्निदेश या करासहर, और*
8. *कोचांग या तुर्फान।*

इन राज्यों में ईसा पूर्व तीसरी सदी से भारतीय धर्म और संस्कृति का प्रचार हुआ। य-एशिया के क्षेत्र की संस्कृति भारतीय संस्कृति की प्रतिछाया कही जा सकती है। मौर्य ाज्य के विस्तार, अशोक के व्यापक धर्म-प्रचार और मध्य-एशिया के प्रदेशों पर कुषाण राजाओं प्रभुत्व ने भारत को मध्य एशिया के घनिष्ठ सम्पर्क में ला दिया। मध्य-एशिया के राज्यों से तीयों के व्यापारिक सम्बन्धों से, बौद्ध धर्मदूतों के सक्रिय प्रसार से, और कुषाणों के राजनीतिक ाव के परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति और सभ्यता उत्तर-पूर्व में मंगोलिया और तुर्किस्तान तक पहुँच गयी और कैस्पियन सागर तथा चीन की दीवार के मध्य के विस्तृत क्षेत्र में फैल गयी। इस क्षेत्र में बहुसंख्यक भारतीय बस गये और उन्होंने अपने उपनिवेश स्थापित कर दिये।

मध्य-एशिया के क्षेत्र में सर आरिल स्टेन के पुरातत्त्व सम्बन्धी अन्वेषणों ने ऐसे अनेक नगरों के भग्नावशेषों को प्रकाश में ला दिया है जिनमें दो सहस्र वर्ष पूर्व भारतीय निवास करते थे। अनेक बौद्ध स्तूप और विहार, बुद्ध, गणेश, कुबेर तथा अन्य ब्राह्मण देवताओं की मूर्तियाँ, भारतीय गाथाओं के सिक्के, भारतीय भाषा और लिपि में उत्कीर्ण लेख और ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ, चित्र आदि उत्खनन में उपलब्ध हुए हैं। हस्तलिखित ग्रन्थों में कनिष्क की राजसभा के कवि अश्वघोष के कतिपय नाटकों की दूसरी सदी में लिखी हुई पाण्डुलिपियाँ एवं चिकित्सा-विज्ञान के कुछ ग्रन्थ हैं। ये सब मध्य एशिया में बौद्ध और हिन्दू धर्म के व्यापक प्रचलन, संस्कृत भाषा और लिपि का उपयोग, गान्धार कला शैली का प्रसार, बौद्ध कन्दराओं के भित्तिचित्र और तक्षणकला में भारतीय शिल्पकला का गहन प्रभाव प्रकट करते हैं। मध्य एशिया की कला प्रथम गान्धार कला शैली से और बाद में गुप्तकालीन कला से प्रेरित हुई थी।

मध्य एशिया के अधोलिखित राज्यों में भारतीय संस्कृति का खूब प्रसार हुआ-

काशगर- कनिष्क के साम्राज्य का यह अंग था और कुषाणकाल से ही यहाँ बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति का प्रसार बढ़ता गया। चीनी यात्री फाहियान और ह्वेनसांग दोनों ने यहाँ बौद्ध धर्म की समृद्धि को देखा था। यहाँ के राजा और प्रजा दोनों ही महायान सम्प्रदाय के अनुयायी थे। काशगर में एक प्रसिद्ध बौद्ध विहार था जिसमें एक सहस्र भिक्षु निवास करते थे। यहाँ नगर में पंचवर्षीय बौद्ध महोत्सव भी मनाया जाता था।

खोतान- भारतीय, तिब्बती और खोतानी परम्पराओं से प्रकट होता है कि भारतीयों ने खोतान तक दिग्विजय करके वहाँ अपना राज्य स्थापित किया था और अपना उपनिवेश भी बना लिया था। गुप्त-काल में खोतान का उपनिवेश बहुत ही समृद्ध दशा में था। तीसरी सदी के प्रारम्भ में खोतान का राजा विजयसम्भव था। विजयसम्भव के उत्तराधिकारियों में विजयवीर्य नामक प्रसिद्ध राजा हुआ। विजयसम्भव का गुरु आचार्य बैरोचन था और विजयवीर्य का गुरु भारतीय भिक्षु बुद्धदूत था। खोतान के राजाओं के नाम के साथ 'विजय' शब्द लगा हुआ है। वहाँ के राजाओं और उनके गुरुओं के नाम पूर्ण रूप से हिन्दू हैं। इन राजाओं के सिक्कों, अभिलेखों और पाण्डुलिपियों से विदित होता है कि तीसरी सदी के मध्य तक प्रशासन के कार्यों में भारतीय लिपि और भाषा का उपयोग होता था। राज्य के अधिकारियों के नाम पूर्णतया भारतीय थे, जैसे बंगसेन, नन्दसेन, भीम, लेखहारक, दूत, राजद्वार, पुर स्थित आदि। खोतान नगर से 21 किलोमीटर दूर मासी मजार में, नीया और लौन् लन् में काष्ट पट्टिकाओं पर खरोष्ठी लिपि में उत्कीर्ण लेख उत्खनन में प्राप्त हुए हैं। नीया में चमड़े पर खरोष्ठी लिपि में लिखे गये कुछ पत्र भी मिले हैं। ये लेख और पत्र प्रशासन से सम्बन्ध रखते हैं और ईसा पूर्व दूसरी व तीसरी सदी के हैं।

खोतान के राजाओं और जनता ने बौद्ध धर्म अपना लिया था। वहाँ के एक राजा विजयवीर्य ने अनेक बौद्ध विहारों और स्तूपों का निर्माण किया। योत्खन रावक, दण्डन उलिक और नीया में उत्खनन में बौद्ध विहारों और चैत्यों के अनेक भग्नावशेष और बौद्ध प्रतिमाओं के अवशेष तथा अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ और चित्र उपलब्ध हुए हैं। ईस्वी सन् की तीसरी सदी में खोतान बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र हो गया था। चौथी सदी में फाहियान भारत आते समय खोतान प्रदेश में होता हुआ आया था। उसने तत्कालीन खोतान का वर्णन किया है। उसके कथन के अनुसार खोतान के राजागण और निवासी बौद्ध मतावलम्बी थे। लोगों के निवासगृहों के सम्मुख बौद्ध स्तूप बनाये जाते थे जो ऊंचाई में लगभग 6 मीटर से कम नहीं होते थे। खोतान प्रदेश में अनेक छोटे-बड़े बौद्ध विहार थे जहाँ सहस्रों भिक्षु निवास करते थे। अधिकांश भिक्षु महायान मत के थे। इस युग में खोतान के बौद्ध विहार शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। संस्कृत भाषा में लिखे बौद्ध धर्म के अनेक अप्राप्त ग्रन्थ इन विहारों में संग्रहित थे। इन विहारों में बौद्ध भिक्षु केवल बौद्ध धर्म का प्रसार ही नहीं करते थे, अपितु वे विद्या और धर्म के अध्यापन में सदा संलग्न रहते थे। खोतान नगर में बौद्धों की एक बहुत बड़ी रथयात्रा निकलती थी जिसे स्वयं फाहियान ने देखा था। लगभग नौ मीटर ऊंचा चार पहियों वाला रथ होता था। वह एक चैत्य-सा होता था जिसके मध्य में भगवान बुद्ध की स्वर्ण प्रतिमा और आसपास बोधिसत्वों और अन्य देवों की सोने-चाँदी की मूर्तियाँ होती थीं। यह रथ अनेक बौद्ध भिक्षुओं और लोगों के जुलूस के साथ नगर के प्रमुख मार्गों से निकलता था और अन्त में राजा उपासक के वेश में बुद्ध मूर्ति की फूलों और सुगन्धित द्रवों से पूजा-अर्चन करता था।

खोतान बौद्ध धर्म का इतना अधिक प्रख्यात केन्द्र था कि बौद्ध धर्म के अनेक महत्त्वपूर्ण अप्राप्य ग्रन्थ वहाँ के विहारों और नगरों में उपलब्ध होते थे। सन् 433 में चीन से धर्मक्षेत्र नामक बौद्ध विद्वान प्रचारक महापरिनिर्माण सूत्र, नामक ग्रन्थ की खोज में खोतान आया था। खोतान और उसके समीपस्थ क्षेत्र से अनेक बौद्ध भिक्षु बौद्ध धर्म का प्रसार करने के लिए चीन देश में गये और धीरे-धीरे उन्होंने समस्त चीन को बौद्ध मतावलम्बी बना लिया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि खोतान में भारतीय धर्म, साहित्य और कला प्रसारित हुई। वहाँ आठवीं सदी तक भारतीय संस्कृति और धर्म प्रचलित रहा। उसके बाद वहाँ धीरे-धीरे इस्लाम का प्रभाव फैला।

कूचा- यह राज्य उत्तरी तारिम नदी की घाटी में था। सम्भवतः पुराणों में इसे कुशद्वीप और वृहत्संहिता में यहाँ के निवासियों को कुशिक कहा गया है। ईस्वी सन् की प्रारम्भिक सदियों में यहाँ अनेक भारतीय पहुँच गये थे और चौथी सदी के प्रारम्भ तक यहाँ के निवासी बौद्ध हो गये थे। चीन के प्राचीन इतिहास के अनुसार यहाँ अनेक सुन्दर और भव्य बौद्ध विहार और चैत्य थे। विहारों में अनेक भिक्षु रहते थे। अनेक विहारों का संचालन और निरीक्षण बुद्ध स्वामी नामक एक प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य करते थे। बुद्ध स्वामी द्वारा संचालित एक विहार में राजपरिवारों की भिक्षुणियाँ रहती थीं। कूचा में उत्खनन में अनेक बौद्ध विहारों और चैत्यों के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। कूचा के नरेश भारतीय धर्म और संस्कृति से इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था, अनेक बौद्ध विहार निर्मित किये थे और अपने नाम भी भारतीय रख लिये थे, जैसे स्वर्णदेव, हरदेव, सुवर्णपुष्प, हरिपुष्प आदि। कूचा में राजाओं को महाराजा, देवपुत्र, प्रिय-दर्शन आदि कहा जाता था। एक प्रसिद्ध भारतीय बौद्ध भिक्षु कुमारायान कूचा पहुँचा और वहाँ राजगुरु के पद पर नियुक्त किया गया परन्तु कूचा के राजा की बहिन जीवा और कुमारायन पर परस्पर प्रेम हो गया और उन्होंने विवाह कर लिया। उनका एक पुत्र कुमारजीवी प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य हुआ। उसने कश्मीर में रहकर बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया। वह अपने युग का कूचा मे बौद्ध और वैदिक साहित्य का प्रकाण्ड पण्डित था। सन् 401 में वह कूचा से चीन गया। वहाँ उसने चीनी भाषा का पूर्ण अध्ययन कर संस्कृत के प्रामाणिक बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया और चीन में महायान सम्प्रदाय का अत्यधिक प्रचार किया। उसने अपने धर्म-प्रचार और अनुवाद के कार्यों हेतु भारत से बुद्धयश, गौतम संघदेव, गुणवर्मन, गुणभद्र, बुद्धवर्मन, धर्मयश, पुण्यत्रात आदि अनेक बौद्ध विद्वानों और आचार्यों को चीन आमन्त्रित किया। इसकी और अन्य विद्वानों की सहायता से कुमारजीव ने दस वर्ष में 106 बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद कर दिया। इन ग्रन्थों में से अनेक के मूल संस्कृत रूप उपलब्ध नहीं होते हैं परन्तु उनके चीनी अनुवाद आज भी प्राप्त होते हैं।

तुर्फान- कूचा से पूर्व की ओर तुर्फान का मरुप्रदेश है। ईस्वी सन् की प्रारम्भिक सदियों में यह उपजाऊ क्षेत्र था। यहाँ भी बहुसंख्यक भारतीय धर्म और संस्कृति के प्रसारार्थ पहुँचे। इनके और कूचा के प्रभाव से यहाँ के निवासियों और राजाओं ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। उन्होंने अनेक बौद्ध विहार, चैत्य और प्रतिमाएं निर्मित कीं, जिनके भग्नावशेष आज भी उपलब्ध हैं। यहाँ संस्कृत में लिखे अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ भी उपलब्ध हुए।

बर्मा- दक्षिण-पूर्वी एशिया या स्वर्ण-भूमि का एक अंग बर्मा या ब्रह्मा था। इसके दक्षिण के भाग को श्री-क्षेत्र कहते थे। ऐसा अनुमान है कि अशोक के दो धर्म प्रचारक भिक्षु स्थविर उत्तर में और सोण बर्मा में गये थे। उन्होंने बर्मा में बौद्ध धर्म का प्रचार किया और बौद्ध संघ की स्थापना की। ब्रह्मा के दक्षिण भाग में हीनयान मत का प्रचार हुआ और वह इस सम्प्रदाय का केन्द्र बन गया। इसके पार्श्ववर्ती प्रदेशों में यहीं से हीनयान सम्प्रदाय का अधिक प्रसार हुआ। ब्रह्मा में बौद्ध धर्म का वास्तविक प्रचारक और धर्मदूत प्रसिद्ध सिंहली प्राचार्य बुद्धघोष था जो सन् 450 में लंका से ब्रह्मा गया और वहाँ उसने बौद्ध धर्म के हीनयान सम्प्रदाय का

अत्यधिक प्रचार किया। आज भी ब्रह्मा के बहुसंख्यक लोग बौद्ध हैं। दक्षिण ब्रह्मा में प्रोम नगर से आठ किलोमीटर दूर, ह्यावजा नामक स्थान में शिलालेख और पाली भाषा में हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि ईसा सन् की पाँचवीं सदी तक दक्षिण ब्रह्मा में भारतीय भाषा, लिपि और धर्म पूर्ण रूप से प्रचलित हो चुका था।

कालान्तर में दक्षिण भारत के कतिपय तमिल राज्यों का ब्रह्मा से व्यापारिक सम्बन्ध हो गया। कलिंग और पूर्वी समुद्र तट तथा तमिल राज्यों के व्यापारियों और धर्मोपदेशकों ने ब्रह्मा के लोगों से अपने धार्मिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित किये और ब्रह्मा के समीपवर्तीय भू-भाग पर अपने कुछ उपनिवेश बसा लिये। तेरहवीं सदी में यहाँ लंका के बौद्ध धर्म और पाली ग्रन्थों का अत्यधिक प्रचार हुआ। बौद्ध धर्म के साथ-साथ ब्राह्मण धर्म का प्रचार हुआ क्योंकि यहाँ विष्णु की अनेक प्रतिमाएं उपलब्ध हुई हैं। सुदीर्घ काल तक के भारतीय सम्पर्क के कारण भारतीय विचार और कला ने ब्रह्मा निवासियों के जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया। अतएव कोई आश्चर्य नहीं यदि पेगू प्रोम और अन्य स्थानों में बौद्ध तथा हिन्दू अवशेष प्राप्त हुए हों, आज भी ब्रह्मा की भाषा, लिपि, धर्म और सामाजिक जीवन पर भारतीय धर्म और संस्कृति की गहरी छाप है और उनके धार्मिक संस्कारों में वैदिक कर्मकाण्ड का पुट है।

स्याम या थाईलैण्ड- बर्मा के पूर्व में आधुनिक स्याम या थाईलैण्ड का स्वतन्त्र राज्य है। ईस्वी सन् की दूसरी या तीसरी सदी में स्याम के केन्द्रीय प्रदेश में द्वारावती नामक एक भारतीय राज्य का अभ्युदय हुआ। सम्भवतः इसके संस्थापक भारतीय थे। स्याम के एक भाग को विदेह राज्य कहा जाता था और उसकी राजधानी मिथिला थी। इसी प्रकार ईरावती और सलबीन नदियों के क्षेत्र को कौशाम्बी कहा जाता था। युन्नान प्रान्त में गान्धार नामक राज्य स्थापित किया गया। इसके हिन्दू राजवंश के नरेशों ने इस गान्धार राज्य का अत्यधिक विस्तार किया। सातवीं सदी में सन् 1253 में चीन के सम्राट कुबलाई खाँ ने इस राज्य को जीत लिया। भारतीयों के प्रभाव से स्याम में हिन्द और बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रचार हुआ। स्याम के समीप के हिन्दू उपनिवेश कम्बोडिया या कम्बुज में बौद्ध धर्म का महायान सम्प्रदाय प्रवेश कर गया। परन्तु यहाँ हीनयान सम्प्रदाय का प्रचार सिंहल या लंका के बौद्ध संघ ने किया। कालान्तर में हिन्दू और बौद्ध धार्मिक साहित्य तथा कला ने स्याम देश की भाषा, साहित्य, कला और सामाजिक संस्थाओं को अत्यधिक प्रभावित किया। स्याम में अमरावती शैली की कांसे की बौद्ध प्रतिमाएं, गंगा की घाटी में निर्मित गुप्तकालीन मूर्तियाँ, बौद्ध स्तूपों और विहारों के भग्नावशेष तथा दक्षिण भारत की पल्लव लिपि में अंकित बौद्ध धर्म के सिद्धान्त उपलब्ध हुए हैं। इससे विदित होता है कि स्याम में शिव, विष्णु और बुद्ध की पूजा होती थी। भारत से बोधिवृक्ष की एक शाखा को लाकर स्याम में लगाया गया। स्याम में हिन्दू नामों और उपाधियों को अपना लिया गया। यहाँ के स्थानों, नगरों, लोगों और राजाओं के नाम और पदवियाँ तथा विरुद आज भी हिन्दू समाज के अनेक अवशिष्ट चिन्ह प्रकट करते हैं। अनेकानेक हिन्दू सामाजिक प्रथाएं, रूढ़ियाँ, त्यौहार आदि आज भी स्याम में मनाए जाते हैं। स्याम की आधुनिक शब्दावली में पाली और संस्कृत के अनेक शब्द हैं। त्रिपिटक, वेद और स्मृति-ग्रन्थों का वहाँ अध्ययन होता था। सोलहवीं सदी तक स्याम के निवासी भारतीय संस्कृति के प्रभाव के अन्तर्गत रहे।

चम्पा- स्याम से आगे पूर्व में हिन्दचीन या इण्डोचाइना का देश है। हिन्दचीन में भारतीयों का सबसे प्राचीन उपनिवेश चम्पा था। चम्पा का राज्य हिन्दचीन के दक्षिण प्रान्त के

कम्बोडिया के उत्तर-पूर्व में था। इसमें दक्षिण अन्नाम और कोचीन प्रदेश थे। सम्भवतः पूर्वोत्तर बिहार के भारतीयों ने अंग राज्य की राजधानी चम्पा के नाम पर यह उपनिवेश बसाया था। सम्भवतः यह दूसरी सदी में स्थापित किया गया था। चम्पा की राजधानी अमरावती थी। यह भारतीय उपनिवेश तेरह सौ वर्षों (सन् 150 से 1471) तक समृद्धशाली रहा। वह चीनी और भारतीय सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्बन्धों के मध्य में एक महत्त्वपूर्ण राज्य था। चम्पा का प्रथम भारतीय हिन्दू राजा श्रीमार था। इसने ईस्वी सन् की दूसरी सदी के अन्तिम भाग में शासन किया और कहा जाता है कि उसने चम्पा के हिन्दू राजवंश की स्थापना की। श्रीमार के बाद फनवेन नामक राजा ने सन् 347 में चीन पर आक्रमण करके चीन के एक उपजाऊ प्रान्त न्हुत-नाम को जीत कर चम्पा राज्य की सीमा को होन-सोन पर्वत-श्रेणी तक बढ़ा दिया। फनवेन के शासनकाल में चम्पा शक्तिशाली और समृद्ध राज्य हो गया। फलतः चीन के राजा और चम्पा के राजा में परस्पर संघर्ष होता रहा। इसके बाद धर्म महाराजा श्रीभद्र वर्मा (सन् 380-413) और गंगा-राज अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। भद्रवर्मा ने शिव के परमभक्त होने से अपनी राजधानी मिसोन में एक भव्य शिव मन्दिर बनवाया और उसमें "भर्देश्वर स्वामी" नामक शिव की मूर्ति प्रतिष्ठित की। चम्पा में भर्देश्वर (भट्टेश्वर) स्वामी का मन्दिर राष्ट्रीय मन्दिर बन गया और वह धर्म तथा संस्कृति का केन्द्र हो गया। भद्रवर्मा चारों वेदों का प्रकाण्ड पण्डित माना जाता था। भद्रवर्मा का उत्तराधिकारी गंगाराज (सन् 413 से 415) था। वह राजपाट त्याग कर तीर्थयात्रा और गंगावास के लिए भारत चला आया था।

श्रीमार वंश के बाद चम्पा में पाण्डुरंग वंश (सन् 757 से 860 तक) का राज्य रहा। इसका संस्थापक पृथ्वीन्द्र वर्मा था। इस वंश का अन्तिम राजा विक्रान्त वर्मा था। पाण्डुरंग वंश के समय जावा से चम्पा पर एक समुद्री आक्रमण हुआ था। पाण्डुरंग वंश के बाद चम्पा में इन्द्रवर्मा ने भृगुवंश की स्थापना की। इस वंश के नरेशों ने सन् 860 से 985 तक शासन किया। भृगुवंश के एक प्रसिद्ध राजा भद्रवर्मा ने अपनी दिग्विजयों से चम्पा राज्य का विस्तार किया तथा अन्य राजाओं से राजपूतों का आदान-प्रदान किया। भद्रवर्मा का उत्तराधिकारी इन्द्रवर्मा तृतीय (सन् 911 से 972) चम्पा का प्रसिद्ध भूपति था। वह षट्दर्शन, बौद्ध दर्शन, पाणिनी व्याकरण, आख्यान और शैवमत के उत्तरकल्प का प्रकाण्ड पण्डित माना जाता था। दसवीं सदी में चम्पा पर उत्तर से अन्नामियों और मंगोलों के निरन्तर आक्रमण होने लगे। बारहवीं सदी में चम्पा और कम्बुज राज्य में घोर संघर्ष प्रारम्भ हो गया। चम्पा के कतिपय नरेश जय परमेश्वर वर्मदेव ईश्वरमूर्ति (सन् 1050-1060), रुद्रवर्मा (सन् 1060-1069), हरिवर्मन (सन् 1070-1081), महाराजाधिराज श्रीजयइन्द्रवर्मन (सन् 1163 से 1180) और जयसिंह वर्मन (सन् 1257 से 1287) बड़े वीर योद्धा थे और वे अपने देश चम्पा की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपने पश्चिमी पड़ोसी कम्बुजों, अन्नामियों और मंगोल नरेश कुबलाई खाँ से जूझते रहे। तेरहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कुबलाई खाँ ने चम्पा पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था परन्तु वह दीर्घकाल तक नहीं रह सका। इसके बाद पन्द्रहवीं सदी में अन्नामियों के निरन्तर आक्रमणों से चम्पा के स्वतन्त्र राज्य का अन्त हो गया। सोलहवीं सदी में चम्पा को मंगोलों के सम्प्रदायों ने रौंद डाला।

चम्पा राज्य के नरेश भारत के हिन्दू राजाओं के समान ही संस्कृत के पण्डित और धर्मपरायण थे। उनकी राजभाषा संस्कृत थी। उनके आदेश और अभिलेख संस्कृत में होते थे।

उनके अभिलेखों में शक-संवत का उपयोग होता था। चीन तथा अन्य राज्यों के साथ उनका दौत्य सम्बन्ध था। चम्पा के उपनिवेश में अनेक समृद्धशाली नगर थे और समस्त देश हिन्दू और बौद्ध मन्दिरों से सुशोभित था। मन्दिरों के दो नगर मिसांग और डांग दुअंग आज भी विख्यात हैं। यहाँ ब्राह्मणवादी हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म दोनों ही प्रचलित थे। हिन्दू धर्म के वैष्णव और शैव दोनों मत प्रचलित थे। विष्णु के कई नाम थे। वहाँ लक्ष्मी को पद्मा और श्री कहते थे और वह चम्पा देश की लोकप्रिय सर्वविदित देवी थी। विष्णु मत की अपेक्षा शैव मत अधिक लोकप्रिय और प्रभावशाली था। डॉ. आर.सी. मजूमदार द्वारा संकलित चम्पा के 130 अभिलेखों में से 92 में शिव का उल्लेख है। इसमें चम्पा में शिव की महत्ता पर प्रकाश पड़ता है। चम्पा की प्राचीन राजधानी मिसोन और पो-नगर में शिव के ही मन्दिर हैं। चम्पा के निवासियों में मूर्ति-पूजा प्रचलित थी। वे हिन्दू देवी-देवताओं की उपासना और पूजा करते थे। विविध देवताओं की उपासना में शिव, उनकी शक्ति और उनके दो पुत्र गणेश और स्कन्द का स्थान प्रमुख था। इनके अतिरिक्त विष्णु, लक्ष्मी, कृष्ण, बुद्ध एवं अन्य देवताओं का पूजन भी होता था। चम्पा में बहुदेववाद प्रचलित होने पर भी एक परमेश्वर के प्रति विश्वास, श्रद्धा और भक्ति भी थी। चम्पा के अनेक अभिलेखों में ब्रह्मा को विश्व का निर्माता माना गया है। पुनर्जन्म की भारतीय धारणा में भी लोगों को विश्वास था। यहाँ के धार्मिक जीवन की विशेषता है, धार्मिक सहिष्णुता और उदारता। यद्यपि यहाँ वैष्णव, शैव और बौद्ध मत प्रचलित थे, परन्तु उनमें परस्पर धार्मिक विद्वेष और प्रतिद्वन्द्विता प्रचलित नहीं थी। सभी सम्प्रदायों के प्रति राजा और प्रजा में श्रद्धा और भक्ति थी।

भारत के हिन्दू समाज की रचना का भी चम्पा में प्रचार हुआ। हिन्दू ढंग का समाज वहाँ प्रचलित हो गया। यद्यपि सिद्धान्त में चार वर्ग-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-प्रचलित थे परन्तु सर्वसाधारण में दृढ़ अपरिवर्तनशील सामाजिक वर्ग एवं जातियाँ नहीं थीं। ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों या व्यापारियों का वर्ग-विभाजन ही अधिक प्रचलित था। क्योंकि चम्पा के अधिकांश भारतीय ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही थे। ब्राह्मणों का समाज में श्रेष्ठ स्थान था और वे सम्मानित होते थे। ब्रह्म-हत्या को भयंकर पाप माना जाता था। परन्तु राजा पर और प्रशासन में उसका उतना अधिकार नहीं था जितना कि भारत में था। राजा, सामन्त और प्रशासक वर्ग में भी प्रायः ब्राह्मण और क्षत्रिय होते थे। प्रशासन में कभी-कभी धन-सम्पन्न लोगों को भी श्रेष्ठ स्थान प्राप्त होता था। समाज में व्यापारी और वैश्य वर्ग का उनकी धन-धान्यता और सम्पन्नता के कारण उच्च स्थान था। चम्पा की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था और रीति-रिवाजों तथा प्रथाओं के कारण भारतीय हिन्दू ढंग के समाज में कतिपय परिवर्तन हो गये थे।

समाज में हिन्दुओं के समान ही विवाह एक पवित्र धार्मिक और सामाजिक बन्धन तथा संस्कार माना जाता था। पाणिग्रहण संस्कार की विधि भी भारतीय थी। प्रणय और दाम्पत्य जीवन की पवित्रता हिन्दुओं जैसी ही थी। समाज में सती-प्रथा प्रचलित थी। चम्पा की अनेक रानियाँ अपने पतियों के साथ सती हुई थीं। पर्दा-प्रथा का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। समाज में वेशभूषा और आहार भारतीय ही था। विरक्त संन्यासी के वसन भी भारतीय संन्यासी के समान होते थे। मृत्यु उपरान्त शव के दाह की प्रथा प्रचलित थी। समाज में हिन्दुओं के अनेक त्यौहार आनन्द और उल्लास से मनाये जाते थे।

चम्पा में संस्कृत भाषा और ब्राह्मी लिपि का अधिक प्रचार था। विद्वानों की और राज्य की भाषा संस्कृत थी। राज्य के अभिलेख और आदेश संस्कृत में होते थे। चम्पा के अनेक नरेश संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। वहाँ भारत के अनेक धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन और अध्यापन होता था। चारों वेद, पुराण, दोनों महाकाव्य, पाणिनि का व्याकरण, मनुस्मृति, नारद स्मृति, षटदर्शन और दार्शनिक ग्रन्थ, वैष्णव और शैवमत के अनेक धार्मिक ग्रन्थ, बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय के अनेक ग्रन्थ, बौद्ध दर्शन के ग्रन्थ आदि चम्पा में प्रचलित थे।

भारतीय ललितकलाओं का प्रसार भी चम्पा में हुआ। वहाँ भारतीय ढंग का संगीत और नृत्य होता था। वीणा, बाँसुरी और मृदंग लोकप्रिय वाद्य यन्त्र थे। शिल्पकला में चम्पावासियों ने भारत की गुप्तकाल की कला का उसके विषय में ही नहीं, अपितु उसकी प्रणाली में भी अनुकरण किया था। मन्दिरों, तोरण-द्वारों और स्तम्भों के अलंकरण में तो चम्पा की वास्तुकला और तक्षणकला श्रेष्ठता की उच्चतम पराकाष्ठा पर थी। मिसोन, डांग-डुआंग, पी-नगर आदि के बौद्ध और शैव मन्दिर चम्पा की वास्तुकला के ज्वलन्त उदाहरण हैं। सातवीं और आठवीं सदी के पश्चात् चम्पा के मन्दिरों के निर्माण में दक्षिण भारत के कांचीवरम् और मामल्लपुरम् की कला का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

फूनान- हिन्दचीन में दक्षिण में कम्बोडिया प्रान्त में प्राचीन हिन्दू राज्य था। इसे चीनी फूनान कहते थे। इस राज्य के अन्तर्गत कम्बोडिया, कोचीन का एक भाग और मीकांग नदी के नीचे का क्षेत्र था। ईस्वी सन् की प्रारम्भिक सदियों में फूनान के निवासी अर्द्ध सभ्य थे। वे नग्न रूप में रहते थे और शरीर पर गोदने गुदाते थे। ईसा की पहली सदी में कुछ हिन्दू कौण्डिन्य नामक ब्राह्मण के नेतृत्व में फूनान पहुँचे। कौण्डिन्य ने वहाँ के मूल-निवासियों की रानी सीमा को पराजित किया और उसके साथ विवाह करके नवीन हिन्दू राज-वंश की स्थापना की। पाँचवीं सदी के प्रारम्भ में रचित दक्षिण थाईलैण्ड के इतिहास में फूनान राज्य की स्थापना का वर्णन है, और उसमें कौण्डिन्य अनुश्रुति का उल्लेख है। इसके अनुसार फूनान की रानी लियू-यी थी। एक नाव में समुद्र पार से हुएन-तेन नामक व्यक्ति फूनान आया। रानी लियू-यी सेना सहित उसका विरोध करने के लिए गयी। हुएन-तेन के तीर से लियू-यी के व्यक्ति घायल हुए। इससे वह भयभीत हो गयी और उसने हुएन-तेन को आत्मसमर्पण कर दिया। हुएन-तेल ने लियू-यी को वस्त्र से ढँग दिया क्योंकि वह स्वयं नग्न थी। हुएन-तेन ने उससे विवाह कर लिया और फूनान प्रदेश पर शासन करने लगा। हुएन-तेन कौण्डिल्य का चीनी रूपान्तर है। बृहत्तर भारत के एक हिन्दू राजवंश के संस्थापक के रूप में कौण्डिन्य का नाम बड़ी श्रद्धा-भक्ति और सम्मान से लिया जाता है और अभिलेखों में प्रायः उसका उल्लेख मिलता है। कौण्डिन्य द्वारा स्थापित फूनान राज्य एक प्रसिद्ध और शक्तिशाली राज्य था। इसमें अनेक ब्राह्मण और व्यापारी भारत से आकर बस गये थे।

कौण्डिन्य और उसके वंशजों ने लगभग 200 ईस्वी तक फूनान में राज्य किया। इसके बाद फूनान के लोगों ने फान-चे-मान नामक सेनापति को अपना नरेश निर्वाचित किया। उसने लगभग ईस्वी सन् 224 तक शासन किया। वह फूनान का एक प्रतिभावान् कुशल राजा था जिसने फूनान राज्य की अत्यधिक वृद्धि की। उसने पार्श्ववर्ती दस राजाओं को पराजित करके उनके-राज्य फूनान में सम्मिलित कर लिये और मलाया प्रायद्वीप तक फूनान राज्य विस्तृत कर दिया। उसके बाद उसका भानजा और सेनापति फान-चान फूनान का शक्तिशाली राजा हुआ।

फान-चान ने भी अपनी विजयों से फूनान राज्य की वृद्धि की। फान-चान ने भारत और चीन को अपने राजदूत भेजे थे। उसके शासनकाल में अनेक भारतीय व्यापारी फूनान पहुँचे थे। एक चीनी ग्रन्थ में ऐसे ही एक भारतीय व्यापारी का फूनान जाने और फान-चान से राज-सभा में भेंट करने का उल्लेख है। फान-चान के बाद फूनान के अन्य राजाओं ने तीसरी और चौथी सदी में फूनान राज्य की श्रीवृद्धि की और चीनी संभ्रान्त की राज्य-सभा में अपने राजदूत भेजते रहे।

चीनी इतिहास के अनुसार, जिसका अनुवाद फ्रांसीसी भाषा में पेलियो ने किया है, चौथी सदी के अन्त या पाँचवीं सदी के प्रारम्भ में कौण्डिन्य नामक एक प्रसिद्ध ब्राह्मण दैवी प्रेरणा के कारण भारत से फूनान आया था। फूनान निवासी उससे अत्यधिक प्रसन्न हुए और उसे अपना राजा चुन लिया। इस कौण्डिन्य ने पान-पान में अपना राज्य स्थापित किया। चीनी लेखकों के अनुसार पान-पान फूनान के बड़े हिन्दू राज्य के अधीन एक अन्य छोटा सामन्त राज्य था। इस कौण्डिन्य ने अपने राज्य में वैदिक धर्म और ग्रन्थों का तथा भारतीय प्रथाओं और नियमों का प्रचार किया। कौण्डिन्य की राजसभा में अनेक भारतीय विद्वान ब्राह्मण विद्यमान थे। उसके राज्य में बौद्ध और ब्राह्मण धर्म दोनों ही प्रचलित थे और इनके अपने अलग-अलग मन्दिर थे। कौण्डिन्य ने समाज और धर्म की भारतीय ढंग के अनुसार पुनर्व्यवस्था की।

पाँचवीं सदी में कौण्डिन्य के वंश के गुणवर्मा और जयवर्मा या जयवर्मन नामक प्रसिद्ध राजा हुए। गुणवर्मा ने विष्णु का एक प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया। जयवर्मा ने सन् 474 ईस्वी में नागसेन नामक बौद्ध भिक्षु के नेतृत्व में एक दूतमण्डल चीनी सम्राट की राजसभा में भेजा था। जयवर्मन को "दक्षिण का शान्तिपूर्ण सेनानी" की उपाधि दी गयी थी। सम्भवतः इनके शासनकाल में फूनान से संघ वर्मन और भद्रसेन नामक दो प्रसिद्ध विद्वान और बौद्ध भिक्षु चीन गये और वहाँ उन्होंने स्थायी रूप से रहकर अनेक बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। सन् 514 में जयवर्मन के देहावसान के पश्चात् रुद्रवर्मन राजा बना। सन् 517 से 539 तक की अवधि में रुद्रवर्मन ने सम्भवतः चम्पा के विरुद्ध सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिए चीनी सम्राट को छः इतमण्डल भेजे। इसमें से प्रथम इतमण्डल धर्मपाल नामक एक भारतीय के नेतृत्व में भेजा गया था। रुद्रवर्मन और उसकी माता रानी कुलप्रभावती के द्वारा संस्कृत में उत्कीर्ण अनेक अभिलेख फूनान में प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों से विदित होता है कि फूनान में वैष्णव, शैव और बौद्ध मत प्रचलित थे। इनसे सम्बन्धित अनेक मन्दिर और स्तूप निर्मित किये गये थे।

राजा रुद्रवर्मन के उत्तराधिकारी निर्बल और अयोग्य थे। इससे फूनान में अशान्ति और अव्यवस्था फैल गयी। पार्श्ववर्ती कम्बुज के राजाओं ने इसका लाभ उठाकर फूनान पर निरन्तर आक्रमण किये और अन्त में सातवीं सदी में फूनान का राज्य कम्बुज में सम्मिलित कर लिया गया।

फूनान राज्य में अनेक भारतीय ब्राह्मण, व्यापारी, धर्म-प्रचारक और उपनिवेशी बसे हुए थे। चीनी लेखकों के कथनानुसार भारतीय संस्कृति पूर्ण रूप से फूनान में व्याप्त थी। वहाँ हिन्दुओं की जाति व्यवस्था, संस्कृत भाषा, वैष्णव, शैव और बौद्ध सम्प्रदाय प्रचलित थे। भारतीय ढंग के मन्दिर निर्मित होते थे और उनमें देवी-देवताओं की पूजा तथा उपासना होती थी। ब्राह्मण वेदों और वेदांगों का अध्ययन-अध्यापन करते थे। कतिपय स्थान भारतीय संस्कृति के शक्तिशाली केन्द्र हो गये थे। फूनान का एक सम्मान राज्य तिएन-सुयेन एक ऐसा ही प्रबल सांस्कृतिक स्थान था। यहाँ भारत से दो सौ बौद्ध और एक सहस्र से अधिक ब्राह्मण आकर स्थायी रूप से बस

गये थे। वे और उनके समान उपनिवेशी भारतीय तिएन-सुयेन तथा अन्य देशों में भारतीय धर्म और संस्कृति का प्रचार करते थे। ये भारतीय उपनिवेशी फूनान के निवासियों से अन्तर्विवाह करते थे। फूनान का सम्बन्ध चीन और भारत से होने के कारण फूनान की आर्थिक श्रीवृद्धि हुई। यहाँ की व्यापारिक वस्तुओं में सोना, चाँदी और रेशम मुख्य थे। सम्पन्न उच्च वर्ण के लोगों की वेशभूषा बहुमूल्य जरी की होती थी। स्त्रियाँ पगड़ी पहनती थीं। राजप्रासाद का जीवन सरल था। राजमहल कई मन्जिलों वाले होते थे। राजा हाथी पर सवार होकर बाहर निकलता था। महिलाएं भी हाथी पर बैठती थीं। निवासगृहों के निर्माण में काष्ठ का अधिक उपयोग होता था। लोग मनोरंजन-प्रिय थे। सुअरों और मुर्गों की लड़ाई अधिक लोकप्रिय थी। लोग धर्मपरायण और धर्मनिष्ठ थे।

कम्बुज- इण्डोचाइना के दक्षिण के कम्बोडिया प्रान्त में कम्बुज राज्य था। वह भी भारतीयों का एक औपनिवेशिक राज्य था। कम्बुज राज्य उन हिन्दुओं ने स्थापित किया था जो भारत से ईस्वी सन् के पूर्व में कांग नदी के मुहाने तक चले गये थे। प्रारम्भ में यह एक छोटा-सा राज्य था और फूनान राज्य के अन्तर्गत था। जब वहाँ हिन्दू राज्य वंश की स्थापना हो गयी, तब अनेक हृष्ट-पुष्ट और परिश्रमी भारतीय यहाँ आकर बस गये और उन्होंने ईस्वी सन् की प्रथम तीन सदियों में कम्बुज की प्राकृतिक शक्तियों, उनकी सम्पन्न उर्वरा भूमि और सरिताओं का उपयोग करके उनका विकास किया। धीरे-धीरे उसके राजाओं ने अपनी शक्ति और सीमाओं में वृद्धि की और छठी सदी में कम्बुज के राजा भववर्मा ने फूनान राज्य को परास्त कर दिया और बाद में फूनान राज्य को कम्बुज राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। सातवीं सदी में कम्बुज का आधिपत्य उन सभी प्रदेशों और सामन्त राज्यों पर हो गया जो पहले फूनान के अधीन थे। आठवीं सदी में कम्बुज के अन्य राज्यों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर हिन्दचीन का सबसे बड़ा हिन्दू राज्य बन गया। नवीं सदी में कम्बुज राज्य में आधुनिक कम्बोडिया, कोचीन, चीन, लाओस, स्याम, ब्रह्मा का कतिपय प्रदेश और मलाया प्रायद्वीप सम्मिलित थे। कम्बुज के इस विशाल साम्राज्य पर वहाँ के हिन्दू राजाओं ने ईस्वी सन् की पन्द्रहवीं सदी तक वैभव से राज्य की श्रीवृद्धि की।

कम्बुज के राजाओं में भववर्मा, ईशानवर्मा, जयवर्मा द्वितीय (सन् 802 से 825), जयवर्धन (सन् 869 से 877), इन्द्रवर्मा (877 से 889), यशोवर्मा (889 से 908), राजेन्द्र वर्मा, जयवर्मा पंचम, सूर्यवर्मा द्वितीय (सन् 1113 से 1145), जयवर्मा सप्तम आदि प्रसिद्ध राजा हुए। इनके राज्यकाल में संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण अनेकानेक लेख उपलब्ध हुए हैं जो कम्बुज की भारतीय संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं।

यद्यपि थोड़ी अवधि के लिए सातवीं सदी में कम्बुज राज्य जावा के शैलेन्द्र साम्राज्य के अधीन हो गया था पर जयवर्मा द्वितीय ने फिर उसे स्वतन्त्र राज्य कर लिया। जयवर्मा के शासनकाल से कम्बुज राज्य के स्वर्णयुग का सूत्रपात होता है। आठवीं और नवी सदी में कम्बुज का राज्य अपनी सर्वश्रेष्ठ सार्वभौमता और उच्चतम सांस्कृतिक विकास के स्तर पर पहुँच गया था। कम्बुज के राजाओं ने इस युग में चीन और भारत को अपने राजदूत भेजे। कम्बुज के राजा इन्द्रवर्मा का यह दावा था कि "चम्पा प्रायद्वीप और चीन के शासक उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं।" कम्बुज का महान् शासक यशोवर्मा या जयवर्मा तृतीय था। वह नवीं सदी का महान् सम्राट और यशोधरपुर (अंगकोरथोम) का संस्थापक था। यह अर्जुन व भीम जैसा वीर, सुश्रुत-सा

विद्वान तथा शिल्प, भाषा, लिपि और नृत्यकला में पारंगत था। उसकी तुलना पाणिनी से की जाती है और ऐसा माना जाता है कि उसने पतंजलि में "महाभाष्य" पर एक टीका लिखी। उसने भारतीय तपोवनों और गुरुकुलों के समान कम्बुज के आश्रम स्थापित किये थे जिनका प्रधान कार्य अध्ययन-अध्यापन करना तथा ज्ञान आलोक को निरन्तर प्रसारित करना था। कालान्तर में ये आश्रम हिन्दू संस्कृति के श्रेष्ठ केन्द्र हो गये। सूर्यवर्मा द्वितीय की गणना कम्बुज के महान् नरेशों में की जाती है। उसके शासन काल में कम्बुज साम्राज्य का अधिक विस्तार हुआ। सूर्यवर्मा ने अपनी विशाल सेना से जिनमें दो लाख युद्ध के हाथी थे, कम्बुज राज्य का विस्तार किया। उसने ब्रह्मा का दक्षिणी प्रदेश और मलाया प्रायद्वीप का उत्तरी क्षेत्र भी जीतकर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था। उसने अंगकोरवात में शिव मन्दिर का निर्माण किया जो विश्व का सबसे बड़ा मन्दिर और आश्चर्यजनक वस्तु है। जयवर्मा सप्तम कम्बुज का अन्य प्रतापी सम्राट था। उसने बारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में राज्य किया। उसने अपनी विजयों से चम्पा और ब्रह्मा के क्षेत्र को कम्बुज राज्य में सम्मिलित कर लिया। उसने अंगकोरथोम में अपने विशाल साम्राज्य की नवीन राजधानी स्थापित की। तेरहवीं सदी के अन्त तक कम्बुज का हिन्दू साम्राज्य स्वतन्त्र रहा। परन्तु चीन में मंगोल सम्राट कुबलाई खाँ ने सन् 1296 में कम्बुज को परास्त कर चीनी साम्राज्य का एक अंग बना लिया। फिर भी कम्बुज राज्य का अस्तित्व बना रहा। पन्द्रहवीं सदी में कम्बुज राज्य की शक्ति पूर्व से अन्नामियों और पश्चिम में थाई लोगों के निरन्तर आक्रमणों के कारण क्षीण हो गयी। इसके बाद जब फ्रांसीसियों ने कम्बुज पर अधिकार कर लिया तब यह फ्रांसीसियों का दक्षिण और आश्रित राज्य हो गया।

कम्बुज देश के जीवन पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति की गहन छाप है। क्योंकि कम्बुज दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। कम्बुज का समाज हिन्दू ढंग का था। ब्राह्मणों को श्रेष्ठ स्थान और सम्मान प्राप्त था। वे धर्मशास्त्रों का अध्ययन और अध्यापन तथा अन्य धार्मिक कार्य करते थे। अधिकांश ब्राह्मण, सन्त और संन्यासी आश्रमों में रहकर अपना समय चिन्तन और मनन में व्यतीत करते थे। विद्वान और प्रसिद्ध ब्राह्मण उच्च धार्मिक पदों पर भी नियुक्त किये जाते थे। समाज में धन-सम्पन्न व्यापारी-वर्ग भी था। अनेक ब्राह्मण और व्यापारी भारत से आते थे। राज्य और विद्वानों की भाषा संस्कृत थी। शासकीय अभिलेखों में उच्चकोटि की संस्कृत की काव्य-शैली का उपयोग किया गया था। भारत के संस्कृत में लिखे गये अनेक धर्म-ग्रन्थों, दर्शनशास्त्र के ग्रन्थों, काव्य ग्रन्थों, वेद पुराण, रामायण, महाभारत तथा पाणिनी, पतंजलि, मनु, वात्स्यायन, कालिदास आदि की रचनाओं का अध्ययन किया जाता था। कम्बुज में कालिदास के 'रघुवंश', प्रवरसेन के 'सेतुबन्धु' और मयुर कवि के 'सूर्यशतक' के उल्लेख प्राप्त होते हैं। कम्बुज और भारत के मध्य विद्वानों का आना-जाना रहता था। भारत के प्रसिद्ध शंकराचार्य के एक शिष्य शिवसोम ने उनके अधीन शास्त्रों का अध्ययन करके कम्बुज में निवास कर अपनी विद्वत्ता की इतनी अधिक कीर्ति फैलाई थी कि "उसके चरण-कमलों में ऋषि भी सिर झुकाते थे।" कम्बुज में भारतीय आयुर्वेद शास्त्र और चिकित्सा पद्धति का अधिक प्रचार था। कम्बुज नरेश रुद्रवर्मन ने तो अपनी राजसभा में दो आयुर्वेद चिकित्सकों को रखा था।

कम्बुज में मनुष्यों, स्थानों, नगरों, संस्थाओं, प्राकृतिक स्थानों आदि के नाम भारतीय थे, जैसे सिंहनख, जयवर्मा, इन्द्रवर्मा, ताम्रपुर, विक्रमपुर, धुवपुर, विप्रशाला, शास्त्र, आरोग्यशाला

आदि। भारतीय ढंग से अनेक भवन, राजप्रासाद, नगर, सड़कें आदि थीं। यात्रियों के लिए विभिन्न स्थानों पर विश्रामगृह भी बनवाये गये थे। कम्बुज में प्रारम्भ में पौराणिक हिन्दू धर्म की प्रधानता थी। राज्य में शैव और वैष्णव दोनों धर्म प्रगतिशील थे। कम्बुज का राजवंश शैव मतावलम्बी था। परन्तु कालान्तर में वहाँ बौद्ध धर्म की प्रधानता हो गयी थी और राजवंश ने भी बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया था। राजा ईशान वर्मा के शासन काल में कम्बुज में शिव और विष्णु या हर और हरि की एक सम्मिलित मूर्ति बनायी गयी थी। अनेक हिन्दू देवताओं की पूजा और उपासना होती थी जिनके लिए छोटे-बड़े अनेकानेक मन्दिर निर्मित किये गये थे। पौराणिक हिन्दू धर्म के कई सन्त, साधु और संन्यासी बौद्ध भिक्षुओं के समान आश्रमों में निवास करते थे। वहाँ वे धर्म-प्रचार, अध्ययन और अध्यापन के कार्य करते थे। ऐसे आश्रय राज्य द्वारा निर्मित किये गये थे।

कम्बुज में भग्न मन्दिरों, जीर्ण-शीर्ण राजप्रासादों और उजड़े हुए नगरों के अवशेष यह प्रमाणित करते हैं कि कम्बुज की कला भारतीय मूल की थी। कम्बुज के कलाकारों और शिल्पियों ने भारत से प्रेरणा ग्रहण की। कम्बुज के प्रसिद्ध स्मारक बाफून, बैण्टेच्मार, बेयोन, अंगकोरवाट और अंगकोरथोम हैं। अंगकोरवाट और अंगकोरथोम कम्बुज की सर्वोत्कृष्ट कला, भव्यता, समृद्धि और महत्व के ज्वलन्त उदाहरण हैं। नवीं सदी में कम्बुज के राजा यशोवर्मा ने यशोधरपुर नामक नगर बसा कर वहाँ अपनी राजधानी स्थापित की। इसे आजकल अंगकोरथोम कहते हैं। इस नगर के चारों ओर लगभग 101 मीटर चौड़ी खाई थी। यह नगर वर्गाकार था जिसकी प्रत्येक भुजा लगभग चार किलोमीटर लम्बी थी। नगर की चतुर्दिक ऊंची प्राचीर थी जिसमें विशाल पाँच प्रवेशद्वार थे, जिनकी भव्य महराबें तीन मीटर ऊंची और साढ़े चार मीटर चौड़ी थीं। प्रत्येक प्रवेश द्वार पर ऊंची मीनारें थीं जिन्हें तीन मस्तक वाले भीमकाय हाथी अपनी पीठ पर उठाये हुए थे। प्रत्येक प्रवेशद्वार के सम्मुख पानी की खाई पर आवागमन के लिए एक पुल था। ये प्रवेशद्वार विश्व में कला और भव्यता की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट माने गये हैं। प्रत्येक प्रवेशद्वार से लम्बे-चौड़े राजमार्ग नगर के मध्य तक चले गये हैं। नगर के मध्य में शिव का एक सुन्दर भव्य मन्दिर है। इसे बयोन का मन्दिर कहा जाता है। इसके तीन खण्ड हैं और प्रत्येक खण्ड पर सुन्दर ऊंची मीनार निर्मित की गयी है। मध्य के मीनार की ऊंचाई लगभग 46 मीटर है और उसके चतुर्दिक अनेकानेक छोटी-छोटी मीनारें हैं। इनके चारों ओर समाधिस्थ शिव की प्रतिमाएं हैं। ये मीनार के शिखर हैं। ऐसे लगभग पचास शिखर हैं। मन्दिर में अनेक स्थानों पर सुन्दर आकर्षक चित्रकारी भी की गयी है। अंगकोरथोम और उसके मन्दिर की प्रत्येक वस्तु की कल्पना और उसका निर्माण वास्तव में भव्य रूप से किया गया। "यशोधरपुर का नगर इस युग के समस्त विश्व में सबसे अधिक विशाल और भव्य नगरों में से था।" बारहवीं सदी में कम्बुज के एक महान् शासक सूर्यवर्मा द्वितीय ने एक विशाल विष्णु मन्दिर का निर्माण किया था। इसे अंगकोरवात कहते हैं। यह अंगकोरथोम से दक्षिण की ओर लगभग डेढ़ किलोमीटर दूर है। इसके चतुर्दिक लगभग दो सौ मीटर चौड़ी और चार किलोमीटर लम्बी एक खाई है जिसमें नहर से जल भरा रहता है। यह एक सुन्दर झील के समान प्रतीत होती है। इसे पार करने के लिए पश्चिम में इस पर एक पुल है जिस पर होकर मन्दिर के विशाल प्रवेशद्वार में जा सकते हैं। यह प्रवेश द्वार तीन सौ मीटर से भी अधिक चौड़ा है। पुल पर का मार्ग पश्चिमी प्रवेशद्वार से पूर्वी प्रवेशद्वार तक चला गया है। प्रवेशद्वार से आगे ऊंचे उठे हुए चबूतरों और गलियारों पर मन्दिर

की रचना की गयी है। तीन वर्गाकार छोटे होते हुए चबूतरे एक के ऊपर एक बने हुए हैं और उनमें स्तम्भों युक्त बरामदे और गैलरियाँ हैं। इन बरामदों की दीवारों और स्तम्भों पर पशु-पक्षी, नृत्य करती हुई बालाएं, सैनिकों, पुरोहितों, राजाओं के जुलूस, देवी-देवता, अप्सराएं, रामायण और महाभारत के अनेक दृश्य आदि उत्कीर्ण हैं। जो जंगला बनाया गया है वह सर्प के शरीर सा है और उसका सात फनों वाला मुँह मन्दिर के प्रवेशद्वार पर बना हुआ है। जिस प्राचीन वास्तुकला और तक्षणकला का विकास भारतीय शिल्पियों ने कम्बुज में किया था, अंगकोरवात का यह मन्दिर उसका सर्वोत्कृष्ट नमूना है। इसकी गणना विश्व की एक आश्चर्यजनक वस्तु में की जाती है। प्रोफेसर रालिन्सन के मतानुसार अंगकोरवात की कला अत्यधिक परिपूर्ण और दुर्लभ है। डॉ. आर.सी. मजूमदार का मत है कि संसार के किसी और स्थान में भव्य महानता की दृष्टि से अंगकोर जैसे स्मारक नहीं मिलते। अंगकोरवात को ठीक ही कम्बुज के श्रेष्ठतम स्मारकों में गिना जाता है। कम्बुज राज्य ने विश्व को सबसे बड़ा मन्दिर प्रदान किया है जिसमें भारत की सूक्ष्मातिसूक्ष्म गाथाएं पाषाण पर अत्यन्त ही सुन्दर, आकर्षक और कलापूर्ण ढंग से उत्कीर्ण की गयी हैं। भारत की सांस्कृतिक विजय का यह दिव्य प्रबल प्रमाण है।

मलाया प्रायद्वीप- इस प्रायद्वीप में भी भारतीयों ने अपने उपनिवेश स्थापित किये। मलाया में प्रचलित जनश्रुति के अनुसार भारत में पाटलिपुत्र के राजवंश के मरोड़ नाम के साहसी राजकुमार ने समुद्री मार्ग से मलाया जाकर विजय करके नवीन हिन्दू राजवंश की स्थापना की। मरोड़ के राज्य का नाम लंकाशुक था। यहाँ मरोड़ के पश्चात् महा पोदिसत (महाबोधिसत्व) और श्री महावंश नामक प्रसिद्ध नरेश हुए। मलाया में पुरातत्त्व विभाग की खोजों और उत्खनन कार्यों से तथा उपलब्ध अभिलेखों से विदित होता है कि ईस्वी सन् की चौथी और पाँचवीं सदियों में उत्तर और पश्चिम भारत से आने वालों ने मलाया प्रायद्वीप में अनेक हिन्दू उपनिवेश स्थापित किये। इन उपनिवेशों में लांग-क्या-सू, कमलंक या कर्मरंग, कलशपुर, काल और पाहंग, नामक हिन्दू राज्य विद्यमान थे। अनेक भारतीय थल और जल मार्ग से इन उपनिवेशों में गये और वहाँ स्थायी रूप से बस गये। मलाया प्रायद्वीप के पश्चिमी तट पर जो भारत की ओर है मल्लका, वेलेजली प्रान्त, टकुआपा और लाण्य तथा तनसेरिम नदियों के डेल्टाओं में अनेक भारतीय बस गये थे। भारतीय आकृति के अनेकानेक लोग आज भी टकुआपा के समीप बहुसंख्या में विद्यमान हैं। मलाया प्रायद्वीप के पूर्वी तट पर भी भारतीयों ने अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। यहाँ नाखोन श्री धम्मराट और पारलुंग में आज भी उन भारतीय ब्राह्मणों की बस्तियाँ विद्यमान हैं जिनके पूर्वज भारत से मलाया आये थे। नाखोन भी धम्मराट भारतीयों का बौद्ध उपनिवेश था क्योंकि यहाँ बौद्ध धर्म का एक महान स्तूप और अन्य स्मारक हैं। इससे कुछ उत्तर की ओर चैया उपनिवेश था। इसमें पहले ब्राह्मण धर्म प्रचलित था, बाद में बौद्ध धर्म।

मलाया में गुनोङ जिराई के पास एक हिन्दू मन्दिर और चौथी सदी के एक बौद्ध मन्दिर के अवशेष, अनेक पाषाण प्रतिमाएं, वेलेजली जिले के उत्तरी भाग में बौद्ध मन्दिरों और उनके स्तम्भों के अवशेष, पेराक राज्य से शलिनसिङ से प्राप्त गरुड़वाहिनी विष्णु प्रतिमा, संस्कृत के शिलालेख, उपर्युक्त वर्णित उपनिवेश आदि इस बात के प्रमाण हैं कि मलाया प्रायद्वीप में भारतीय भाषा, धर्म और संस्कृति व्यापक रूप में प्रचलित थे।

सुमात्रा और श्रीविजय राज्य- मलाया प्रायद्वीप से दक्षिण-पूर्व की ओर सुमात्रा द्वीप है। आजकल यह इण्डोनेशिया देश का अंग है। यहाँ कलिंग से आये भारतीयों ने अपना

उपनिवेश ईस्वी सन् पूर्व ही स्थापित कर लिया था। प्राचीन काल में भारतीय इसे स्वर्णद्वीप कहते थे। यहाँ श्रीविजय नामक राज्य था। कम्पूर नदी के तट पर श्रीविजयनगर इस राज्य की राजधानी था और यह राज्य ईस्वी सन् की चतुर्थ सदी के पूर्व स्थापित हो चुका था और तीन सदियों तक यह वैभवशाली और प्रतापी राज्य रहा। श्रीविजय राज्य के प्रमुख नरेशों में जयनाग विशेष उल्लेखनीय है। यह सातवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यहाँ राज्य करता था। उसने अपनी दिग्विजयों से श्री विजयराज्य को विस्तृत किया और सन् 686 में उसने जावा द्वीप को भी अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। सुमात्रा के पार्श्ववर्ती कतिपय अन्य द्वीप और मलाया का कुछ प्रदेश श्रीविजय साम्राज्य के अन्तर्गत थे। चीनी यात्री इत्सिंग जो भारत आया था, वह सन् 688 से 695 तक श्रीविजय में ठहरा था। भारत आने वाले अनेक चीनी विद्वान श्रीविजय में कुछ वर्षों तक निवास कर संस्कृत का अच्छा अध्ययन कर लेते थे। स्वयं इत्सिंग ने भी यहीं संस्कृत का अध्ययन किया था। इत्सिंग के वर्णन के अनुसार श्रीविजय राज्य में बौद्ध धर्म की प्रधानता थी। श्रीविजय भारत और चीन के मध्य प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था और यहाँ के जलपोत भारत आते-जाते थे। सन् 675 से 775 तक की अवधि के श्रीविजय के राजाओं ने विस्तारवादी नीति अपनायी और अपने कई दूत चीनी सम्राट को भेजे। आठवीं शताब्दी के बाद श्रीविजय राज्य का अन्त हो गया और सुमात्रा पर शैलेन्द्र नरेशों का आधिपत्य स्थापित हो गया।

जावा या यवद्वीप- आधुनिक इण्डोनेशिया देश का एक अन्य प्रमुख भाग जावा भी है। जावा और सुमात्रा दोनों ही बड़े-बड़े द्वीप हैं जो एक-दूसरे के समीप हैं। प्राचीन काल में जावा को यवद्वीप कहते थे। भारतीय यहाँ ईस्वी सन् की प्रथम सदी में पहुँच गये थे। कलिंग प्रदेश से भारतीयों के औपनिवेशीकरण की लहर यहाँ आयी थी। उन्होंने यहाँ अपना एक उपनिवेश और स्वतन्त्र हिन्दू राज्य स्थापित कर लिया था। सन् 132 में यहाँ के देववर्मन नामक हिन्दू राजा ने चीनी सम्राट को अपना राजदूत भेजा था। धीरे-धीरे जावा में चौथी से आठवीं सदी तक के युग में अनेक हिन्दू राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ। चीनी लेखकों के अनुसार इन राज्यों में चोपो, होलो तान, होलिंग आदि प्रमुख थे। चार संस्कृत अभिलेखों के अनुसार पश्चिमी जावा में पाँचवीं सदी में पूर्णवर्मा नामक प्रसिद्ध राजा था। उसके पूर्वजों ने चन्द्रभागा नगर और उसने गौतमी नहर जन-कल्याण के लिए निर्मित करायी थी। आठवीं सदी में सन्नह ने जावा में एक अन्य हिन्दू राज्य स्थापित किया जिसका प्रसिद्ध प्रतापी नरेश संजय था। उसने अपनी विजय से अपने राज्य का विस्तार जावा द्वीप से परे बाली, सुमात्रा आदि द्वीपों पर किया। शैलेन्द्र साम्राज्य के उत्कर्ष होने पर नवीं सदी तक जावा इस साम्राज्य का अंग रहा और शैलेन्द्र नरेशों के पतन के बाद वह पुनः स्वतन्त्र हो गया और जावा में एक के बाद तीन हिन्दू राज्य स्थापित हुए। ये केदिरी, सिंहसरी और मजपहित के राज्य थे। मजपहित का राज्य तेरहवीं सदी के अन्त में राजा विजय ने स्थापित किया था। मजपहित नरेशों ने पार्श्ववर्ती द्वीपों को जीत लिया और सन् 1365 में मजपहित साम्राज्य में समस्त मलाया प्रायद्वीप और मलाया द्वीपसमूह सम्मिलित कर लिया गया। मजपहित नरेशों में जयनगर और राजसनगर प्रख्यात थे। राजसनगर के अधीन जावा का राज्य अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर था।

मूर्तिकला में भी जावा भारत से पीछे नहीं रहा। विष्णु, शिव, ब्रह्मा, दुर्गा, महिषमर्दिनी, बुद्ध, बोधिसत्व, पद्मपाणि, मैत्रेय आदि देवी-देवताओं की विशाल कलात्मक पाषाण प्रतिमाएं जावा में निर्मित की गयीं। मन्दिर की दीवारों और स्तम्भों पर रामायण तथा महाभारत की अनेक

गाथाओं और दृश्यों को उत्कीर्ण किया गया; जैसे-महिषासुर वध, बालि वध, सीताहरण, सीता-हनुमान भेंट आदि। बौद्ध और हिन्दू देवी-देवताओं की काँसे की सुन्दर आकर्षक प्रतिमाएं भी जावा में ढाली जाती थीं। इनमें से आज भी अनेक विद्यमान हैं।

परन्तु जावा की कला का सर्वश्रेष्ठ सजीव स्मारक बोरोबुदुर है। यह केन्द्रीय जावा के मैदान में साँची स्तूप के समान एक पहाड़ी पर स्थित बौद्ध स्तूप और चैत्य है। यह इण्डोनेशिया की आधुनिक राजधानी जकार्ता से लगभग 57 किलोमीटर दूर पश्चिम में है। शैलेन्द्र सम्राट ने इसे सन् 750 में निर्मित किया था। बोरोबुदुर का स्तूप कुल वृत्ताकार चबूतरे से बना है। ये चबूतरे एक के ऊपर एक सीढ़ीनुमा हैं और ऊपर का प्रत्येक चबूतरा अपने से नीचे वाले चबूतरे की अपेक्षा सिमटा हुआ और कम चौड़ा है। सबसे नीचे के वृत्ताकार चबूतरे का घेरा लगभग 117 मीटर है और सबसे ऊपर के चबूतरे का घेरा लगभग 25 मीटर है। चार वृत्ताकार चबूतरों में ठोस पाषाण का जंगला है। एक से दूसरे चबूतरे पर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं और उनके प्रवेशद्वार मूर्तियों से अलंकृत हैं। विविध गलियारों, ताखों या गवाक्षों, स्तम्भों और फलकों पर बुद्ध के जीवन की अनेक घटनाओं तथा जातक कथाओं के दृश्य, तीर्थयात्राओं के जुलूस, देवताओं, राजाओं, सामन्तों, ब्राह्मणों, मानवों, पशु-पक्षियों आदि की आकृतियाँ, कलात्मक ढंग से उत्कीर्ण की गयी हैं। अनेक स्थानों पर ध्यानी, बुद्ध और बोधिसत्वों की प्रस्तर प्रतिमाएं हैं। सबसे ऊपर का वृत्ताकार चबूतरा घण्टाकार या छिद्रित गुम्बज के समान चैत्य है, जिसमें धर्मचक्र मुद्रा में बुद्ध की प्रतिमा है। ऐसी मूर्ति अन्य नीचे के दो चबूतरे के चैत्य में भी हैं।

बोरोबुदुर का यह विशाल स्तूप एक आश्चर्यजनक इमारत है। इसकी पाषाण की मूर्तियों और उत्कीर्ण दृश्यों में श्रद्धा, प्रेम और भावनाओं की पर्याप्त अभिव्यक्ति है। यहाँ की प्रतिमाएं और तक्षणकला भारत और जावा की सम्मिलित कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। ये शिल्पी के उच्चतम कला-चातुर्य और श्रेष्ठ कल्पना को प्रदर्शित करते हैं। बोरोबुदुर की कला सरल, आकर्षक और यथार्थवादी है। डॉ. वोगल का मत है कि बौद्ध ज्ञान और दर्शन को कहीं भी इतने विस्तार और विवरण में मूर्तिकला के माध्यम से नहीं दिखाया गया है जितना कि बोरोबुदुर में। वहाँ मानसिक शान्ति को एकमात्र लालित्य में प्रस्तुत किया गया है।

बाली द्वीप- पूर्वी द्वीप समूहों में बाली भी एक द्वीप है। इसमें आज भी हिन्दू धर्म और संस्कृति विद्यमान है। इसलिए बृहत्तर भारत में इसका महत्त्व अधिक है। चीनी विवरणों में विदित होता है कि हिन्दुओं ने यहाँ अपना उपनिवेश स्थापित कर लिया था और चौथी सदी में बाली में हिन्दू राज्य स्थापित हो चुका था। छठी शताब्दी में यहाँ कौण्डिन्य वंश के हिन्दू राजा राज्य करते थे। सन् 518 में यहाँ के राजा ने चीनी सम्राट की राजसभा में अपना एक राजदूत भेजा था। चीनी यात्री इत्सिंग ने भी अपने यात्रा वर्णन में बाली का वर्णन किया है। उस समय यहाँ बौद्ध धर्म के मूल सर्वास्तिवाद सम्प्रदाय का प्रचार था। दसवीं सदी में बाली में उग्रसेन केसरी आदि हिन्दू नामधारी राजाओं ने शासन किया। पन्द्रहवीं सदी में जावा के हिन्दू नरेश मुस्लिम आक्रमणों से अपनी रक्षा करने में असमर्थ होने के कारण बाली द्वीप में चले गये। फलतः बाली में हिन्दू धर्म आज भी अपनी प्राचीन परम्पराओं सहित जीवित है। वहाँ आज भी हिन्दू मन्दिर हैं, जिनमें विष्णु, शिव, दुर्गा, काली, कृष्ण आदि देवी-देवताओं की पूजा और उपासना होती है। विष्णु, महादेव, नन्दी, गणेश, पार्वती, इन्द्र, कृष्ण आदि की प्रतिमाएं यहाँ हैं। हिन्दुओं के वेद, रामायण और महाभारत का अध्ययन-अध्यापन होता है परन्तु वे संस्कृत में नहीं हैं, अपितु बाली

द्वीप की भाषा में है। बाली का समाज भी हिन्दुओं के चतुर्वर्ण व्यवस्था के समान, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्गों में विभाजित है। ब्राह्मण दो जातियों में विभक्त हैं : शैव मतावलम्बी और बौद्ध मतावलम्बी। क्षत्रिय पाँच उपजातियों में विभाजित हैं। वैश्यों में आर्य मुख्य जाति है। शूद्रों को हीन या अपवित्र नहीं माना जाता। विभिन्न जातियाँ या वर्ग अपना व्यवसाय परिवर्तन कर सकते हैं। जातियों की दृढ़ अपरिवर्तनशीलता बाली में नहीं है। अन्तर्जातीय विवाह वहाँ होते हैं। पुरुषों को अपनी जाति में या अपने से नीचे की श्रेणी की जाति में विवाह करने का अधिकार है, पर स्त्रियों को ऐसा अधिकार नहीं है। यदि कोई स्त्री अपने से नीची श्रेणी की जाति के पुरुष से विवाह करे तो वह जघन्य अपराध माना जाता है। बाली में ऊंची जातियों को कतिपय विशेष अधिकार दिये गये हैं। बाली द्वीप की स्थापत्यकला और मूर्तिकला भी भारतीय कला के सिद्धान्तों पर विकसित हुई है। बाली की कला पर भारतीय कला की गहरी छाप है।

बोर्नियो- पूर्वी द्वीपसमूह में बोर्नियो द्वीप सबसे बड़ा है। इसका एक भाग इण्डोनेशिया राज्य के अन्तर्गत है। यह बाली द्वीप के समीप है। बोर्नियो में ईस्वी सन् की प्रथम सदी में हिन्दुओं ने अपना उपनिवेश स्थापित कर लिया था। बोर्नियो में पुरातत्त्व सम्बन्धी जो प्रमाण प्राप्त हुए हैं, उनसे विदित होता है कि पश्चिमी बोर्नियो में और कपुआस नदी की घाटी में हिन्दुओं ने अपने कई उपनिवेश स्थापित किये। यहाँ महकम नदी के तट पर संस्कृत में उत्कीर्ण चार अभिलेख सन् 400 ईस्वी के लगभग की अवधि के प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों में बोर्नियो के राजा अश्ववर्मा के पुत्र राजा मूलवर्मा के दान-पुण्य और यज्ञों का विवरण है। नरेश मूलवर्मा या मूलवर्मन ने बाहु स्वर्णकम नामक यज्ञ किया था और उस समय उसने ब्राह्मणों को बीस सहस्र गायें दान में दी थीं। इस यज्ञ में प्रयुक्त होने के लिए यूप या पाषाण स्तम्भ निर्मित किये गये थे और इस यज्ञ के चिर स्मरणार्थ इन स्तम्भों पर उपर्युक्त चार अभिलेख उत्कीर्ण कर दिये गये। बारहवीं सदी में बोर्नियो द्वीप जावा नरेशों के आधिपत्य में रहा। बोर्नियो में उपलब्ध भग्नावशेषों और चीनी अनुश्रुतियों के आधार पर यह माना जाता है कि चौदहवीं सदी तक बोर्नियो में हिन्दू राज्यों का अस्तित्व विद्यमान रहा। इसी द्वीप में भारतीय संस्कृति और धर्म का अत्यधिक प्रचार हुआ। यहाँ पौराणिक धर्म और बौद्ध धर्म दोनों ही प्रचलित रहे। यहाँ के तेलेन नदी के समीप पूर्व में कोम्बेंग की गुफाएं हैं। इनमें ब्रह्मा, शिव, नन्दी, गणेश, स्कन्ध, महाकाल, अगस्त्य आदि की पाषाण प्रतिमाएं उपलब्ध हुई हैं जो सम्भवतः पार्श्ववर्ती हिन्दू मन्दिरों की होंगी। बोर्नियो की स्थापत्यकला और मूर्तिकला में स्थानीय तत्त्व विद्यमान हैं, परन्तु फिर भी उनका विकास भारतीय कला के आधार पर हुआ। भारतीय संस्कृति आज भी वहाँ है।

फिलीपाइन द्वीपसमूह- दक्षिणी भारत में हिन्दू प्रशान्त महासागर में स्थित फिलीपाइन द्वीपसमूह में भी पहुँचे और उन्होंने वहाँ उपनिवेश स्थापित कर लिये। आधुनिक अन्वेषणों से इस कथन की पुष्टि होती है। फिलीपाइन द्वीपसमूह की हस्तशिल्प कलाएं, मुद्राएं, गाथाएं, लोकगीत व कथाएं अनेक सामाजिक और धार्मिक प्रथाएं, परम्पराएं और रीति-रिवाज भारतीय प्रभाव प्रकट करते हैं। फिलीपाइन निवासियों की लिपियों और दक्षिण भारत की लिपियों में भी बहुत कुछ समानता है। नामकरण, पूजा-अर्चन और धार्मिक क्रिया-विधियों में भी उन्होंने भारतीयों का अनुकरण किया है। लूजन समुद्र तट और मनीला की खाड़ी के समुद्र तट पर स्थित कतिपय स्थानों के नामों का उद्गम संस्कृत भाषा के शब्द हैं। गणेश की मूर्ति प्राप्त होना यह प्रमाणित करता है कि फिलीपाइन के निवासी पौराणिक धर्म को मानते थे। लूजन की पर्वतीय जातियाँ

आज भी भारत के प्रारम्भिक वैदिक देवताओं की पूजा करती हैं। फिलीपाइन द्वीपसमूहों से आगे प्रशान्त महासागर के अन्य द्वीपों में भी भारतीय संस्कृति की छाया पड़ी। उनकी धार्मिक और सामाजिक प्रथाओं पर भारतीय संस्कृति का आभास दृष्टिगोचर होता है। हवाई द्वीप का "हुला" नृत्य और समोआ का "शिव" नृत्य बंगाल के कतिपय लोक नृत्यों के समान है।

चीन- भारतीय संस्कृति और बौद्ध धर्म मध्य-एशिया में खोतान से चीन ईसा की प्रथम सदी में पहुँचे। इससे चीन पर गहन प्रभाव पड़ा। ईसा पूर्व की दूसरी शताब्दी में यू-ची शासकों ने राजदूत के द्वारा चीनी सम्राट को उसकी राज्यसभा में बौद्ध धर्म ग्रन्थ भेंट किये। बाद के चीनी सम्राट इससे इतने प्रभावित हुए कि सन् 65 ईस्वी में एक चीनी सम्राट ने चीन के हेतु बौद्ध धर्म प्रचारक लाने के लिए अपने राजदूत भारत भेजे। फलतः चीन विद्वान बौद्ध भिक्षु कश्यप, मातंग और धर्मरत्न सर्वप्रथम 68 ईस्वी में चीन पहुँचे। चीनी सम्राट मिंगती (सन् 57 से 76 ईस्वी) ने उनके निवास हेतु अपनी राजधानी में पो-मा-सो नामक चीन का सर्वप्रथम बौद्ध विहार निर्मित किया। इन तीन बौद्ध भिक्षुओं ने बौद्ध धार्मिक ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया और उन्होंने चीन में प्रचार हेतु बौद्ध सिद्धान्तों को संक्षिप्त आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया। चीनी सेनापति पान चाओ और उसके पुत्र पानयांग ने ईस्वी सन् की दूसरी सदी में चीन की पश्चिमी सीमा से लेकर मध्य एशिया और काला सागर तक अपनी सामरिक विजयों से चीनी साम्राज्य स्थापित कर लिया था। फलतः भारत, मध्य एशिया और चीन का मार्ग यातायात के लिए पूर्ण रूप से खुल गया और चीनी आधिपत्य में वह सुरक्षित भी रह सका। इसका लाभ उठाकर पर्सिया का एक बौद्ध राजकुमार तीन भारतीय बौद्धों सहित चीन गयां और बौद्ध धर्म का प्रचार किया एवं बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। सन् 265 ईस्वी तक चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार धीरे-धीरे हुआ परन्तु तीसरी सदी से लेकर छठी सदी तक यह कार्य तीव्रगति से हुआ। तीसरी सदी के अन्त तक चीन में 180 विहार थे जिनमें 3700 भिक्षु थे। चौथी सदी के अन्त तक चीन में 17068 बौद्ध मन्दिर थे और छठी सदी में तीन सहस्र भारतीय चीन में बस गये थे। छठी सदी के प्रारम्भ के चीनी सम्राट नू ती (सन् 502 से 509) अशोक के समान बौद्ध धर्म का उदार संरक्षक रहा। फलतः इस समय तक चीन का प्रत्येक गृह बौद्ध हो चुका था और तीस हजार बौद्ध मन्दिर एवं बीस लाख बौद्ध पुरोहित हो गये। इसके बाद सांग वंश का शासनकाल (सन् 618 से 907 ईस्वी) चीन के इतिहास में बौद्ध धर्म का स्वर्णयुग माना जाता है। इस समय अनेक बौद्ध स्मारक निर्मित हुए, और चीन में बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रचार हुआ।

चीन ने अपना धर्म परिवर्तन करके नवीन धर्म-ग्रहण करने वाले व्यक्ति के समान अत्यधिक उत्साह प्रदर्शित किया। चीनियों ने बौद्ध धर्म के अध्ययन और उसके सिद्धान्तों एवं दर्शन के तत्त्वों को जानने का अनोखा उत्साह प्रकट किया। चीनी धार्मिक यात्री और विद्वान वर्षा-ऋतु की उमड़ती सरिताओं के समान भारत में प्रवेश करने लगे। चीनी बौद्ध भिक्षुओं के अनेक समुदाय भारतीय बौद्धों के धार्मिक विश्वासों, आचार-विचारों और रूढ़ियों का स्वयं अध्ययन करने तथा बौद्ध धर्म के हस्तलिखित धर्म ग्रन्थ, स्मारक और मूर्तियों को संग्रह करने हेतु कष्टमय यात्रा करते हुए थल व जल मार्ग से भारत में आने-जाने लगे। बहुसंख्यक चीनी बौद्ध यात्री, फाहियान, ह्वेनसांग, युंग-यून, इत्सिंग आदि, भारत आये। ऐसे धर्म जिज्ञासु चीनियों ने भारत में बौद्ध विहारों में रहकर पालि और संस्कृत भाषा को सीखा एवं बौद्ध धर्म तथा साहित्य का अध्ययन किया और यहाँ से गम्भीर ज्ञान, बौद्ध धर्म के संग्रहित ग्रन्थों एवं सामग्रियों को

लेकर चीन लौट गये। इन ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ। इस अनुवाद कार्य और बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये चीनियों ने अनेक भारतीय विद्वानों को चीन आने का निमन्त्रण भी दिया। सैकड़ों भारतीय विद्वान चीन गये, वे वहाँ बस गये और उन्होंने इस पवित्र कार्य के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया। इनमें सबसे अधिक लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान कुमारजीव, गुणवर्मन, बोधिवर्म और परमार्थ प्रमुख थे। तीसरी सदी में चीन में बौद्ध धर्म का सबसे प्रसिद्ध भारतीय प्रचारक धर्मरक्ष था। उसे संस्कृत और चीनी भाषाओं सहित 36 भाषाओं का ज्ञान था। उसके पाँचवीं सदी के प्रारम्भ में कुमारजीव ने दस वर्ष की अवधि में 106 संस्कृत के प्रामाणिक बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। चीन में बौद्धों के महायान सम्प्रदाय का प्रचार कुमारजीव द्वारा हुआ। उसके पाण्डित्य की कीर्ति समस्त चीन में इतनी अधिक फैल गयी थी कि उससे शिक्षा ग्रहण करने और धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए दूर-दूर से चीनी विद्यार्थी, जिज्ञासु और भिक्षु उसके पास जाते थे। कुमारजीव सन् 401 से 412 तक चीन में रहा और वहीं उसका देहावसान हो गया। कुमारजीव के अनुरोध पर जो भारतीय विद्वान बौद्ध ग्रन्थों का चीनी अनुवाद करने चीन गये थे उनमें पुण्यत्रात, संघभूति, बुद्धयश, गौतमसंघदेव, धर्मयश, विमलाक्ष, बुद्धजीत, गुणवर्मन, गुणभद्र और बुद्धवर्मन विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश कश्मीरी विद्वान थे। धर्मक्षेम नामक बौद्ध विद्वान मध्य भारत से और सन् 526 में उपसुनय और परमार्थ नामक बौद्ध पण्डित उज्जैन से चीन जलमार्ग से गये थे। इसी समय दक्षिण भारत से भी बोधिधर्म नामक विद्वान चीन गया था। छठी सदी में ज्ञानभद्र, जिनयश और यशोगुप्त बंगाल और असम से चीन गये थे। छठी और सातवीं सदी में नालन्दा विश्वविद्यालय से भी प्रभाकरमित्र, सुधाकरसिंह, वज्रवोधि, बोधिरुचि, अमोधवज् आदि विद्वान चीन गये। ऐसा माना जाता है कि चीन जाने वाला अन्तिम भारतीय विद्वान और महान अनुवादक धर्मदेव था, जिसका देहावसान सन् 1001 में हुआ। इन बौद्ध विद्वानों ने विभिन्न चीनी नगरों में अपने निवास-स्थान बना लिये और वहीं अपने धर्म-प्रचार और अनुवाद के कार्य किये। फलतः भारतीय धर्म, साहित्य और दर्शनशास्त्र के अनेक महत्त्वशाली ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद हो गया। जापानी विद्वान नानजियो ने मिगवंशीय त्रिपिटिक की प्रसिद्ध सूची में चीनी भाषा में अनुवादित 1662 संस्कृत के ग्रन्थों का उल्लेख किया है। यह एक विलक्षण तथ्य है, ऐसे बौद्ध ग्रन्थों के चीनी अनुवाद उपलब्ध हैं जिनकी मूल प्रतियाँ भारत में अब अप्राप्य हैं। विश्व में शायद ही किसी अन्य देश ने एक देश के धर्म, साहित्य और दर्शन को इस रूप में अपनाया है।

बौद्ध धर्म के साथ-साथ भारत की मूर्तिकला और स्थापत्यकला भी चीन पहुँची और चीन की स्थानीय कला को प्रभावित किया। भारत के समान चीन में भी बौद्ध गुफा-विहार और मूर्तियाँ चट्टानों में से काटकर बनायी जाती थीं। चीन में तुनह्वांग में पर्वत को काटकर बौद्ध गुफा विहार ईस्वी सन् की चौथी से छठी सदी तक के युग में बनाये गये। ये गुफाएं लगभग 911 मीटर दूर तक फैली हुई हैं। ये भारत की अजन्ता, एलोरा और बाघ की गुफाओं के समान हैं। ये सहस्र बुद्ध गुफाएं कहलाती हैं। इनमें चट्टानों में से काटी गयी अनेक प्रतिमाएं हैं जो महायान सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखती हैं। इन मूर्तियों पर गांधार शैली और गुप्त कला की मूर्तियों का स्पष्ट प्रभाव है। इन गुफाओं में बुद्ध, बोधिसत्वों, अर्हतों, देवताओं और मानव के दैनिक जीवन के कार्यों के चित्र भी हैं। इनमें भारतीय कला, गान्धार कला और चीनी कला का सम्मिश्रण हो गया है। चीनी बौद्धों ने मन्दिरों के स्थान पर चीनी पगोडा बनाये। इस पगोडा की निर्माण शैली

कनिष्क द्वारा निर्मित प्रसिद्ध स्मारक स्तम्भ की निर्माण शैली का विकसित रूप है। कई चीनी यात्रियों ने इस स्तम्भ को देखकर उसकी प्रशंसा की थी और उसका अनुकरण उन्होंने चीन में किया। प्रसिद्ध कलाकार श्री नन्दलाल बोस का मत है कि चीन में कि-फोंग प्रसिद्ध पगोडा में जो मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं, वे बंगाली हैं। इसी प्रकार चीन के संगीत और विज्ञान पर भी भारतीय प्रभाव है। भारतीय गणित और ज्योतिष के अध्ययन को वहाँ प्रोत्साहन मिला। तुनह्वांग की एक गुफा में एक पुस्तक भण्डार भी मिला है जिसमें सहस्रों पुस्तकें हैं।

ये पुस्तकें चीनी, तिब्बती, उडगुर और संस्कृत भाषा में, ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों में लिखी गयी हैं। प्रत्येक भारतीय औषधियों का उपयोग भी चीन में होने लगा था। चौदहवीं सदी तक चीन में बौद्ध विहार, मूर्तियाँ, चैत्य और गुफाएं निर्मित होती रहीं तथा पुरानी गुफाओं और विहारों का जीर्णोद्धार होता रहा। ये सब तथ्य इस बात के प्रमाण हैं कि चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार ही नहीं हुआ, अपितु वहाँ हिन्दू भाषा, दर्शन और संस्कृति का भी खूब प्रचार हुआ और दोनों देशों में नियमित सामुद्रिक व्यापार भी होने लगा था।

प्रश्न 5 भारत के विज्ञान और प्रौद्योगिकी के वैश्विक प्रभाव का वर्णन कीजिए।

उत्तर- प्राचीन काल में तथा आधुनिक काल में भी भारत देश विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विश्व को योगदान देता रहा है। हाल ही में एशिया महाद्वीप का सबसे बड़ा पूर्ण रूप से संचालन योग्य ऑप्टिकल दूरबीन नैनीताल उत्तराखण्ड में पर्वत चोटी पर स्थापित की गई। इसकी स्थापना स्वायत्त अनुसन्धान संस्थान आर्यभट्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट ऑफ ऑब्जरवेशन साइंस द्वारा 2016 में बेल्जियम सरकार के समर्थन से की गई। इस टेलिस्कोप ने खगोल विज्ञान क्षेत्र में भारत को वैश्विक रूप से स्थापित किया। इसी प्रकार 14 जुलाई, 2023 को भारत में चन्द्रयान तीन का सफल प्रक्षेपण किया। इसकी लांचिंग सतीश धवन, अन्तरिक्ष केन्द्र श्रीहरिकोटा से की गई। यदि यह यान चन्द्रमा पर लैंडिंग कर लेता है तो भारत विश्व में ऐसा करने वाला चौथा देश बन जाएगा। इसी प्रकार कोविड-19 के समय भारत ने एक वैश्विक वैक्सीन मैन्युफैक्चरिंग के रूप में अनेक देशों को खुराकें उपलब्ध कराई हैं।

भारत सरकार के विभिन्न वैज्ञानिक मंत्रालय और विभाग विश्व को एक बेहतर और अधिक विज्ञान व टेक्नोलॉजी में स्थान बनाने में सहयोग दे रहे हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिक मंत्रालय ने, ऊर्जा, जल, स्वास्थ्य, खगोल विज्ञान सहित अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में वैश्विक विज्ञान और प्रौद्योगिकी साझेदारी विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (DST) की प्रौद्योगिकी मिशन योजनाएं स्वच्छ ऊर्जा और जल के क्षेत्रों में अनुसन्धान विकास और नवाचार पर केन्द्रित हैं। स्वच्छ ऊर्जा, अनुसन्धान और जल प्रौद्योगिकी अनुसन्धान पहलों के तहत भारत विश्व को लगातार अपना अमूल्य योगदान दे रहा है।

भारत विश्व के विभिन्न देशों के साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी साझेदारी के साथ अमेरिका, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका के देशों में वैश्विक रूप से सहायता कर रहा है। ऊर्जा, स्वास्थ्य, सेवाओं तथा आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस (A.I.) में भी भारत सक्रिय होकर विश्व के उन्नत देशों के समान खड़ा है।

प्राचीन काल से ही भारत ने विश्व को इस क्षेत्र में बहुत-कुछ सहायता की है। भारतीय विज्ञान की परम्परा विश्व की प्राचीनतम वैज्ञानिक परम्पराओं में एक है। भारत में विज्ञान का

उद्भव ईसा के 3000 वर्ष पूर्व हुआ है। प्राचीन काल में चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में चरक, सुश्रुत, खगोल विज्ञान व गणित के क्षेत्र में आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त तथा रसायन विज्ञान के क्षेत्र में नागार्जुन की खोजों का विश्व को अपूर्व योगदान है जिनकी खोजों का प्रयोग आज भी किसी न किसी रूप में हो रहा है।

भारत में आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी का स्वरूप अत्यधिक विकसित हो चुका है क्योंकि आधुनिक युग में जगदीश चन्द्र बसु, प्रफुल्ल चन्द्र राय, CV रमण, सत्येन्द्रनाथ बोस, मेघनाथ साहा, श्रीनिवास रामानुजन, हरगोविन्द खुराना आदि का भौतिकी, रसायन, यांत्रिकी, चिकित्सा विज्ञान, खगोल विज्ञान आदि क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

प्राचीन समय से ही आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, बोधायन, चरक, सुश्रुत, नागार्जुन, कणाल से लेकर सवाई जयसिंह तक वैज्ञानिकों की एक लम्बी परम्परा विकसित हुई।

प्राचीन भारत में लगभग 1000 वर्ष पूर्व आर्यभट्ट ने पृथ्वी की गोल आकृति और इसके अपनी धुरी पर घूमने की पुष्टि कर दी थी। आइजक न्यूटन से 1000 वर्ष पूर्व ही ब्रह्मगुप्त के पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की पुष्टि कर दी थी। यह एक अलग बात है कि किन्हीं कारणों से इनका श्रेय पाश्चात्य वैज्ञानिकों को मिला।

भारतीय खगोल विज्ञान का उद्भव वेदों से माना जाता है। वैदिक आर्य सूर्य की उत्तरायण और दक्षिणायन गति से परिचित थे। वैदिककालीन खगोल विज्ञान का एकमात्र ग्रन्थ 'वेदांग ज्योतिष' है, इसकी रचना लगध नामक ऋषि ने ईसा से लगभग 100 वर्ष पूर्व की थी। महाभारत में खगोल विज्ञान से सम्बन्धित जानकारी मिलती है। महाभारत में अमावस्या और पूर्णिमा का ज्ञान था। भारत के इस प्रकार प्राचीन व अर्वाचीन विज्ञान और प्रौद्योगिकी का लाभ विश्व के सभी देश उठा रहे हैं।

प्रश्न 6 इन भारतीय महाकाव्यों के वैश्विक प्रभाव का वर्णन कीजिए- (अ) **रामायण,** (ब) **महाभारत**

उत्तर-

(अ) रामायण

रामायण प्राचीन भारत का एक संस्कृत महाकाव्य है जो हिन्दू धर्म के महत्त्वपूर्ण महाकाव्यों में सर्वोच्च स्थान रखता है। इसकी रचना महर्षि वाल्मिकी ने की थी। यह महाकाव्य राम की सौतेली माँ कैकेई के अनुरोध पर उनके पिता राजा दशरथ द्वारा कहे गए राम के चौदह वर्ष के वनवास का वर्णन करता है। राम अपनी पत्नी सीता और लघु भ्राता लक्ष्मण के साथ भारतीय उपमहाद्वीप के जंगलों की यात्रा; लंका के राजा द्वारा सीता का अपहरण जिसके परिणामस्वरूप युद्ध हुआ और हर्षोल्लास और उत्सव के बीच सीता के साथ राम की अंततः अयोध्या वापसी होने तथा उन्हें राजा का मुकुट पहनाने तक के कथानक पर आधारित है।

यद्यपि रामायण की रचना की मूलतिथि अज्ञात है तथापि पाठ के प्रारम्भिक चरण के बारे में विद्वानों का अनुमान 8वीं से 4थी शताब्दी ईसापूर्व तक है। रामायण विश्व साहित्य के सबसे बड़े प्राचीन महाकाव्यों में से एक है, इसमें लगभग 24 हजार श्लोक हैं। यह 7 अध्यायों में विभक्त है।

रामायण के 7 अध्याय (कांड) हैं-

1. *बालकाण्ड,*
2. *अयोध्या काण्ड,*

3. *अरण्य काण्ड,*
4. *किष्किन्धा काण्ड,*
5. *सुन्दर काण्ड,*
6. *युद्ध काण्ड,*
7. *उत्तरकाण्ड*

रामायण का वैश्विक प्रभाव- प्राचीन भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियों में से एक रामायण का वियतनाम को छोड़कर भारतीय उपमहाद्वीप और दक्षिण-पूर्व एशिया में कला और संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इस कहानी ने राज्य दरबारों और हिन्दू मन्दिरों की समृद्ध शैली में बड़े पैमाने पर काम करने के लिए अगले हजार वर्षों की परम्परा की शुरुआत की। इसने विभिन्न देशों व भारत के प्रदेशों की विभिन्न भाषाओं में बहुत से माध्यमिक साहित्य को भी प्रभावित किया। भारत में विशेष रूप से तमिल कवि कंबर द्वारा कंबर रामायण, कवि मोल्ला द्वारा तेलगू भाषा में मोल्ला रामायण, बुद्धरेड्डी द्वारा रंगनाथ रामायण तथा अवधी में गोस्वामी तुलसीदास की रामचरित मानस को न केवल कथा वरन राम के चरित्र और मर्यादाओं को उजागर किया।

रामायणकालीन दृश्यों को टैरीकोटा, प्रस्तर मूर्तियों, कांस्य तथा चित्रकला के माध्यम से भी न केवल भारत में वरन अन्य देशों में भी अपना प्रभाव डाला है। आज रामायण की कहानी का मंचन जिसे रामलीला के नाम से जाना जाता है, पूरे भारत में और दुनिया भर के कई स्थानों पर प्रवासी भारतीय या उनके वंशजों के बीच होता है जो रामायण के वैश्विक प्रभाव को दर्शाता है।

इण्डोनेशिया, विशेष रूप से जावा और बाली में रामायण क्षेत्र में नृत्य, नाटक और छाया कठपुतली प्रदर्शन के लिए कलात्मक अभिव्यक्ति लोकप्रिय है। बाली के हिन्दू मन्दिरों में रामायण के बाली नृत्य नाटक भी प्रदर्शित किये जाते हैं।

रामायण महाकाव्य के कई आधुनिक अंग्रेजी भाषा रूपान्तरण मौजूद हैं। रामायण नाटक के रूप में भी कई दिनों तक कई देशों में खेला जाता है। जटायु, सुग्रीव, शूर्पनखा, रावण, मेघनाद, कुम्भकरण, वानर सेना अभिमंचित होती है। मुखाकृति, पोषाक, अभिनय से नाम रूपों में रामायण का मंचन सर्वत्र होता है। फिलीपींस में 1970 के दशक में राम और सीता शीर्षक जैज बेले का निर्माण किया गया। नृत्य कला के माध्यम से भी रामायण का मंचन अनेक स्थानों पर होता है। चित्रकला में रामायण के पात्र चित्रित किये जाते हैं।

चलचित्र भी लंकादहन, रामराज्य, संपूर्ण रामायण, सीता कल्याणम, लव-कुश, हनुमान, रावण आदि पर विश्व में अनेक स्थानों पर निर्मित और प्रदर्शित होते हैं। टी.वी. व दूरदर्शन में भी ये प्रदर्शित होते हैं।

इस प्रकार विश्व संस्कृति को रामायण आज भी प्रभावित कर रही है।

(ब) महाभारत

महाभारत का कथा सार यह है कि महाभारत द्वापर युग में भाइयों के मध्य सम्पत्ति के लिए लड़ा गया युद्ध था। एक और धृतराष्ट्र और गांधारी के सौ पुत्र कौरव थे वहीं दूसरी ओर पाण्डु और कुन्ती तथा माद्री से उत्पन्न पाँच पुत्र पाण्डव थे। कौरवों का वध अधर्म का था जबकि पाण्डवों का पक्ष धर्म का था। सम्पत्ति के साथ ही यहाँ एक प्रसंग का उल्लेख करना आवश्यक

है कि कौरवों ने पाण्डवों को न केवल वनवास भेजा बल्कि उन्हें मारने के षडयन्त्र भी करे। किन्तु पाण्डवों का पक्ष धर्म का था एवं धर्म के साथ परमात्मा होते हैं सो वे बचते रहे। पाण्डवों का महल देखते समय द्रोपदी के दुर्योधन पर उपहास ने उसे उस स्थिति में ला खड़ा किया जब भरी सभा में गुरूजनों के मध्य पाण्डवों को छल से चौपड़ (जुए) के खेल में हराया एवं द्रोपदी को निर्वस्त्र करने की घटना हुई। तब द्रोपदी द्वारा पिछले जन्म में किए वस्त्र दान से परमेश्वर श्रीकृष्ण ने द्रोपदी की लाज बचाई। इसके बाद आरम्भ हुई युद्ध की भूमिका एवं महाभारत रचा गया। खेल हारने पर पाण्डवों को 12 वर्ष वनवास और एक साल अज्ञातवास में रहने की शर्त का अनुसार मिला।

पाण्डव और कौरवों के मध्य युद्ध होने के पहले के कई प्रसंग हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने दोनों पक्षों को समझाकर इस युद्ध को टालने का यथासंभव प्रयास किया किन्तु असफल रहे। युद्ध हुआ एवं श्रीकृष्ण की सेना कौरवों ने ली और श्रीकृष्ण स्वयं सारथी बनकर अर्जुन के साथ यानी पाण्डवों के पक्ष में रहे। ज्ञातव्य है कि कृष्ण भगवान ने स्वयं हथियार न उठाने की प्रतिज्ञा ले रखी थी। महाभारत के युद्ध के समय अर्जुन के भीतर अहिंसा का भाव उत्पन्न हुआ। अर्जुन ने अपने भाइयों एवं गुरुजनों पर हथियार उठाकर पाप न करने का विचार अपने सारथी भगवान श्रीकृष्ण के समक्ष रखा। तब भगवान कृष्ण ने कहा कि युद्ध करना ही पड़ेगा क्योंकि धर्म को अधर्म पर विजय प्राप्त करनी होगी। जुए की शर्त पूरी होने के बाद भी दुर्योधन ने शर्त के अनुसार एक इंच भूमि भी पाण्डवों को देने से अस्वीकार कर दिया। यह अधर्म था जिस पर विजय प्राप्त करनी थी।

कुरुक्षेत्र का उक्त युद्ध 18 दिनों चला। अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिए रथी बने श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता के उपदेश दिये। अंततः भारी मारकाट में कौरव पक्ष हार गया और युधिष्ठिर (पाण्डवों के ज्येष्ठ भ्राता) विजयी हुए। युधिष्ठिर हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ के राजा बने और उन्होंने 36 वर्षों तक शासन किया, जिसके बाद उन्होंने अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित के पक्ष में राजगद्दी छोड़ दी। इस प्रकार कुरुक्षेत्र के युद्ध में अधर्म पर धर्म की विजय हुई और पाण्डव पक्ष विजयी रहा।

महाभारत का यही सन्देश है कि धर्म की विजय होती है, साथ ही गीता में दिये श्रीकृष्ण के उपदेश सम्पूर्ण विश्व के लिए मार्गदर्शन हैं।

महाभारत का वैश्विक प्रभाव- रामायण के समान ही महाभारत, जिसे पंचमवेद माना गया है और जो व्यास द्वारा लिखित महाकाव्य है, विश्व के अनेक देशों में लोकप्रिय है। प्राचीन महाभारत के समान रामायण दोनों महाकाव्य अपना वैश्विक प्रभाव रखते हैं। वृहत्तर भारत में जिसमें ब्रह्मा, बंगलादेश, जावा, सुमात्रा इत्यादि देश थे, वहाँ भारतीय संस्कृति के कुछ अंश आज भी मिलते हैं। इसी प्रकार उपनिवेश काल में जो मजदूर सूरीनाम जैसे हिन्दू प्रमुख देशों में ले जाए गए थे और वहीं बस गए उनकी संतानों में हिन्दू संस्कृति अब भी विद्यमान है, ने रामायण के समान ही महाभारत पढ़ी तथा यह नृत्य, नाटक, कथा आदि के रूप में आज भी प्रचलित है। दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में महाभारत के अंश पढ़े और अभिमंचित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन भारत में जिन देशों से विदेशी व्यापार होता था और भारतीय वहाँ बस गए थे वहाँ भी महाभारत के माध्यम से हिन्दू संस्कृति जीवित है।

महाभारत में जीवन के प्रत्येक पहलू को अभिव्यक्त किया गया है। टेलीविजन तथा सिनेमा के कारण तथा अनुवाद के कारण महाभारत अधिक लोकप्रिय हुआ है। विश्व के अनेक देशों से व्यापारिक सम्बन्धों के अतिरिक्त सांस्कृतिक सम्बन्धों के कारण भी महाभारत का वैश्विक प्रसार हुआ। इसलिए महाभारत के सम्बन्ध में कहा जाता है-"जो महाभारत में नहीं है, वह भारत में भी नहीं है अर्थात् भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक आदि विशेषताओं का सर्वस्व महाभारत में विद्यमान है।"

प्रश्न 7 अंकोरवाट मन्दिर कहाँ स्थित है? इसका परिचय संक्षेप में देते हुए इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। क्या यह मन्दिर भारत का बहुरूपप्रदर्शक है?

उत्तर- अंकोरवाट हिन्दू मन्दिर कम्बोडिया में स्थित एक विशाल मन्दिर परिसर है और दुनिया का सबसे बड़ा धार्मिक स्मारक है। इसका पुराना नाम यशोधरपुर है। इसका निर्माण सम्राट सूर्यवर्मन द्वितीय (1112-53 ई.) के शासनकाल में हुआ था। यह हिन्दू मन्दिर है। यह कम्बोडिया के अंकोर में है। मीकांग नदी के किनारे सिमरिस नगर में बसा यह मन्दिर आज भी सबसे बड़ा मन्दिर है जो सैकड़ो वर्गमील में फैला हुआ है। राष्ट्र के लिए सम्मान के प्रतीक इस मन्दिर को कम्बोडिया के राष्ट्रध्वज में भी स्थान दिया गया है। यह मन्दिर मेरूपर्वत का प्रतीक है। इसकी दीवारों पर भारतीय हिन्दू धर्मग्रन्थों के प्रसंगों का चित्रण है। इन प्रसंगों में अप्सराएं बहुत सुन्दर चित्रित की गई हैं, असुरों और देवताओं के बीच समुद्र मन्थन का दृश्य भी दिखाया गया है। विश्व के सबसे लोकप्रिय पर्यटन स्थानों में से एक होने के साथ ही यह मन्दिर यूनेस्को के विश्व धरोहर स्थलों में से एक है। पर्यटक यहाँ केवल वास्तुशास्त्र का अनुपम सौन्दर्य देखने ही नहीं आते बल्कि यहाँ का सूर्योदय और सूर्यास्त देखने भी आते हैं। सनातनी लोग इसे पवित्र तीर्थस्थान मानते हैं। यह खमेर और चोल शैली में निर्मित है। यह विशाल भव्य मन्दिर भगवान विष्णु को समर्पित है।

यह मन्दिर एक ऊंचे चबूतरे पर स्थित है जिसमें तीन खण्ड हैं। इन तीनों खण्डों में सुन्दर मूर्तियाँ बनाई गई हैं और प्रत्येक खण्ड के ऊपर के खण्ड तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ भी बनाई गई हैं। प्रत्येक खण्ड में आठ गुम्बज हैं और ये सभी गुम्बज 180 फुट ऊंचे हैं। मुख्य मन्दिर के तीसरे खण्ड की छत पर स्थित है।

इस मन्दिर की विशालता का अन्दाजा आप इसी बात से लगा सकते हैं कि मन्दिर में प्रवेश के लिए एक विशाल द्वार बनाया गया है जो लगभग 1000 फुट चौड़ा है। मन्दिर साढ़े तीन किलोमीटर लम्बी पत्थर की दीवारों से घिरा हुआ है। इस दीवार के बाद 700 फुट चौड़ी खाई है जिस पर एक जगह 36 फुट चौड़ा पुल है। इस पुल से मन्दिर के पहले द्वार तक पहुँचा जा सकता है।

यह मन्दिर अनेक स्थलों पर भग्नावशेष में है क्योंकि बड़े-बड़े बरगद के पेड़ों ने कुछ मन्दिर व दीवारों को तोड़ दिया है।

अंकोरवाट मन्दिर भारत के विश्व में फैले बहुरूपदर्शक का प्रतीक है। भारतीय हिन्दू धर्म और पूजा स्थलों को समझने में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

अंकोरवाट कम्बोडिया का एक अकेला ऐसा स्थान है, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों की मूर्तियाँ एक साथ हैं। यह दुनिया की सबसे बड़ी धार्मिक संरचना है जो 400 एकड़ (16 हेक्टेयर) में फैली हुई है। कला की दृष्टि से यह खमेर वास्तुकला के उच्चतम बिन्दु को चिह्नित करती है।

इकाई-पाँच

प्रश्न 1 जीवन्त परम्पराओं की सुरक्षा और परिरक्षण सम्बन्धी भारत के संविधान के अनुच्छेद 49 तथा अनुच्छेद 51 (ए) की विवेचना कीजिए।

उत्तर- अनुच्छेद 49- भारतीय संविधान का अनुच्छेद 49 राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं के संरक्षण से सम्बन्धित है। यह अनुच्छेद भारतीय संस्कृति की सुरक्षा और रखरखाव से सम्बन्ध रखता है। इतिहास में यह पाया गया है कि भारतीय संस्कृति की दृष्टि से महत्त्व रखने वाले अनेक स्मारकों तथा स्थानों और वस्तुओं की सुरक्षा की व्यवस्था न होने से अतीत में इन बहुमूल्य सांस्कृतिक विरासतों से हमें वंचित होना पड़ा है। कालचक्र के अनुसार संरक्षण के अभाव में या तो वस्तुएं नष्ट हो जाती हैं या जाने-अनजाने नष्ट या विरूपित कर दी जाती हैं। लोग धीरे-धीरे इन विरासतों को भूल जाते हैं। तस्करों द्वारा चोरी से अनेक मूर्तियों, मुद्राओं, वस्तुओं को विदेशों में भेजने से या विदेशियों के हाथों बेच देने से भारत में वे वस्तुएं बची नहीं रह जातीं। इससे पुरातत्त्ववेत्ताओं तथा इतिहास के विद्यार्थियों को उनके अध्ययन से वंचित रह जाना पड़ता है और ज्ञानवर्धन के अवसर विलुप्त हो जाते हैं। अतः भारत में विरासतों की सुरक्षा व परिरक्षण का अत्यधिक महत्त्व है। संविधान के अनुच्छेद 49 में लेख है-"कलात्मक या ऐतिहासिक हितों के प्रत्येक स्मारक या स्थान या वस्तु की रक्षा करना राज्य का दायित्व होगा जैसे कि लूट, विरूपण, विनाश, हटाने, निपटान या निर्यात से जैसा कि मामला हो सकता है।"

विवेचना-अर्थात प्रत्येक ऐसी वस्तु या स्थान या स्मारक को टूटफूट, चोरी करने या लूटने या रूप बदलने या नष्ट करने या उसके स्थान से हटाने या जलाने या विदेशों में या अन्यत्र निर्यात करने आदि के लिए समुचित रक्षा करना, संरक्षण करना राज्य का कर्त्तव्य होगा, जो वस्तु भारत के इतिहास की दृष्टि से या कला की दृष्टि से मूल्य रखती हो।

अनुच्छेद 51A- संविधान के अनुच्छेद 51A के अन्तर्गत राष्ट्रीय ध्वज (तिरंगा) एवं राष्ट्रगान का सम्मान करना एक नागरिक का मौलिक कर्तव्य है।

विवेचना- यह प्रावधान इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि देश के नागरिक राष्ट्रध्वज के फहराते समय निर्देशों का पालन करें, आदरपूर्वक खड़े होकर राष्ट्रीय गीत जन गण मण गाकर अंत में राष्ट्रीय ध्वज को प्रणाम करें तथा जयहिन्द का उच्चारण करें। यह सस्वर होना चाहिए। साथ ही राष्ट्रीय ध्वज निश्चित आकार का हो, सीधा फहराया जाए यानी केसरिया रंग ऊपर, मध्य में श्वेत रंग (चक्रसहित) तथा नीचे हरा रंग हो। राष्ट्रीय ध्वज को सब ध्वजों के ऊपर स्थान दिया जाए।

यह इसलिए ताकि भारतीय नागरिकों के मनों में राष्ट्रीय ध्वज के प्रति सम्मान का भाव हो तथा वे श्रद्धापूर्वक खड़े होकर सावधान की मुद्रा में ध्वज के प्रति सम्मान व्यक्त करें।

अनुच्छेद 49 तथा अनुच्छेद 51(ए) हमारी परम्परा सम्बन्धी कानून व तकनीक का उदाहरण हैं।

प्रश्न 2 इन सरकारी योजनाओं पर संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित टीप दीजिए- (अ) अपनी धरोहर अपनी पहचान, (ब) प्रसाद (PRASAD) योजना

उत्तर-

(अ) अपनी धरोहर : अपनी पहचान

इस परियोजना की शुरुआत भारत सरकार द्वारा 27 सितम्बर 2017 को विश्व पर्यटन दिवस के अवसर पर की गई। भारत सरकार का पर्यटन मन्त्रालय इस योजना का संचालन कर रहा है।

यह परियोजना पूरे देश में विरासत/प्राकृतिक/पर्यटन स्थानों पर पर्यटन सुविधाओं को योजनाबद्ध और चरणबद्ध तरीके से विकसित करने और इन्हें पर्यटकों के अनुकूल बनाने के लिए पर्यटन मन्त्रालय, संस्कृति मन्त्रालय, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण और राज्य/केन्द्रशासित प्रदेशों की सरकारों/विभागों द्वारा एक सहयोगात्मक प्रयास है।

इस परियोजना का उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र की कम्पनियों के साथ, ट्रस्टों, गैर-सरकारी संस्थाओं (NGOs), व्यक्तिगत व अन्य पक्षधरों को 'स्मारकमित्र' बनाने के लिए प्रेरित करना है।

अब तक देशभर में 25 स्थलों और दो तकनीक हस्तक्षेपों के लिए 12 स्मारक मित्रों के साथ 22 समझौते (MOU)/संधियों पर हस्ताक्षर किये गये।

योजना इसलिए महत्त्वपूर्ण है ताकि भारत में पर्यटन क्षेत्रों में विस्तार, सुधार, संरक्षण तथा स्वच्छता कायम हो ताकि देशी-विदेशी पर्यटकों के भ्रमण द्वारा स्थलों को लोकप्रिय, ज्ञानवर्द्धक बनाया जाकर देशी-विदेशी मुद्राएं प्राप्त की जा सकें।

(ब) प्रसाद योजना

प्रसाद का अर्थ होता है अनुगृह या कृपा अथवा ईश्वर/देवताओं पर अर्पित की गई वस्तु का जनसामान्य/भक्तों में वितरण करना। परन्तु प्रसाद (PRASAD) का यहाँ विस्तृत अर्थ है-"तीर्थयात्रा कायाकल्प और आध्यात्मिक संवर्द्धन कायाकल्प और आध्यात्मिक संवर्धन अभियान"।

भारत सरकार ने पर्यटन मन्त्रालय के तहत वर्ष 2014-2015 में PRASAD प्रसाद योजना शुरू की थी। यह योजना धार्मिक पर्यटन अनुभवों को समृद्ध करने के लिए भारत में तीर्थ स्थलों को विकसित करने और पहचान करने पर केन्द्रित है। इसका उद्देश्य एक सम्पूर्ण धार्मिक पर्यटन अनुभव प्रदान करने के लिए तीर्थ स्थलों को प्राथमिकतः नियोजित और संधारणीय तरीके से एकीकृत करना है। घरेलू पर्यटन का विकास बहुत हद तक तीर्थ पर्यटन पर निर्भर करता है।

तीर्थ पर्यटन की क्षमता का दोहन करने के लिए सरकार द्वारा अन्य हितसाधकों के सहयोग के साथ-साथ चयनित तीर्थ स्थलों के समग्र विकास की आवश्यकता है। प्रसाद योजना का उद्देश्य भारत में धार्मिक पर्यटन के विकास और संवर्द्धन का मार्ग प्रशस्त करना है।

प्रश्न 3 पर्यटन पर्व-देखो अपना देश, स्वदेश दर्शन-इन योजनाओं पर संक्षिप्त सारगर्भित टीप दीजिए।

उत्तर-

(अ) पर्यटन-पर्व : देखो अपना देश

'देखो अपना देश' नाम की इस योजना का लाभ भारत का कोई भी नागरिक उठा सकता है। हम कार्यक्रम के तहत वर्ष 2022 तक आपको अपने गृह प्रदेश को छोड़कर अन्य

प्रदेशों के 15 पर्यटन स्थलों की यात्रा करनी होगी और वहाँ के फोटो सरकार को भेजने होंगे। इस योजना के तहत यात्रियों को एक वर्ष में 15 पर्यटन स्थल घूमने होंगे।

केन्द्र सरकार ने देश में पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए यह योजना शुरू की है जिसमें आपके घूमने का पूरा खर्चा सरकार उठायेगी। आप अपनी यात्रा कभी भी शुरू करें लेकिन 1 वर्ष के भीतर 15 पर्यटन स्थल घूमने के बाद उन पर्यटन स्थलों के फोटो क्लिक करें। अपनी फोटो और खर्च का ब्यौरा आधिकारिक वेबसाइट पर अपलोड करना होगा। ध्यान रहे कि ये सभी पर्यटन स्थल अपने गृह प्रदेश के बाहर के हों। फोटो अतुल्य भारत थीम के आधार पर क्लिक करना है।

इस स्कीम का हिस्सा बनने के लिए आपको my gov.in पर जाकर शपथ पत्र भरना होगा। इसमें नाम, पता और ईमेल आई डी जैसी जानकारियाँ भरनी होंगी। यह शपथ पत्र भरने के 1 साल के अन्दर ही आपको पर्यटन स्थलों की यात्रा करनी होगी। पहले रजिस्ट्रेशन कराना होगा।

(ब) स्वदेश दर्शन योजना

यह योजना भारत सरकार द्वारा वर्ष 2014-15 में शुरू की गई। इस योजना का उद्देश्य भारत में पर्यटन की क्षमता को बढ़ावा देना, विकसित करना और उसका दोहन करना है। स्वदेश दर्शन योजना के तहत, पर्यटन मन्त्रालय, सर्किट के अवसंरचना के विकास के लिए राज्य सरकारों, संघ राज्य क्षेत्रों के प्रशासन को केन्द्रीय वित्तीय सहायता-सीएफए प्रदान करता है।

इस योजना की परिकल्पना स्वच्छ भारत अभियान, स्किल इण्डिया, मेक इन इण्डिया आदि जैसी अन्य योजनाओं के साथ तालमेल बिठाने के लिए की गई है, जिसमें पर्यटन क्षेत्र को रोजगार सृजन, आर्थिक विकास के लिए प्रेरक शक्ति, विभिन्न क्षेत्रों के साथ तालमेल बनाने ताकि पर्यटन को अपनी क्षमता का एहसास हो सके, इसके लिए एक प्रमुख इन्जन के रूप में स्थान दिया गया है।

प्रश्न 4 यूनेस्को संस्था (UNESCO) का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर- यूनेस्को का पूरा नाम है-यूनाइटेड नेशन्स एजुकेशनल, साइंटिफिक एण्ड कल्चरल ऑर्गनाइजेशन (संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन)। यह संयुक्त राष्ट्र का एक घटक निकाय है। इसका कार्य शिक्षा, विज्ञान तथा संस्कृति तथा संचार के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को बढ़ावा देना है। संयुक्त राष्ट्र की इस विशेष संस्था का गठन 16 नवम्बर 1945 को हुआ था। इसका उद्देश्य शिक्षा एवं संस्कृति के अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से शान्ति एवं सुरक्षा की स्थापना करना है, ताकि संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में वर्णित न्याय, कानून का राज, मानवाधिकार एवं मौलिक स्वतन्त्रता हेतु वैश्विक सहमति बने।

परिचय- यूनेस्को के 195 सदस्य देश हैं और 8 सहयोग सदस्य देश और दो पर्यवेक्षक सदस्य देश हैं। इसके कुछ सदस्य स्वतन्त्र देश भी नहीं हैं। इसका मुख्यालय पेरिस (फ्रांस) में है। इसके ज्यादातर क्षेत्रीय कार्यालय क्लस्तर के रूप में है, जिसके अन्तर्गत दो-चार देश आते हैं, इसके अलावा इसके राष्ट्रीय और क्षेत्रीय कार्यालय भी हैं। यूनेस्को के 27 क्लस्तर कार्यालय और 21 राष्ट्रीय कार्यालय हैं।

यूनेस्को मुख्य रूप से शिक्षा, प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक एवं मानव संस्कृति, संस्कृति एवं सूचना व संचार के जरिये अपनी गतिविधियाँ संचालित करता है। वह साक्षरता बढ़ाने वाले

कार्यक्रमों को प्रायोजित करता है और वैश्विक धरोहर की इमारतों और पार्कों के संरक्षण में भी सहयोग करता है। यूनेस्को की विरासत सूची में भारत के कई ऐतिहासिक इमारतें और पार्क शामिल हैं जिनकी संख्या 40 है। 40वीं धरोहर धोलावीरा है। दुनिया भर के 332 अन्तर्राष्ट्रीय स्वयंसेवी संगठनों के साथ यूनेस्को के सम्बन्ध हैं। भारत 1946 से यूनेस्को का सदस्य देश है।

प्रश्न 5 भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, भारत का राष्ट्रीय अभिलेखागार, भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद और कला और सांस्कृतिक विरासत के लिए भारतीय राष्ट्रीय न्यास संस्थाओं का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित वर्णन कीजिए।

उत्तर-

(1) भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण

यह संस्था पुरातत्त्व अध्ययन और संरक्षण के लिए स्थापित भारतीय एजेंसी है। भारत की सांस्कृतिक विरासतों के पुरातत्त्वीय अनुसन्धान तथा संरक्षण के लिए एक प्रमुख संगठन है। इसका प्रमुख कार्य राष्ट्रीय महत्त्व के प्राचीन स्मारकों तथा पुरातत्त्वीय स्थलों और अवशेषों का रखरखाव करना है। इसके अतिरिक्त प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्त्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम 1958 के प्रावधानों के अनुसार यह देश में सभी पुरातत्त्वीय गतिविधियों को विकसित करता है। यह पुरावशेष और बहुमूल्य कलाकृति अधिनियम, 1972 को भी विनियमित करता है। यह संस्था संस्कृति मंत्रालय के अधीन है।

राष्ट्रीय महत्त्व के प्राचीन स्मारकों तथा पुरातत्त्वीय स्थलों तथा अवशेषों के रखरखाव के लिए सम्पूर्ण भारत को 24 मण्डलों में विभाजित किया गया है। संगठन के पास मण्डलों, संग्रहालयों, उत्खनन शाखाओं, प्रागैतिहासिक शाखाओं, पुरालेख शाखाओं, विज्ञान शाखा, उद्यान शाखा, भवन सर्वेक्षण, परियोजना मन्दिर सर्वेक्षण परियोजनाओं तथा अन्तरजलीय पुरातत्त्व स्कंध के माध्यम से पुरातत्त्वीय अनुसन्धान परियोजनाओं के संचालन के लिए बड़ी संख्या में प्रशिक्षित पुरातत्त्वविदों, संरक्षकों, पुरालेखविदों, वास्तुकारों तथा वैज्ञानिकों का कार्यदल है।

वर्तमान में 3650 से अधिक प्राचीन स्मारक और पुरातात्विक स्थलों और राष्ट्रीय महत्त्व के अवशेष हैं। ये स्मारक विभिन्न कालों से सम्बन्धित हैं, प्रागैतिहासिक काल से औपनिवेशिक काल तक और विभिन्न भौगोलिक संरचनाओं में स्थित है। वे मन्दिरों, मस्जिदों, कब्रों, चर्चों, कब्रिस्तान, किलों, महलों, कदम कुंऐ, रॉक-कट गुफाओं और धार्मिक वास्तुकला के साथ-साथ प्राचीन घाटियों और स्थलों को भी शामिल करते हैं, जो प्राचीन निवास के अवशेषों का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के विभिन्न मण्डलों के माध्यम से ये स्मारक और साइटें संरक्षित की जाती हैं जो पूरे भारत में फैली हैं।

(2) इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र

यह संस्था कलाओं के क्षेत्र में शोध एवं शैक्षणिक अनुसन्धान तथा प्रसार का केन्द्र है। इसकी स्थापना भारत सरकार के संस्कृति मन्त्रालय के अधीन एक स्वायत्त निकाय के रूप में सन् 1985 में की गई थी। यह केन्द्र कला के एक ऐसे व्यापक प्रतिबिम्ब के रूप में पहचाना जाता है जिसमें पुरातत्त्व से लेकर नृत्य और मानव विज्ञान से लेकर छाया चित्रण तक का पूरक तथा अनन्त दृश्य के रूप में समावेश हो।

इसकी निम्नलिखित छह कार्यात्मक इकाइयाँ हैं-

(i) **कला निधि-** यह एक विविध रूप पुस्तकालय है।

(ii) **कला कोष-** इसका प्रमुख कार्य विशेषतया संस्कृत के मूल पाठ के अध्ययन और प्रकाशन से सम्बन्धित है।

(iii) **जनपद संपदा-** यह प्रभाग जीवनशैली से जुड़े अध्ययन का कार्य करता है।

(iv) **कला दर्शन-** इस इकाई का कार्य इस केन्द्र द्वारा किए गए शोध कार्यों और अध्यक्षता को प्रदर्शित करना और दृश्य रूप में परिवर्तित करना है।

(v) **सांस्कृतिक सूचना विज्ञान प्रयोगशाला-** यह इकाई सांस्कृतिक परीक्षण तथा प्रचार के लिए प्रौद्योगिकीय साधनों का प्रयोग करती है।

(vi) **सूत्रधार-** यह प्रशासनिक अनुभाग है जो सभी गतिविधियों में सहायता तथा समन्वय करता है। सदस्य-सचिव, शैक्षिक और प्रशासकीय प्रभागों के कार्यपालक प्रधान होते हैं।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र का एक दक्षिण क्षेत्रीय केन्द्र है जिसका मुख्यालय बंगलौर में है। इसकी स्थापना 2001 में हुई थी और इसका मुख्य उद्देश्य दक्षिणी क्षेत्र की कला और सांस्कृतिक विरासत से सम्बन्धित गहन अध्ययन करना है।

(3) भारत का राष्ट्रीय अभिलेखागार

भारत के राष्ट्रीय अभिलेखागार में भारत सरकार के अप्रचलित अभिलेखों का भण्डारण किया जाता है। इसका प्रयोग अधिकतर प्रशासकों और शोधार्थियों के द्वारा किया जाता है। यह भारत सरकार के पर्यटन और संस्कृति मन्त्रालय से सम्बद्ध एक कार्यालय है जिसकी शुरुआत कोलकाता में मार्च 1891 में इंपीरियल रिकॉर्ड डिपार्टमेंट की स्थापना के साथ हुई थी। 1911 में जब राष्ट्रीय राजधानी को कलकत्ता से बदलकर नई दिल्ली किया गया, उस समय इस अभिलेखागार को भी नई दिल्ली स्थानान्तरित कर दिया गया। अपने वर्तमान भवन में यह सन् 1926 में स्थानान्तरित हुआ। यह अभिलेखागार 'प्रथमोक्त' नाम से नई दिल्ली के जनपथ और कर्त्तव्यपथ के चौक के पास लाल और सफेद पत्थरों के एक भव्य भवन में स्थित है। प्राकृतिक कारकों से अभिलेखों की रक्षा के लिए आधुनिक वैज्ञानिक साधन उपलब्ध कराए गए हैं।

परिचय- इस विभाग को सन् 1891 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय से इकट्ठे हुए सरकारी अभिलेखों को लेकर रखने का काम सौंपा गया था। उस समय इसके अधिकारी स्पष्टतः यह नहीं जानते थे कि इसका क्या काम होगा। अभिलेखागार में अभिलेख अव्यवस्थित अवस्था में पड़े थे। भारत सरकार का ध्यान इस ओर तब गया जब इंग्लैण्ड और वेल्स के अभिलेखों के सम्बन्ध में नियुक्त राजकीय आयोग ने सन् 1914 में भारतीय अभिलेखों की अव्यवस्थित अवस्था पर टिप्पणी की। परिणामस्वरूप सन् 1919 में भारत सरकार ने भारतीय अभिलेखों के सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें भेजने के लिए एक भारतीय अभिलेख आयोग नियुक्त किया। इस आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप अभिलेखों की अवस्था में धीरे-धीरे सुधार होता गया।

सरकार के वे सभी अभिलेख समय-समय पर यहाँ अभिरक्षा हेतु भेजे जाते हैं जो अब अपने संबद्ध विभागों, कार्यालयों, मन्त्रालयों आदि में प्रचलित नहीं हैं, किन्तु सरकार के स्थाई उपयोग के हैं। कुल मिलाकर 13 करोड़ पृष्ठ युग्म फोलियो सर्वेक्षण विभाग से, 11500 पाण्डुलिपियाँ मानचित्र और विभिन्न अभिकरणों के 4,150 मुद्रित मानचित्र प्राप्त हुए। मुख्य अभिलेखमाला सन् 1728 से आरम्भ होती है।

जो कार्यालय अपने अभिलेख यहाँ भेजते हैं वे पहले उसमें से अनुपयोगी अभिलेखों को निकालकर नष्ट कर देते हैं। नष्ट करते समय कहीं वे प्रशासकीय और ऐतिहासिक मूल्य के अभिलेखों को नष्ट न कर दें इसलिए यह अभिलेखागार उनको समुचित सलाह व मार्गदर्शन प्रदान करता है।

यह अभिलेखागार इस समय संसार के सबसे बड़े अभिलेखागारों में से एक है।

(4) भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद

इण्डियन काउन्सिल फॉर कल्चरल रिलेशंस (ICCR) भारत सरकार का एक स्वतन्त्र संगठन है जिसकी स्थापना 1950 में हुई थी। इस संस्था का मुख्यालय आजाद भवन, नई दिल्ली में है। इस संगठन के क्षेत्रीय कार्यालय बंगलुरू, कोलकाता, चंडीगढ़, चेन्नई, जकार्ता, मास्को, बर्लिन, कैरो, लन्दन, ताशकन्द, कोलम्बो आदि में हैं। यह संस्था भारत की संस्कृति और शिक्षा के विकास के अनेक कार्यों में संलग्न है।

उद्देश्य- भारत तथा अन्य देशों के बीच सांस्कृतिक सम्बन्ध और पारस्परिक समझ स्थापित, पुनरुज्जीवित और उन्हें सुदृढ़ करने के प्राथमिक उद्देश्य के साथ इस संस्था की स्थापना की गई। संस्था की नियमावली के अनुसार इसके उद्देश्य निम्न हैं-

(i) *अन्य देशों के साथ भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध से सम्बन्धित नीतियों और कार्यक्रमों को तैयार करना और उनके कार्यान्वयन में भागीदारी करना।*

(ii) *भारत और अन्य देशों के बीच सांस्कृतिक सम्बन्धों और पारस्परिक समझ को बढ़ावा देना और मजबूत करना।*

(iii) *संस्कृति के क्षेत्रों में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से सम्बन्ध स्थापित करना और उन्हें विकसित करना।*

क्रियाकलाप

(i) *भारत सरकार और अन्य अभिकरणों की ओर से विदेशी छात्रों के लिए छात्रवृत्ति योजनाओं का क्रियान्वयन तथा अन्तर्राष्ट्रीय छात्रों के कल्याण का पर्यवेक्षण करना;*

(ii) *भारतीय नृत्य और संगीत सीखने के लिए विदेशी विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान करना;*

(iii) *प्रदर्शनियों का आदान-प्रदान;*

(iv) *विदेशों में प्रमुख सांस्कृतिक महोत्सवों में भाग लेना;*

(v) *विदेशों में 'भारत महोत्सव' का आयोजन;*

(vi) *मंचीय कलाकारों द्वारा विदेशों में प्रस्तुतियाँ;*

(vii) *विदेश स्थित विश्वविद्यालयों में भारतीय अध्ययनपीठों की स्थापना और प्रचालन;*

(viii) *विदेशी संस्थाओं को पुस्तकें, कलात्मक वस्तुएं और संगीत वाद्ययंत्र भेंट स्वरूप देना;*

(ix) *दुर्लभ पाण्डुलिपियों का अंकीयकरण;*

(x) *भारत और विदेशों में वितरण हेतु पत्रिकाओं का प्रकाशन;*

(xi) *हिन्दी पत्रिका 'गगनांचल' के प्रकाशन सहित हिन्दी भाषा सम्बन्धी गतिविधियों को आश्रय प्रदान करना;*

(xii) *सम्बन्धित क्षेत्र में अन्य सांस्कृतिक संस्थाओं/एजेन्सियों के साथ समन्वय बैठाना आदि।*

परिषद के क्रियाकलाप इसकी शासी परिषद द्वारा निर्धारित और अनुमोदित किये जाते हैं।

(5) कला और सांस्कृतिक विरासत के लिए भारतीय राष्ट्रीय न्यास

कला एवं सांस्कृतिक विरासत के लिए भारतीय राष्ट्रीय न्यास (इंटैक) समिति रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1860 के तहत पंजीकृत एक गैर-लाभकारी धर्मार्थ संगठन है। 2007 में संयुक्त राष्ट्र ने इस न्यास को संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक परिषद के साथ एक विशेष सलाहकार का दर्जा प्रदान किया। कला एवं सांस्कृतिक विरासत के लिए भारतीय राष्ट्रीय न्यास की स्थापना भारत में विरासत जागरुकता और संरक्षण को प्रोत्साहित करने और नेतृत्व करने के लिए एक सदस्यता संगठन बनाने की दृष्टि से 1864 को नई दिल्ली में हुई थी। 1984 से इंटैक ने भारत की प्राकृतिक और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण का बीड़ा उठाया है और आज संरक्षण के लिए समर्पित देश का सबसे बड़ा सदस्यता संगठन है।

आज इसके 215 भारतीय शहरों में अध्याय हैं, साथ ही बेल्जियम और यूनाइटेड किंगडम में भी अध्याय हैं। एसोसिएशन के ज्ञापन और इंटैक के नियम और विनियम ने ट्रस्ट की पहली गवर्निंग काउन्सिल का गठन किया। 2007 में इंटैक में दक्षिण एशियाई और दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्रीय पहलों पर सहयोग करने के लिए आस्ट्रेलिया के विख्यात हैरिटेज नेटवर्क के साथ एक समझौते ज्ञापन पर हस्ताक्षर किये।

कार्य- इंटैक द्वारा किए गए कार्यों में स्मारकों का जीर्णोद्धार और उनका प्रबन्धन; विरासत संपत्ति संरक्षण के लिए वकालत; हैरिटैज वाक और बसों के माध्यम से जन जागरुकता; स्कूलों में हैरिटेज क्लबों की स्थापना और स्कूलों तथा कॉलेजों के शिक्षकों के लिए जागरुकता कार्यशाला का आयोजन एवं विरासत विभिन्न असुरक्षित स्थलों की सैर आदि प्रमुख कार्य पूर्ण किये।

मिशन- इंटैक का संकल्प विरासत के संरक्षण के लिए इस विश्वास पर आधारित है कि विरासत के साथ रहने से जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि होती है, और यह भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है।

इस संस्था के मिशन में भारत के बहुलतावादी सांस्कृतिक विरासत के बारे में जनता को संवेदनशील बनाना; भारत की साझी विरासत के संरक्षण के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना पैदा करना; भारत की जीवित, निर्मित और प्राकृतिक विरासत की रक्षा और संरक्षण करना; पुरातात्त्विक, स्थापत्य, ऐतिहासिक और सौन्दर्य महत्त्व के साथ-साथ सांस्कृतिक संसाधनों के असुरक्षित भवनों का दस्तावेजीकरण करना, क्योंकि संरक्षण योजना तैयार करने की दिशा में यह पहला कदम है।

इंटैक की ये दो मुख्य गतिविधियाँ हैं-

(i) *भारत में वित्त पोषण परियोजनाओं तथा*

(ii) *भारत में विरासत अनुसंधान परियोजनाओं के लिए ब्रिटिश विद्वानों को छात्रवृत्ति प्रदान करना।*

- **सहयोग-** हाल के वर्षों में इंटैक को केन्द्र सरकार और कई राज्य सरकारों, उद्योगपतियों और अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों से समर्थन प्राप्त हुआ है।

प्रश्न 6. विश्व धरोहरों में सूचीबद्ध भारत की मानवीय परम्पराओं की अमूर्त सांस्कृतिक विरासतों को बताइए।

उत्तर- भारत की मानवीय परम्पराओं की दो रूपों में सांस्कृतिक विरासतें पाई जाती हैं-मूर्त तथा अमूर्त। मूर्त परिसम्पतियों का भौतिक रूप होता है जैसे स्मारक। जबकि अमूर्त परिसम्पत्तियाँ केवल कागज/मौखिक रूप से मौजूद होती हैं, इनमें कोई भौतिक गुण नहीं होता।

विश्व धरोहरों को सूचीबद्ध करने का कार्य यूनेस्को (UNESCO) करता है। यूनेस्को द्वारा अब तक मूर्त परम्परा में 40 धरोहरों को शामिल किया जा चुका है जबकि अमूर्त धरोहरों में 14 शामिल हैं। भवन, ऐतिहासिक स्थल, स्मारक, हस्तकला, पेंटिंग, मूर्तिकला मूर्त धरोहरों में आती हैं। अमूर्त विरासत में प्रथाओं, अभिव्यक्ति, ज्ञान, कौशल की वस्तुओं, समुदायों, समूहों और लोकगीत, लोकनृत्य आदि आते हैं।

यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहरों में सूचीबद्ध भारत की मानवीय परम्पराओं की 14 अमूर्त सांस्कृतिक विरासतों की जानकारी इस प्रकार है-

अनुक्रमांक	अमूर्त भारतीय सांस्कृतिक विरासत का नाम	वर्ष
1	वैदिक जप की परम्परा	2008
2	रामलीला, रामायण का पारम्परिक प्रदर्शन	2008
3	कुटियाट्टम, संस्कृत थियेटर	2008
4	रमन, धार्मिक त्यौहार और गढ़वाल हिमालय के अनुष्ठान थियेटर	2009
5	मुडियेट्टु, अनुष्ठान थियेटर और केरल के नृत्य नाटक	2010
6	कालबेलिया लोकगीत और नृत्य, राजस्थान	2010
7	छऊ नृत्य	2010
8	लद्दाख का बौद्ध जप	2012
9	संकीर्तन, अनुष्ठान गायन, ढोल और मणिपुर नृत्य	2013
10	जंडियाला गुरु के ठठेरे : बर्तन बनाने का पारम्परिक पीतल और ताँबे का शिल्प	2014
11	योग	2016
12	नवरोज	2016
13	कुम्भ मेला	2017
14	दुर्गापूजा (कोलकाता)	2021

अमूर्त संस्कृति किसी समुदाय, राष्ट्र आदि की वह निधि है जो सदियों से उस समुदाय या राष्ट्र के अवचतन को अभिभूत करते हुए समृद्ध होती रहती है। विरासत सिर्फ स्मारकों या कला वस्तुओं के संग्रहण तक सीमित नहीं होती है। इसमें उन परम्पराओं एवं प्रभावी सोचों को भी शामिल किया जाता है जो पूर्वजों से प्राप्त, अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित हों जैसे मौखिक रूप से चल रही परम्पराएं। ये अमूर्त विरासत हैं।

यह अमूर्त सांस्कृतिक विरासत अपनी प्रकृति के अनुरूप क्षणभंगुर हैं और इसे संरक्षित करने की आवश्यकता होती है। उदाहरण स्वरूप योग इसी प्रकार की अभिव्यक्ति का रूप है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

इकाई-एक

प्रश्न **भारत की प्राचीन जीवन्त परम्पराओं में यह बिन्दु शामिल नहीं है?**

(अ) अभिवादन करना (ब) धर्म को मानना

(स) फिल्मों का आयोजन करना (द) साहित्य की परम्परा **उत्तर-** (स)

प्रश्न **धर्म से सम्बन्धित जीवन्त परम्पराएं कौनसी नहीं हैं?**

(अ) साकार या निराकार ईश्वर में आस्था

(ब) आस्तिक या नास्तिक आस्थावान लोगों की परम्परा

(स) अवतारवाद में विश्वास (द) राजा तथा राजशाही **उत्तर-** (द)

प्रश्न **आदि शंकराचार्य ने जिन मठों की स्थापना की थी उनमें से निम्नलिखित में कौनसा सम्मिलित नहीं है?**

(अ) श्रृंगेरी शारदापीठ (ब) गोवर्द्धन मठ

(स) शारदा (कालिका) मठ (द) रामेश्वर मठ **उत्तर-** (द)

प्रश्न **हिन्दू संस्कृति के चार तीर्थों में इनमें से कौनसा शामिल नहीं है?**

(अ) बद्रीनाथ (उत्तराखण्ड) (ब) केदारनाथ (उत्तराखण्ड)

(स) जगन्नाथपुरी (उड़ीसा) (द) रामेश्वरम् (तमिलनाडु) **उत्तर-** (ब)

प्रश्न **भगवदगीता में कुल कितने अध्याय हैं?**

(अ) 12 (ब) 16 (स) 18 (द) 15 **उत्तर-** (स)

प्रश्न **रामचरित मानस में इनमें से कौनसा सांस्कृतिक मूल्य नहीं है?**

(अ) माता-पिता का सम्मान और उनकी आज्ञा का पालन

(ब) गुरुजनों का सम्मान और आज्ञा-पालन

(स) भ्रातृप्रेम (द) युद्ध का निषेध **उत्तर-** (द)

प्रश्न **शिक्षा व्यवस्था में प्राचीन भारतीय नैतिकता और परम्पराओं के प्रतिबिम्ब दृष्टिगत होते हैं, वह इनमें से कौनसा नहीं है?**

(अ) गुरु आश्रम में शिष्यों का निवास और शिक्षा

(ब) शिष्यों की सख्त दिनचर्या

(स) गुरु-शिष्य परम्परा (द) आधुनिक विषयों की शिक्षा **उत्तर-** (द)

प्रश्न **संस्कृत भाषा की कौनसी विशेषता नहीं है?**

(अ) विश्व की प्राचीनतम पुस्तक वेदों की भाषा

(ब) विशाल संस्कृत साहित्य (स) समृद्ध व्याकरण

(द) संस्कृत भाषियों की प्राचीन काल से ज्यादा संख्या **उत्तर-** (द)

प्रश्न **पर्यावरण जागरुकता के उत्तम उपायों में कौनसा बिन्दु शामिल नही है?**

(अ) प्लास्टिक का उपयोग कम करना या न करना

(ब) डीजल तथा पेट्रोल का उपयोग कम करना

(स) अधिकतम वृक्षारोपण करना (द) वृक्षान्मूलन **उत्तर-** (द)

प्रश्न **आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति की कौनसी अच्छी विशेषता नहीं है?**

(अ) आयुर्वेद औषधियों का कोई दुष्प्रभाव नहीं है।

(ब) आयुर्वेद का उपचार कम खर्चीला है।

(स) आयुर्वेद केवल रोगों की चिकित्सा ही नहीं करता बल्कि उनको रोकता भी है।

(द) आयुर्वेद का उपचार बहुत समय लेता है। **उत्तर-** (द)

इकाई-दो

प्रश्न **धातु कार्य की कला भारतीयों को अब से लगभग कितने वर्ष पूर्व से ज्ञात है?**

(अ) 5,000 वर्ष (ब) 2,000 वर्ष

(स) 1,500 वर्ष (द) 1,000 वर्ष **उत्तर-** (अ)

प्रश्न **महिला सशक्तिकरण उसे कहते हैं जिससे-**

(अ) महिलाएं शक्तिशाली बनती हैं और वे अपने जीवन से जुड़े सभी फैसले स्वयं ले सकती हैं।

(ब) आर्थिक रूप से किसी अन्य पर आश्रित नहीं होतीं।

(स) वे परिवार और समाज में ससम्मान रह सकती हैं।

(द) उक्त सभी **उत्तर-** (द)

प्रश्न **टैराकोटा की यह विशेषता नहीं है-**

(अ) टैराकोटा का रंग लाल और भूरा के बीच होता है।

(ब) टैराकोटा एक विशेष प्रकार की मृत्तिका है जिसे पावडर ग्लास, क्रस्ट पाटरी, सिक्का, एलुमाइना, मंग्नेशिया इत्यादि को मिलाकर बनाया और पकाया जाता है।

(स) कांसे की मूर्तियों की तुलना में टेराकोटा की मूर्तियाँ अधिक टिकाऊ और सुन्दर होती हैं।

(द) सामान्यतः टैराकोटा का खिलौने, पशुओं की मूर्तियाँ, लघु गाड़ियाँ और पहिए आदि बनाने में उपयोग होता है।

उत्तर- (स)

प्रश्न **शिल्प कला मे यह शामिल नहीं है-**

(अ) काष्ठ कार्य (ब) गहना बनाना
(स) बेंत और बाँस का कार्य (द) चित्रकारी **उत्तर-** (द)

प्रश्न भित्ति चित्र में कौनसा बिन्दु शामिल नही है ?
(अ) शिलाखण्डों को काटकर बनाए गए चैत्य, विहार, मन्दिर आदि
(ब) मन्दिर की दीवारों पर पलस्तर-चूना आदि से चिकनाकर उन पर बनाए चिन्ह
(स) अजन्ता, एलोरा, बाघ, एलीफेंटा की गुफाओं पर उत्कीर्ण चित्र
(द) पत्थर तराशकर बनाई देव मूर्ति **उत्तर-** (द)

प्रश्न लघु चित्र की यह विशेषता नहीं है-
(अ) ऐसा चित्र जिसकी संरचना और अनुपात 25 वर्ग इंच (100 वर्ग सेन्टीमीटर) से कम है तथा अनुपात $\frac{1}{6}$ से अधिक न हो उसे प्रायः लघुचित्र कहा जाता है।
(ब) इस तरह की चित्रकारी में हस्तनिर्मित रंगों का इस्तेमाल किया जाता है।
(स) भीमबैठका शैलाश्रय में इस प्रकार की चित्रकारी देखने को मिलती है।
(द) शुरुआत में यह कागज पर तैयार की जाती है। **उत्तर-** (द)

प्रश्न सल्तनत व मुगल काल की लघुचित्रकला की ये विशेषता नहीं है-
(अ) इस काल में लघुचित्रकारी में फारसी तत्त्वों का सम्मिश्रण मिलता है।
(ब) मुगल काल में लघुचित्रकारी में मुगल काल के शासकों को महिमा मण्डित किया गया
(स) आमतौर पर आखेट के दृश्य, ऐतिहासिक घटना और दरबार से सम्बन्धित विषयों का चित्रण किया
(द) मुगल काल की चित्रकला में कमल, स्वास्तिक चिन्ह आदि का प्रयोग हुआ
उत्तर- (द)

प्रश्न पत्थर की मूर्तिकला के सम्बन्ध में असत्य कथन चुनिए-
(अ) प्रस्तर मूर्तियाँ पत्थर को त्रिआयाम से काटने से बनती हैं।
(ब) यह एक प्राचीन कला है जिसमें प्राकृतिक पत्थर को नियंत्रित तरीके से काटा जाकर मूर्ति रूप दिया जाता है
(स) पत्थर जितना मुलायम होगा उतना ही उसे काटना आसान होता है।
(द) प्रस्तर मूर्तिकला टिकाऊ नहीं होती **उत्तर-** (स)

प्रश्न धातुकला के सम्बन्ध में असत्य कथन चुनिए-
(अ) धातु कार्य की कला भारतीयों को अब से 5000 वर्षों से ज्ञात है। मोहनजोदड़ो की नृत्यांगना की सुन्दर छवि इसका उदाहरण है।
(ब) धातु कार्य ताँबा, चाँदी और मिश्र धातु आदि से धातु को गलाकर अधिकतम बनाए जाते हैं।
(स) मूर्ति आमतौर पर मोम के मॉडल में मिट्टी से ढककर और ऊपर के छेद से मिट्टी में छेद कर पिघला हुआ धातु शीर्ष पर छेद के माध्यम से डाला जाता है जिससे मोम पिघल जाता है, धातु को ठण्डा होने दिया जाता है और अंत में उत्पाद को तराशकर व पालिश से चमकाया जाता है।
(द) धातुकला से मूर्ति करने में धातु को गलाया नहीं जाता। **उत्तर-** (द)

प्रश्न ऊन तथा अन्य सम्बन्धी शिल्प के सम्बन्ध में असत्य कथन छाँटिये-
(अ) भारत का हिमालयीन क्षेत्र अपने ऊन तथा स्वेटर, कम्बल आदि के लिए प्रसिद्ध है।
(ब) गोवा में समुद्री कौड़ियों आदि का हस्तशिल्प प्रसिद्ध है।
(स) बिहार प्रान्त अपनी मधुबनी चित्रकला के लिए प्रसिद्ध है।
(द) तमिलनाडु सुपारी के खिलौने के लिए प्रसिद्ध है। **उत्तर-** (द)

प्रश्न असत्य कथन बताइए-
(अ) भारतीय वस्त्र उद्योग के क्षेत्र में लगभग 2000 वर्षों से कार्यशील है।
(ब) मोहनजोदड़ो की खुदाई से एक कपड़े का टुकड़ा व रस्सी मिली है जो वस्त्र उद्योग प्रचलन की निशानी है।
(स) हड़प्पा कालीन संस्कृति के समय (लगभग 5 से 7 हजार पूर्व) भारत में उन्नत किस्म के कपड़े बनते थे।
(द) अंग्रेजों ने भारतीय वस्त्र उद्योग को विकसित किया **उत्तर-** (द)

इकाई-तीन

प्रश्न प्रदर्शन कला के सम्बन्ध में असत्य कथन छाँटिए-
(अ) प्रदर्शन कलाएं वे कलाएं हैं जो प्रदर्शनी में लोगों के अवलोकन के लिए लगाई जाती हैं।
(ब) प्रदर्शन कलाएं संगीत, नृत्य, नाटक जैसी कलाएं हैं जो दर्शकों के लिए प्रदर्शित होती हैं।
(स) ये प्रदर्शन कलाओं से भिन्न हैं जिसमें भौतिक या स्थिर कला वस्तुओं को बनाने के लिए पेंट, कैनवास या विभिन्न वस्तुओं/सामग्रियों का उपयोग किया जाता है।
(द) प्रदर्शन कला में कई प्रकार के विषय सम्मिलित होते हैं जो लाइव (जीवन्त) दर्शकों के सामने किये जाते हैं जिनमें थियेटर, संगीत और नृत्य शामिल हैं।
उत्तर- (अ)

प्रश्न प्रदर्शन कलाओं के प्रकारों के सम्बन्ध में असत्य कथन का चयन कीजिए-
(अ) प्रदर्शन कला के अन्तर्गत मूल रूप से नृत्य, संगीत और रंगमंच से सम्बन्धित कलाएं आती हैं।
(ब) जादू, कठपुतली, सर्कस, गायन और भाषण देना आदि इस कला के दूसरे रूप हैं।
(स) प्रदर्शन कला में चित्रकला, पेंटिंग्स, भित्ति चित्र, मूर्तियाँ आदि आती हैं।
(द) प्रदर्शन कला का प्रदर्शन करने वालों को कलाकार कहते हैं। ये कलाकार नायक, विदूषण, नर्तक, जादूगर, संगीतकार, गायक आदि हैं।
उत्तर- (स)

प्रश्न असत्य कथन चुनिए-

(अ) रंगमंच प्रदर्शन कला की वह शाखा है जहाँ कहानियों आदि को संवाद अभिनय आदि के साथ प्रदर्शित नहीं किया जाता है।
(ब) प्रदर्शन के रूप में किसी संगीत के अनुसार हाथों, मुख और पैरों को एक विशिष्ट रूप से हिलाना, घुमाना नृत्य कहलाता है।
(स) सुर, लय और ताल में गाने की विधि संगीत कला है।
(द) नाटक वह प्रदर्शन कला है जहाँ संवाद, संगीत व नृत्य के उपयोग द्वारा कहानियों का मंचन होता है।

उत्तर- (अ)

प्रश्न **असत्य कथन चुनिए-**
(अ) भरत मुनि को पारम्परिक रूप से भारतीय नाटक के इतिहास में पिता माना जाता है।
(ब) भारतीय नाटक का इतिहास भारत में संस्कृत के भण्डार से उत्पन्न और विकसित हुआ।
(स) भारतीय नाटक का इतिहास आधुनिक काल का है।
(द) भरत ने भारतीय नाटक को पाँचवें वेद के रूप में वर्णित किया है। **उत्तर-** (स)

प्रश्न **यक्षगान के सम्बन्ध में असत्य कथन कौनसा है?**
(अ) यक्षगान तमिलनाडु की एक लोकप्रिय लोकनाट्य परम्परा है जो लगभग 10वीं शताब्दी से प्रचलित है।
(ब) यक्षगान लोकनाट्य पर कन्नड़ साहित्य और संगीत, चित्रकला और स्थापत्य का निर्विवाद रूप से प्रभाव देखने को मिलता है।
(स) इन सभी के संयोग से संगीत, नृत्य और वेशभूषा तथा साजसज्जा की अपनी विशिष्ट पद्धति का आविष्कार एवं विकास यक्षगान में देखने को मिलता है।
(द) यक्षगान नृत्य नाटिका में धर्म के साथ इसका जुड़ाव है, जो इसके नाटकों के लिए सर्वाधिक सामान्य विषय वस्तु प्रदान करता है।

उत्तर- (अ)

प्रश्न **कठपुतली नृत्य के सम्बन्ध में असत्य कथन बताइए-**
(अ) कठपुतली का नृत्य बहुत ही पुराना मनोरंजन का कार्यक्रम है जो रंगमंच पर खेला जाता है।
(ब) जब मनोरंजन के आधुनिक साधन नहीं थे उस दौर में बहुत सारे लोग इकट्ठे होकर कठपुतली द्वारा प्रदर्शित कहानी व नृत्य का आनन्द अधिक लेते थे।
(स) कठपुतली का नाच सबसे ज्यादा बच्चों-किशोरों को अच्छा लगता था क्योंकि इसमें तरह-तरह के मनोरंजनात्मक कहानियाँ, राजा-रानी की कहानियाँ नृत्य के माध्यम से दिखाई जाती थीं।
(द) इन्हें बनाने वाले व नचाने वाले कलाकारों को पैसा नहीं दिया जाता था।

उत्तर- (द)

प्रश्न **मुखौटा के सम्बन्ध में निम्न में से असत्य कथन का चयन कीजिए-**

(अ) मुखौटा वह है जो मुख पर छा जाए और अन्य रूप ले ले।
(ब) कपिला वात्स्यायन के अनुसार मुखौटों के ठोस प्रमाण ईसा पूर्व और ईस्वी की पहली शताब्दी के बीच प्राचीन मिस्र में मिले हैं, जहाँ मृतकों के चेहरे पर सोना या चाँदी के मुखौटे लगाए जाते थे।
(स) मोहनजोदड़ो और हड़प्पा खुदाई में मुखौटे प्राप्त नहीं हुए।
(द) आदिम समाज के लोक उत्सव/लोकाचार में मुखौटों का प्रयोग एशिया, अमेरिका, अफ्रीका, यूरोप, आस्ट्रेलिया सभी महाद्वीपों में था।

उत्तर- (स)

प्रश्न **भारतीय शास्त्रीय संगीत में कौनसा सम्मिलित नहीं है?**
(अ) भरतनाट्यम (ब) कथकली (स) गरबा (द) कुचिपुड़ी **उत्तर-** (स)

प्रश्न **भारत के प्रमुख लोकसंगीत में कौनसा सम्मिलित नहीं है?**
(अ) असम में बिहूगीत (ब) गरबा (गुजरात)
(स) रासलीला (उ.प्र.) (द) डिस्को (पंजाब) **उत्तर-** (द)

प्रश्न **प्रमुख भारतीय मेलों में कौनसा सम्मिलित नहीं है-**
(अ) कुम्भ मेला (ब) मकर संक्रान्ति मेला
(स) पुष्कर मेला (द) मन्दिर मेला **उत्तर-** (द)

इकाई-चार

प्रश्न **हिन्दू संस्कृति का प्रसार प्राचीन काल में किस देश में अधिक हुआ?**
(अ) इंग्लैण्ड (ब) अमेरिका (स) पोलैण्ड (द) जापान **उत्तर-** (द)

प्रश्न **दक्षिण पूर्व के देशों में जहाँ हिन्दू संस्कृति का प्रसार हुआ, यह देश शामिल नही है-**
(अ) ब्रह्मा (ब) कम्बोडिया
(स) अफगानिस्तान (द) मलाया **उत्तर-** (स)

प्रश्न **भारत के प्रमुख प्राचीन विश्वविद्यालयों में कौनसा नाम सम्मिलित नहीं है?**
(अ) तक्षशिला (ब) नालंदा (स) इन्द्रप्रस्थ (द) ओन्दन्तपुरी **उत्तर-** (स)

प्रश्न **किस दिनांक को भारत ने चन्द्रयान-तीन का सफल प्रक्षेपण किया?**
(अ) 14 जुलाई, 2023 (ब) 10 जून, 2023
(स) 15 अगस्त, 2022 (द) उक्त में से कोई नहीं **उत्तर-** (अ)

प्रश्न **भारतीय धर्म और संस्कृति के विदेशों में प्रसार में किस देश का नाम सम्मिलित नही है?**
(अ) श्रीलंका (ब) चीन (स) जापान (द) रशिया **उत्तर-** (द)

प्रश्न **रामायण के सम्बन्ध में असत्य कथन छाँटिये-**
(अ) रामायण प्राचीन भारत का एक संस्कृत महाकाव्य है।
(ब) इसकी रचना वेदव्यास ने की थी।
(स) रामायण का विदेशों में दक्षिण पूर्व एशिया की कला और संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

(द) विश्व संस्कृति को रामायण आज भी प्रभावित कर रहा है। उत्तर- (ब)

प्रश्न महाभारत के सम्बन्ध में असत्य कथन बताइए-

(अ) इसकी रचना वाल्मीकि ने की थी

(ब) कुरुक्षेत्र में महाभारत का युद्ध 18 दिनों तक चला

(स) अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिए सारथी बने श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता के उपदेश दिये।

(द) अंततः कौरव पक्ष हार गया और युधिष्ठिर (पाण्डवों के ज्येष्ठ भ्राता) विजयी हुए

उत्तर- (अ)

प्रश्न महाभारत महाकाव्य के सम्बन्ध में असत्य कथन छाँटिये-

(अ) महाभारत में जीवन के लगभग प्रत्येक पहलू को व्यक्त किया गया है।

(ब) यह महाकाव्य हिन्दी भाषा में मूलतः रचा गया।

(स) दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में महाभारत के अंश पढ़े और अभिमंचित किये जाते हैं।

(द) कृष्ण भगवान ने स्वयं हथियार न उठाने की प्रतिज्ञा ले रखी थी अतः उन्होंने अर्जुन के सारथी की भूमिका अदा की

उत्तर- (ब)

प्रश्न अंककोरवाट मन्दिर कहाँ है?

(अ) भारत में (ब) कम्बोडिया में

(स) चीन में (द) जापान में उत्तर- (ब)

प्रश्न अंककोरवाट मन्दिर के सम्बन्ध में असत्य कथन छाँटिये-

(अ) यह हिन्दू मन्दिर है।

(ब) यह विश्व का विशाल मन्दिर है जो सैकड़ों वर्गमील में फैला हुआ है।

(स) इस मन्दिर को कम्बोडिया के राष्ट्रध्वज में भी स्थान दिया गया

(द) यह बौद्ध मन्दिर है उत्तर- (द)

इकाई-पाँच

प्रश्न भारतीय संविधान के अनुच्छेद 49 के सम्बन्ध में गलत बिन्दु बताइए-

(अ) भारतीय संविधान का यह अनुच्छेद राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं के संरक्षण से सम्बन्धित है।

(ब) यह अनुच्छेद भारत की केन्द्र व राज्य अनुसूचियों का वर्णन करता है।

(स) यह अनुच्छेद भारतीय संस्कृति की सुरक्षा और रखरखाव से सम्बन्ध रखता है।

(द) उक्त सभी बिन्दु असत्य हैं। उत्तर- (ब)

प्रश्न भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51A के सम्बन्ध में गलत बिन्दु को बताइए-

(अ) संविधान के अनुच्छेद 51A के अनुसार यह अनुच्छेद राष्ट्रीय स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं के संरक्षण से सम्बन्धित है।

(ब) यह अनुच्छेद बताता है कि राष्ट्रीय ध्वज (तिरंगा) एवं राष्ट्रगान का सम्मान करना प्रत्येक भारतीय का मौलिक कर्त्तव्य है।

(स) यह प्रावधान इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि देश के हर नागरिक को राष्ट्रीय ध्वज फहराते समय निर्देशों का पालन करना चाहिए।

(द) यह प्रावधान दर्शाता है कि राष्ट्रगान का उच्चारण सस्वर होना चाहिए।

उत्तर- (अ)

प्रश्न 'अपनी धरोहर, अपनी पहचान' नामक परियोजना की शुरुआत भारत सरकार द्वारा कब की गई? यह शुरुआत विश्व पर्यटन दिवस के मौके पर हुई।

(अ) 20 सितम्बर, 2017 (ब) 27 सितम्बर, 2017

(स) 15 अगस्त, 2017 (द) 26 जनवरी, 2018 उत्तर- (ब)

प्रश्न 'अपनी धरोहर, अपनी पहचान' परियोजना का यह उद्देश्य नहीं है-

(अ) विश्व पर्यटन को बढ़ावा देना

(ब) भारत देश में विरासत/और पर्यटन सुविधाओं का योजनाबद्ध तरीके से विकास करना

(स) सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र की कम्पनियों के साथ, ट्रस्टों, गैर सरकारी संगठनों, व्यक्तिगत व अन्य पक्षधरों को 'स्मारक मित्र' बनाने के लिए प्रेरित करना

(द) देशी-विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का प्रयास उत्तर- (अ)

प्रश्न प्रसाद (PRASAD) योजना के उद्देश्य के सम्बन्ध में यह कथन सही नहीं है-

(अ) ईश्वर/देवी देवताओं पर अर्पित की गई वस्तु को भक्त जनों में वितरित करना

(ब) सम्पूर्ण धार्मिक पर्यटन अनुभव प्रदान करने के लिए तीर्थस्थल को प्राथमिकतः नियोजित और संधारणीय तरीके से एकीकृत करना।

(स) चयनित तीर्थ स्थलों का समग्र विकास करना

(द) तीर्थ पर्यटन की क्षमता का दोहन करने के लिए सरकार द्वारा अन्य हितग्राहियों से सहयोग करना।

उत्तर- (अ)

प्रश्न 'पर्यटन पर्व : देखो अपना देश' के सम्बन्ध में असत्य कथन चुनिये-

(अ) इस योजना का लाभ भारत का कोई भी नागरिक उठा सकता है।

(ब) इस कार्यक्रम के तहत वर्ष 2025 तक आपको अपने गृह प्रवेश को छोड़कर अन्य प्रदेशों के 15 पर्यटन स्थलों की यात्रा करनी होगी और वहाँ के फोटो सरकार को भेजने होंगे।

(स) केन्द्र सरकार ने देश में पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए यह योजना शुरू की है जिसमें आपके घूमने का पूरा खर्चा सरकार उठाएगी।

(द) आप अपनी यात्रा कभी भी शुरू करें लेकिन 1 वर्ष के भीतर 15 पर्यटन स्थल घूमने के बाद उन पर्यटन स्थलों के फोटो और खर्च का ब्यौरा आधिकारिक वेबसाइट पर अपलोड करना होगा।

उत्तर- (ब)

प्रश्न **यूनेस्को (UNESCO) के सम्बन्ध में असत्य कथन चुनिए-**
(अ) यह संयुक्त राष्ट्र का एक घटक निकाय है।
(ब) इसका कार्य शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति तथा संचार के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को बढ़ावा देना है।
(स) इसका गठन 15 अगस्त 1945 को हुआ था।
(द) यूनेस्को के 195 सदस्य देश हैं और 8 सहयोग सदस्य देश और दो पर्यवेक्ष सदस्य देश हैं।

प्रश्न **यूनेस्को का मुख्यालय है-** उत्तर- (
(अ) न्यूयार्क में (ब) पेरिस (फ्रांस) में
(स) लन्दन (इंग्लैण्ड) में (द) नई दिल्ली (भारत) में उत्तर-

प्रश्न **भारतीय सर्वेक्षण विभाग के सम्बन्ध में असत्य कथन चुनिए-**
(अ) यह संस्था पुरातत्त्व अध्ययन और संरक्षण के लिए स्थापित भारतीय एजेंसी
(ब) भारत की सांस्कृतिक विरासतों के पुरातत्त्वीय अनुसंधान तथा संरक्षण के लिए एक प्रमुख संगठन है।
(स) इसका कार्य राष्ट्रीय महत्त्व के प्राचीन स्मारकों तथा पुरातत्त्वीय स्थलों और अव का रखरखाव करना है।
(द) इसकी स्थापना का वर्ष 1946 है। उत्तर

न **यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहरों में सूचीबद्ध भारत की मानवीय परम्पराओं की 14 सांस्कृतिक विरासतों में यह शामिल नहीं है?**
(अ) छउ नृत्य (ब) योग (स) कुम्भ मेला (द) ताजमहल उत्त